।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में
भगवद्-प्राप्ति

अंतिम 5 वाँ भाग

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल–प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादक
श्री हरिपददास अधिकारी

साज–सज्जा
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण व अन्य चित्रों के लिए
Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506–29044, 01421–217059

प्रथम संस्करण – 2000 प्रतियाँ
उत्थान एकादशी 24 नवम्बर, 2012
द्वितीय संस्करण – 1000 प्रतियाँ
उत्थान एकादशी 22 नवम्बर, 2015
ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी
महाराज जी की 111 वीं आविर्भाव तिथि

मुद्रण–संयोजन
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन–281121 • मोबाइल : 07500 987654

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग – 5

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

प्राप्ति-स्थान

(1)

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

गांव पांचूडाला, छींड की ढाणी, तहसील कोटपूतली,
जिला जयपुर, (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506–29044, 01421–217059

(2)

श्रीहरिनाम प्रेस

हरिनाम पथ, लोई बाज़ार, वृन्दावन–281121 (मथुरा)
दूरभाष : 07500987654, 0565–2442415

(3)

श्री विनोद वाणी गौड़ीय मठ

32, कालीदह, मदनमोहन चौराहा, वृन्दावन (मथुरा)–281121
दूरभाष : 092676–07945, 095366–26195

(4)

श्री चैतन्य गौड़ीय मठ

सैक्टर–20 बी., चंडीगढ़–160020
दूरभाष : 0172–2708788

(5)

श्री रमेश गुप्ता जी,

397, लक्ष्मी नगर, मगोड़ी वालों की बगीची, ब्रह्मपुरी रोड,
जयपुर (राजस्थान) : दूरभाष : 094140–45053

—— अधिक जानकारी के लिये संपर्क करें ——

हरिपद दास अधिकारी

099141–08292
email-haripaddasadhikari@gmail.com

समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है
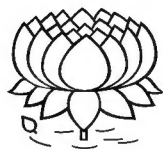
रे मन धीरज क्यों न धरे
संवत दो हजार से ऊपर,
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण,
चहुँ दिसि काल परै।।
अकाल मृत्यु सब जग मँह व्यापै
परजा बहुत मरै।
सहस बरस लगि सतयुग व्यापै
सुख की दशा फिरै।
स्वर्ण फूल बन पृथ्वी फूलै
धर्म की बेल फरै।
काल व्याल से वही बचेगा
जो गुरु का ध्यान धरै।
'सूरदास' यह हरि की लीला
टारे नाहिं टरै।।

विषय-सूची

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध दास प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, **"इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग–5)"** सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' नामक पाँचों भाग श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का प्राण है। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु–निष्ठा, श्रीनाम–निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने–कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा–वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा–सदा के लिये श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? – इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन–निष्ठा, नामनिष्ठा तथा केवल हरे कृष्ण महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है। और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के

सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन–मयूर नाच उठेगा– ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँचवें और अंतिम भाग की एक विशेषता और है कि इसमें श्री अनिरुद्धदास प्रभु के संक्षिप्त जीवन–चरित्र के साथ–साथ उनके श्रील गुरुदेव, श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। चूँकि यह श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का अंतिम ग्रंथ है इसलिये मैं एक बात कहना चाहूँगा कि इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था। **''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति''** का अब तक का सफर इस प्रकार रहा–

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) 1000 प्रतियाँ
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) 1000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी–2010

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) 1000 प्रतियाँ
श्रीहरि उत्थान एकादशी–2010

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) 1000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी– 2011

वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् 2000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी, 2011

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) 5000 प्रतियाँ
दूसरा संस्करण
श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011

एक शिशु की विरह–वेदना श्रीराम नवमी, 2012	1000 प्रतियाँ
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012	1000 प्रतियाँ
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) श्रीगोपाष्टमी, 2012	2000 प्रतियाँ
एक शिशु की विरह–वेदना शरद पूर्णिमा, 2014	1000 प्रतियाँ
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन शरद पूर्णिमा, 2014	3000 प्रतियाँ
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015	1000 प्रतियाँ

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से गत छह वर्षों में उन्नीस हजार (19,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग सोलह हजार (16,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की लगभग एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, बेवसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुंच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

इन उन्नीस हजार (19,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्री श्रीराधा गोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे–ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठको ! इन पत्रों में कई बातों को बार–बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें। अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रंथों को बार–बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्ण–प्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

"*Arise, awake & stop not, till the goal is reached*"

-Swami Vivekananda

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्री पादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के
श्रीवृन्दावन आगमन का 500वां वर्ष
कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा, सन् 2015

वैष्णव दासानुदास
हरिपद दास

शरणागत–भक्त के हृदय में भगवद्–तत्त्व का आविर्भाव होता है। शरणागति से पहले कोई भी क्रिया भक्ति नहीं है। शरणागति ही सब समस्याओं का समाधान और सब क्लेशों के निवारण की राम–बाण औषधि है।

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। **"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति"** का पाँचवा और अंतिम भाग आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं आप सबको इसकी बधाई देता हूँ।

"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति" नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी—यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार सभी को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को अपने लाभ के लिए छपवाकर या उन्हें बेचकर अपनी आजीविका बनायेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा—ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

अतः मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्री गुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूंगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

इस पुस्तक के लेखक
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का संक्षिप्त जीवन परिचय

(श्री हरिपददास अधिकारी)

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे
श्रीगुरु–वैष्णवप्रियमूर्तिं, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 82 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्धप्रभु (आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्–पूर्णिमा रास–पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी विरक्त सन्त थे, को अवलंबन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म–स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त, इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्री जय सिंह शेखावत हुये। गांव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। बड़े भाई एक कमरा किराये पर लेकर रहते। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस वक्त आपकी उम्र लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधागोविन्ददेव जी के

श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुंदर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबंधकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों संत–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असंतुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना संभव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्द देवजी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करतालों इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊंचे, लंबे कद एवं अलौकिक सौंदर्य वाला संन्यासी कीर्तन कर रहा था। श्री श्रीराधागोविन्द जी के मंदिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहा था और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहा था। "ये संन्यासी कौन है? ये रो क्यों रहा है?"–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति अनिरुद्धप्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

"यही हैं मेरे गुरुदेव! यही हैं मेरे गुरुदेव! यही मुझे भगवान् से

मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''–ये सारे भाव अनिरुद्ध प्रभु के ह्रदय में हिलोरें लेने लगे।

अनिरुद्धप्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो अनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम?''–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

21 नवम्बर, 1952 को अनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र जपकर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधाकृष्ण जी के कुंजों में झाडू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्ति से कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुये हो गया था परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती

चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्त हों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक–एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति–अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया–रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन–काल बहुत बढ़िया, बीता। सरकारी नौकरी के साथ–साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। कर्ज ले–लेकर तीनों बच्चों को पढ़ाया। अपनी नेक–कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये श्रील गुरुदेव को भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह–सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी–

"*While Chanting Harinam Sweetly, Listen by ears.*"

यह नाम–संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप से तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक,

अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप ही उनके अकेले शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने Voluntary Retirement लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। परम–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गांव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गांव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहां के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतो के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढ़ाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–"श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।"

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

"अनिरुद्ध! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बांटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग–राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो, मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।"

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध दास प्रभु जी एक अनुभूति–प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों– शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिन्हों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।
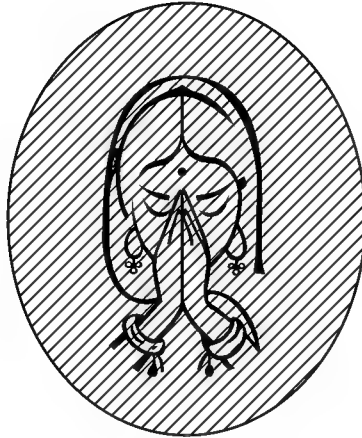
श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय

(श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज)

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्री मते भक्तिदयितमाधवस्वामी–नामिने।।
कृष्णाभिन्न–प्रकाश–श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म–गुरुप्रीति–प्रदर्शिने।
ईशोद्यान–प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार–सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द–सम्वर्धनाय ते नमः।।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्णचैतन्य–आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिब्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन–पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते

थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप–लावण्ययुक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृ भक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र–ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते–करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ

आकाशवाणी हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में अपने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्तिसंगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्त सेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्‌भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था–भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुये श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा–

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोनीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्ति गौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु–निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थित में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख–दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर (आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की

भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों

अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुये हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इस में किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

–Srila Prabhupada

दो मिनट में भगवान् का दर्शन
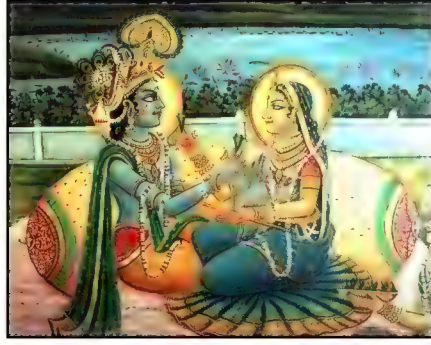
श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो मिनट का समय लगता है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ गोविंद ! जब मेरी मौत आवे और मेरे अंतिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।"

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और जब मैं भूल जाऊँ, तो मुझे याद करवा देना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! गोविंद! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणीमात्र में आपका ही दर्शन करूँ।''

आवश्यक सूचना – इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

Chant ...
Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare
Hare Ram Hare Ram Ram Ram Hare Hare
... and Be Happy.

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति

जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियां हैं, वे गोपियां हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ?

अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की, अमर माँ है । वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। इससे पहले, पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला– झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जाप के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द–नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम–श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा–श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

मेरी ओर निहारो!

अनंतकोटि वैष्णवजन,
अनंतकोटि भक्तजन,
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन,
मैं जन्म–जन्म से आपके
चरणों की धूल–कण ।
मुझको ले लो अपनी शरण,
मेरे मन की हटा दो भटकन,
लगा दो मुझको कृष्णचरण,
लगा दो मुझको गौरचरण,
यदि अपराध मुझसे बन गये,
आपके चरणारविंद में,
जाने में या अनजाने में,
किसी जन्म में या इसी जन्म में,
क्षमा करो मेरे गुरुजन,
मैं हूँ आपकी चरण–शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ,
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ,
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ ।
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो,
हे मेरे प्राणधन।
निभालो अब तो अपनापन,
मैं हूँ आपके चरण–शरण
हे मेरे जन्म–जन्म के गुरुजन।

आप कहाँ हो ?

हा गौरांग! हा गौरांग!

कहां गौरांग। कहां गौरांग।

कहां जाऊं ? कहां पाऊं आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप!

हे दयानिधान! आप कहां हो ?

मैं आपको ढूंढ रहा हूँ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ।

आप कहां हो ?

कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ – हे कीर्तनानंद।

दर्शन दो स्वामी!

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो!

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
03.04.2011
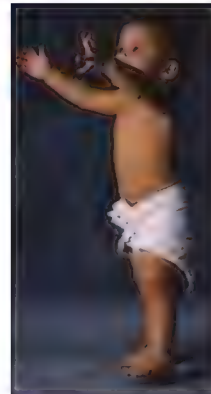
हरिनाम में मन कैसे लगे ?

पिछले रविवार को मेरे दयानिधि श्रीगुरुदेव जी ने मन को हरिनाम में स्थिर करने हेतु कई नामनिष्ठों के नाम बताए थे। यदि इन नामनिष्ठों के चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाया जावे तो नामनिष्ठ से निकलने वाली दिव्य तरंगें हरिनाम करने वाले के चित्त रूपी दर्पण को स्वच्छ बनाती रहेंगी।

इतने अधिक नामनिष्ठ हुये हैं कि साधक उनकी गिनती नहीं कर सकता। किसी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर, हरिनाम उच्चारण करके, उसे सुनाना चाहिये। ऐसा करने से नाम में मन लग जायेगा और भगवद्–प्रेम का प्रवाह बहने लग जायेगा। जब हृदय में प्रेम का प्रवाह बहने लगेगा तो भगवान् की कमी महसूस होने लगेगी। मन भगवद्–दर्शन के लिये छटपटायेगा, अकुलायेगा और अष्टविकार प्रकट होने लगेंगे। आँखों से अश्रुधारा बहेगी और मन पुलकित होकर आनन्दमय स्थिति का अनुभव करेगा।

यदि शरीर स्वस्थ है तभी हरिनाम में मन लगेगा। बीमारी होने से हरिनाम में मन नहीं लगेगा। मन बीमारी की तरफ रहेगा। इसलिये निरोग रहने के लिए यह प्रयोग करें। चैत्र मास की अमावस्या के बाद नीम के वृक्ष में भूरे रंग की नई पत्तियाँ निकलने लगती हैं। आठ पत्तियाँ खाली पेट सेवन करने से शरीर निरोग रहेगा और मन को नई स्फूर्ति मिलेगी। यह प्रयोग तीन दिन करना चाहिये। यदि नीम सेवन करने पर उल्टी हो जाये तो इसे नहीं करना चाहिये। जब शरीर स्वस्थ रहेगा तभी तो एक लाख हरिनाम हो सकेगा। हरिनाम करते हुये वैष्णव अपराधों से बच कर रहें। यदि प्रतिदिन आगे लिखा कीर्तन करके हरिनाम करोगे तो वैष्णव

अपराध से बच जाओगे और सभी वैष्णवों की असीम कृपा भी प्राप्त होगी।

यदि सप्ताह में या दस दिन में, एक बार भी यह कीर्तन करते रहोगे तो वैष्णव कृपा तो मिलेगी ही, साथ ही हरिनाम में रुचि बढ़ जायेगी और अश्रु पुलक आरंभ हो जायेगा।

मेरे गुरुदेव इस बात की गारंटी दे रहे हैं कि जो यह कीर्तन करेगा, वह भविष्य में वैष्णव अपराध से बच जायेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिये। आप इस कीर्तन को करोगे तो गारंटी शत–प्रतिशत सही पाओगे। विस्वसार तंत्र में लेख हैः–

महादेव जी पार्वती से कह रहे हैं "हे प्रिय ! गंगा की दाहिनी ओर मनोहर नवद्वीप धाम में, भगवान् श्रीकृष्ण ही, कलियुग के पापों का विनाश करने के लिये, फाल्गुन पूर्णमासी की रात्रि में मिश्र पुरन्दर, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर में शची माता के गर्भ से गौर रूप में आविर्भूत होंगे।''

भविष्य पुराण के ब्रह्मांड खंड के 7 वें अध्याय में महादेव जी पार्वती को कह रहे हैं–'हे देवी ! कलियुग की प्रथम संध्या में गौरांगदेव भूतल में पवित्र भागीरथी नदी के तट पर शचीनन्दन रूप में अवतीर्ण होंगे। श्री नवद्वीपधाम–महात्मा (परिक्रमा–खंड) में श्री महादेव जी पार्वती को कह रहे हैं–

राधाभाव ल'ये कृष्ण कलिते एबार ।
मायापुरे शचीगर्भे ह'बे अवतार ।।

इस कलियुग में श्रीकृष्ण श्रीमती राधा के भाव और अंगकांति को लेकर मायापुर में श्रीशची देवी के गर्भ से अवतरित होंगे।

कीर्तन रंगेते माति' प्रभु गोरामणि।
वितरिबे प्रेमरत्न पात्र नाहि गणि'।। 52।।

स्वयं संकीर्तन में निमग्न होकर महाप्रभु श्रीगौरहरि, प्रेमरूपी रत्न को पात्र–अपात्र का विचार किये बिना जनसाधारण में वितरण करेंगे।

एई प्रेमवन्या–जले जे जीव ना भासे।
धिक् ता'र भाग्ये देवि, जीवन–विलासे।।53।।

इस प्रेमरूपी बाढ़ में जो जीव नहीं डूबेगा, उसके भाग्य को धिक्कार है। हे देवी ! उसका जीवन धारण करना ही व्यर्थ है।

आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धनवंतरि सभी साधकों को सावधान करते हुये कह रहे हैं :–

"अच्युत अनंत गोविंद नाम उच्चारण भेषजात्
नश्यन्ति सकला रोगाः, सत्यं सत्यं वदामि ते"

"हे मानव ! तू भगवान् के अच्युत, अनंत एवं गोविंद, नामों को स्मरण कर। ऐसा करने से तेरे सभी रोग समाप्त हो जायेंगे, यह मैं सत्य–सत्य कह रहा हूँ।"

भगवान् का नाम अमृत है और अमृत पीने वाले को कोई रोग नहीं होता। इसीलिये कह रहे हैं कि हर क्षण भगवान् का स्मरण करते रहो। एक क्षण के लिए भी उस हरिनाम को न भूलो। इस शरीर के अंदर तथा बाहर के सभी रोगों व कष्टों से मुक्ति मिल जायेगी और मनुष्य, जीवन भर के लिये सुखी हो जायेगा।

मैं श्रीहरिनाम का प्रभाव बता रहा हूँ। इसे आप मेरी बड़ाई न समझें, ये तो श्रीहरिनाम की कृपा का फल है।

देखो ! मेरी आयु 81 वर्ष की है। पिछले कई सालों से कहीं घूमने नहीं गया क्योंकि घर से बाहर जाने पर मेरे भजन में बाधा पड़ती है। मेरा तीन लाख हरिनाम पूरा नहीं होता और फिर बुढ़ापे के कारण चलने–फिरने में भी तकलीफ़ होती है। पाँवों में लड़खड़ाहट होती है। यह होना स्वाभाविक ही है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा तथा मौत यह तो आना ही है। भगवान् ने ऐसे ही सृष्टि की रचना की है। यह तो सबके लिये निश्चित है।

मेरा बेटा, मेरी शारीरिक जाँच के लिये मुझे जयपुर के दुर्लभजी अस्पताल में ले गया। डॉक्टर ने मेरा खून चैक किया तो 15 ग्राम निकला।

डॉक्टर ने पूछा, ''बाबा ! तुम क्या खाते हो ? तुम्हारे शरीर में इतना खून कहाँ से आया ? इतना खून तो किसी जवान आदमी के शरीर में भी नहीं होता।''

मैंने बोला कि मैं तो दिन में एक बार दोपहर को दो–तीन फुलकी (चपाती) खाता हूँ। रात में दूध पीता हूँ।''

डॉक्टर ने कहा, ''बाबा ! तेरे जैसा मरीज़ मेरे पास आज तक नहीं आया। सच–सच बता दो कि तुम्हारे अंदर इतना खून कैसे है ?''

मैंने कहा–''डॉक्टर साहब! मैं बेफिक्र रहता हूँ। मुझे कोई भी चिंता नहीं है।''

''बूढ़ों को तो चिंता रहती ही है। पर आप पर भगवान् की विशेष कृपा है जो इस उम्र में भी स्वस्थ हो''–डॉक्टर ने कहा ।

डॉक्टर की बातों को सुनकर मैं समझ गया कि यह सब हरिनाम करने का प्रभाव है। मैंने डॉक्टर को नहीं बताया कि मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करता हूँ अतः मेरे शरीर में कोई भी रोग नहीं है। देखो ! डॉक्टर सभी को बोलते हैं कि हर रोज 2–3 किलोमीटर की सैर अवश्य किया करो वरना चारपाई पर पड़ना पड़ेगा पर मैं आपको बता दूँ कि मैंने पिछले 24 वर्षों में कभी सैर नहीं की, कहीं घूमने नहीं गया और मेरे शरीर में नवयुवकों जैसी ताकत अब भी है। यह सब हरिनाम का ही तो चमत्कार है।

यह सब इसलिये बोला है ताकि आप सबकी हरिनाम में श्रद्धा बन जाये और आप अधिक से अधिक हरिनाम करने लग जाओ। इसमें मेरा भी भला और आपका भी भला। इस 81 वर्ष की आयु में भी मैं रात को 1 बजे उठकर सात बजे तक (छः घंटे) एक ही आसन में बैठकर हरिनाम करता हूँ। मेरी कमर में कभी दर्द नहीं होता। कभी घुटनों में तकलीफ नहीं होती क्योंकि हरिनाम में अमृत बरसता है। विषयों का चिंतन करने से पूरे शरीर में विष व्याप्त हो जाता है और हरिनाम करने से, भगवद्–चिंतन करने से, पूरे शरीर

श्रीराधाकृष्ण

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी

में अमृत व्याप्त होता है। यह सत्य बात है। मेरी नज़र आज भी 10 वर्ष के बच्चे जैसी है। मेरे सारे दाँत हैं। मेरा शरीर निरोग है। मेरा जीवन आप सबके सामने है। आप स्वयं मेरी परीक्षा करके देख सकते हो। बारीक से बारीक अक्षर भी मैं बिना चश्में के पढ़ सकता हूँ। निष्किंचन महाराज जी यह सब जानते हैं। आप भी मेरी परीक्षा लेकर देखो। यह मेरी बड़ाई नहीं है। यह हरिनाम करने का कमाल है। यह मैंने इसलिये लिखा है ताकि आप सबको हरिनाम में रुचि हो जाये। जिसका स्वयं का आचरण शुद्ध नहीं है, वह किसी दूसरे को शुद्ध आचरण की शिक्षा क्या देगा ? जहाँ सूर्य है, वहाँ अंधकार नहीं होगा। जहाँ हरिनाम है, वहीं आनंद है, वहीं प्रेम है, वहीं भगवान् हैं, वहीं सब कुछ है।

आप सबकी हरिनाम में रुचि हो जाये, आपका मन हरिनाम में लग जाये, इसलिये मैं कुछ नामनिष्ठ संतों के नाम लिख रहा हूँ जिनके चरण दर्शन करते हुये हरिनाम करने से, मन स्थिर हो जायेगाः–

1. सबसे पहले अपने श्रील गुरुदेव के चरणों का ध्यान करते हुये, उनके चरणों में बैठकर (मानसिक रूप से), उन्हें हरिनाम सुनाना चाहिये ।

कम से कम आठ माला ऐसे करें ।

2. अपने परमगुरुदेव (श्रील भक्तिदयितमाधव महाराज) तथा श्री श्रीराधाकृष्ण।

3. श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज जी।

4. श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज।

5. श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी।

6. श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी।

7. श्रील माधवेन्द्र पुरी जी।

8. श्रील ईश्वर पुरी जी।

भगवान श्री जगन्नाथ जी
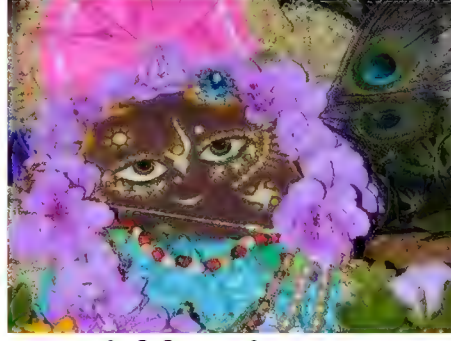
श्री गिरिराज जी महाराज

श्री राधा कुण्ड
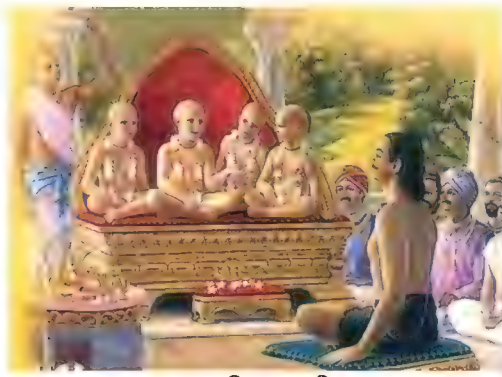
चार सनकादिक ऋषि कुमार

श्री जगन्नाथ मिश्र एवं शची माता जी
(श्रीचैतन्य महाप्रभु के माता–पिता)

यशोदा मैया–कन्हैया

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी

तुलसीदास

सूरदास

कबीरदास

9. श्रीचैतन्य महाप्रभु जी।
10. श्रीनित्यानंद प्रभु जी।
11. श्रील हरिदास ठाकुर।
12. भगवान् जगन्नाथ, बलदेव व सुभद्रा जी।
13. श्रीअद्वैताचार्य जी।
14. गौरगदाधर जी।
15. श्रीनिवास जी ।
16. गिरिराज जी की परिक्रमा करते हुए।
17. राधा कुंड–श्याम कुंड स्नान करते हुये।
18. वृन्दावन की पांच कोसी परिक्रमा करते हुये।
19. यशोदा मैया जी।
20. शची माता जी।
21. श्री शिवजी।
22. श्री गणेश जी।
23. श्री हनुमान जी।
24. श्री नारद जी।
25. श्री अम्बरीष जी।
26. श्री नवयोगेश्वर जी।
27. श्री सनकादि जी।
28. श्री व्यास जी।
29. श्री तुलसीदास जी।
30. श्री कबीर जी।
31. श्री सूरदास जी।

यदि मन में एक लाख हरिनाम करने की सच्ची भावना हो तो पहली आठमाला श्रीगुरुदेव के चरणों का ध्यान करते हुये करो और बाकी सभी नामनिष्ठों (2 से 31) के चरणों का ध्यान करते हुये प्रत्येक को दो–दो माला हरिनाम की सुनाओ। तीस गुणा दो (30 x 2)=60 माला। 8 माला गुरुदेव की। कुल मिलाकर 68 माला बन जाती हैं। यह एक उदाहरण है। आप अपनी इच्छानुसार किसी भी नामनिष्ठ की कृपा प्राप्त कर सकते हो पर हरिनाम करना ज़रूरी है, तभी तो कृपा मिलेगी।

भगवान् की अनंत लीलाएँ हैं। उनका दर्शन करते हुये, हरिनाम करने से हम भगवान् की माया से बच सकते हैं। भगवद्–कृपा से ही कोई भगवान् को पहचान सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों के पास थे फिर भी वे उन्हें पहचान नहीं सके। अंधे व्यक्ति को सूर्य की रोशनी में भी अंधेरा दिखता है। कौरव अपनी अज्ञानता के कारण, दुर्भाग्यवश, भगवान् को पहचान नहीं पाये, समझ नहीं पाये। जिस प्रकार कौरव भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं पहचान सके उसी प्रकार नवद्वीपवासी भी निमाई को एक साधारण बालक समझते रहे। श्रीगौरहरि ने विचार किया कि मैं तो इन सबका कल्याण करने, उद्धार करने के लिये आया हूँ। यदि ये मुझे एक साधारण मानव समझते रहेंगें तो मेरी बात नहीं सुनेंगे और उद्धार होने से वंचित रह जायेंगे। इसलिये निमाई को संन्यास लेना पड़ा ताकि लोग उनकी बात सुन सकें।

नवद्वीपवासी निमाई को एक चंचल तथा तार्किक बालक समझते थे और कहते थे–"कितना अच्छा होता यदि इस बालक में भगवान् की भक्ति होती।" उनकी बात सुनकर निमाई कहता–"आपके आशीर्वाद से यह भी हो जायेगा और मैं भक्त बन जाऊँगा।"

मानव की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह सदा ही दूसरों के दोष देखता है। दूसरों के दोष देखते हुये वह अपने दोष नहीं देखता। यही सबसे बड़ी बाधा है। दूसरों के दोष ढूँढने में हम कितना समय बर्बाद कर देते हैं ? कितनी शक्ति व्यर्थ गँवा देते हैं।

कितने शुभ अवसर हाथ से गँवा देते हैं ? लोगों ने तो माता सीता को भी नहीं बख्शा। मीरा, कबीर, नामदेव, नरसी आदि में भी दोष देखे। अतः एक सुनहरा अवसर गँवा दिया। उस अवसर का लाभ नहीं उठाया। मानव जीवन को नष्ट कर दिया और नरकगामी हो गये। सच्चा संत ऐसे लोगों से पिंड छुड़ाकर, एकांत में बैठकर भजन करता है। सच्चे संतों को जनता परेशान करती है। अपने सुख के लिये, अपनी संसारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, अपने स्वार्थ के लिये लोग सच्चे–संतों का अमूल्य समय नष्ट कर देते हैं। कभी–कभी संत ऐसे लोगों से बचने के लिए कई प्रकार की लीला किया करते हैं। साँच को आँच कहाँ ? सच्चा संत तो सबका भला चाहता है पर उसे पहचानना बहुत मुश्किल है। जिस पर भगवद्–कृपा होगी वह संत में दोषदृष्टि नहीं करेगा। इसलिये मैं आप सबसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप बिना समय गंवाये, अब हरिनाम करने में लग जाओ। बस यही इस लेख का सार है।

हरि बोल।

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
30.06.2011

प्रेमास्पद भक्तगण!

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

आचरणशील भक्त के पीछे भगवान् छायावत् रहते हैं

राम नाम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय।।

यहाँ दशरथ का मतलब है दस इन्द्रियाँ। दसों इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाने से, उनमें केंद्रित करने से भगवान् सरलता से खिंचे चले आयेंगे—यह बात निश्चित है। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं करना।

जो सभीत आया शरनाई। ताको राखूँ प्राण की नाईं।।

1. जो साधक सदा सुखी रहना चाहता है, वही इस संसार रूपी दुःखालय (दुःखों का घर) से डर कर भगवान् को याद करता है और भगवान् उसे अपने हृदय से चिपकाये रहते हैं। भगवान् कहते हैं कि जीवात्मा मेरा शिशु है। जिस प्रकार माँ अपने शिशु (बच्चे) को अपनी छाती से चिपका कर रखती है उसी प्रकार मैं भी अपने भक्त को हृदय से चिपकाये रखता हूँ क्योंकि मेरे भक्त ने केवल मेरा ही आसरा ले रखा है। मेरे सिवा इस संसार में उसका कोई नहीं है। इसलिये उसकी चिंता मैं स्वयं करता हूँ। जिसने अपना सर्वस्व मुझे सौंप दिया हो, जो हर पल मेरा चिंतन कर रहा हो, जिसके रोम—रोम में हरिनाम की दिव्य ध्वनि गूँज रही हो,

जिसके हर श्वास में हरिनाम का उच्चारण होता हो, अपने शरणागत उस भक्त को मैं कैसे त्याग सकता हूँ ?

भगवान् तो सब जीवों की माँ हैं और वात्सल्यभाव की असीम मूर्ति हैं। फिर अपनी शरण में आये जीवों को वह कैसे त्याग सकते हैं? ऐसे भक्त को, जिसने अपना मन सब ओर से हटा कर, भगवान् के चरण कमलों में लगा दिया है, भगवान् अपने से दूर कैसे रख सकते हैं ? इसलिये भगवान् की प्राप्ति का सबसे पहला साधन है–मन का संयम। जब सब इन्द्रियों का संयम हो जाता है तो फिर भगवान् दूर नहीं। भगवान् से नज़दीक तो कोई नहीं और असंयमी जितना भगवान् से दूर रहता है, उतना कोई दूर नहीं। जो शरणागत रहता है, उसकी भगवान् स्वयं रक्षा करते हैं।

धर्मग्रंथों में बिल्ली तथा बन्दरिया का उदाहरण मिलता है। बिल्ली अपने बच्चे को अपने मुख से उठाकर कई घर बदलती है पर उसका बच्चा कभी भी उसके मुख से गिरता नहीं है क्योंकि वह अपनी माँ की शरण में है और उसकी माँ ने उसे कस कर अपने मुख में पकड़ रखा है। अतः वह सुरक्षित है।

दूसरी ओर बंदरिया का बच्चा अपने बल से अपनी माँ को पकड़े रहता है और शरणागत नहीं होता और जब बंदरिया एक स्थान से दूसरे स्थान पर छलांग लगाती है तो बच्चा छाती से अलग हो जाता है, नीचे गिर जाता है। उसकी मौत हो जाती है। यह इसलिये क्योंकि वह पूर्ण रूप से शरणागत नहीं था और अपने बल से उसने माँ को पकड़ा हुआ था।

कहने का मतलब यह हुआ कि हम अपने बल से भगवान् को नहीं जान सकते। हां, भगवान् की शरण लेने पर, वे स्वयं अपनी दया से, हमें अपना लेंगे। अपने चरणों में रख लेंगे और हमारी रक्षा करेंगे। शरणागत की रक्षा, उसका पालन भगवान् स्वयं करते हैं। शरणागत किसी भी बात की चिंता नहीं करता। वह तो केवल भगवान का चिंतन करता है और उसकी चिंता भगवान् करते हैं। अतः सबसे पहली बात है–**शरणागति।**

2. दूसरी बात जो भगवान् को आकर्षित करती है–हर एक प्राणी में उन्हें ही देखना। जो जीव मात्र में उनका दर्शन करता है, भगवान् उससे दूर हैं ही नहीं। ऐसा साधक किसी को दुःखी नहीं देख सकता। किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता। ऐसे साधक के लिये भगवान् खिंचे चले आते हैं पर यह स्थिति एक दिन में नहीं आयेगी। भगवान् से हर रोज़ प्रार्थना करो–**'हे भगवान् ! आप मुझ पर ऐसी कृपा करो कि हर जीव में, मैं आपका दर्शन कर सकूँ।''** बार–बार प्रार्थना करने पर, भगवान् की कृपा से कुछ समय बाद अपने आप वह स्थिति आ जायेगी जब भक्त को सब कुछ कृष्णमय दिखने लगेगा। उसके इर्द–गिर्द का सारा वातावरण कृष्णमय हो जायेगा और उसका मन श्रीधाम वृन्दावन बन जायेगा जिसमें वह मुरलीमनोहर, श्यामसुंदर अपनी आह्लादिनी शक्ति–श्रीमती राधारानी के साथ विराजमान होकर आनंद की वंशी बजायेंगे।

3. तीसरी बात, भक्त को चाहिये कि वह जो कुछ भी करे, भगवान् का काम समझ कर करे। मन से, वचन से या फिर कर्म से किया हुआ हर काम, जब भगवान् के लिये होगा तो वह भक्ति बन जायेगा और साधक बुरे कर्मों से बच जायेगा। पाप कर्म उससे होगा ही नहीं। जब उसका उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना, चलना, पढ़ना–लिखना, पूजा करना, मंदिर जाना, जप करना, श्रीविग्रह की सेवा करना, फूल माला बनाना, भोग लगाना तथा शृंगार करना इत्यादि सभी काम भगवान् के लिये होंगे, फिर तो उसका चौबीस घंटे भगवान् का भजन हो गया। जिसका हर काम भगवान् के निमित्त है, उनकी प्रसन्नता के लिये है, उसके लिये तो भगवान् को आना ही पड़ता है। भगवान् छाया की तरह उसके साथ–साथ रहते हैं। एक क्षण भी उससे दूर नहीं होते।

जिस भक्त का मन पूर्ण रूप से भगवान् में लग गया, भगवान् की सेवा में रम गया, फिर संसार की आसक्ति उसका क्या बिगाड़ेगी ? ऐसा भक्त तो साक्षात् वैराग्य की प्रतिमा बन जाता है।

4. चौथी बात, जो शिष्य अपने श्रीगुरुदेव के वचनों पर अमल करता है, उनकी आज्ञानुसार भजन करता है, उसका मन हर क्षण भगवान् में लगने लगेगा। जो मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर ही हरिनाम करता है, भगवान् उसकी ओर बहुत शीघ्र आकर्षित होते हैं क्योंकि उसकी पुकार सुनकर, उसकी तड़प देखकर भगवान् रुक नहीं सकते। ऐसे भक्त के रोम–रोम से हरिनाम की ध्वनि निकलती रहती है और संसारी वासनायें उसके हृदय से मूल सहित समाप्त हो जाती हैं और वह श्रीकृष्ण भगवान् की भावना से प्रभावित रहने लगता है।

5. एकादशी व्रत, सब व्रतों का राजा है। एकादशी व्रत करने वाले को भगवान् का प्रेम बहुत जल्दी प्राप्त होता है। जो भी भक्त नियम से एकादशी का व्रत करता है, एकादशी को कम से कम एक लाख हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र की 64 माला)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का, श्रील गुरुदेव द्वारा प्रदत्त तुलसी की माला पर जप करता है, उसका भगवान् कभी त्याग नहीं करते। एकादशी व्रत का नियम है कि दशमी तिथि को एक बार प्रसाद सेवन करे। एकादशी को निराहार रहे तथा द्वादशी को पारण करे, दूसरी बार प्रसाद न पावे। त्रयोदशी को दो बार प्रसाद पा सकता है। यह कलिकाल है यदि इतना न हो सके तो केवल एकादशी को फलाहार लिया जा सकता है। आजकल भक्तों में इतनी शक्ति नहीं है कि वह नियम से एकादशी व्रत का पालन कर सकें। जो कर सकते हैं बहुत अच्छी बात है। जो खाये बिना नहीं रह सकते तो कम से कम एकादशी के दिन केवल फलाहार करके एक लाख हरिनाम अवश्य करें। भगवान् बहुत दयालु हैं। वे जानते हैं कि मेरा भक्त इतनी कठोर तपस्या नहीं कर सकता अतः वह सामान्य रूप से रखे व्रत को भी स्वीकार कर लेते हैं पर एक लाख हरिनाम करने में कोई छूट नहीं देते। एकादशी को 64 माला करना परमावश्यक है।

6. **पुण्य एक जग में नहीं दूजा**
मन, क्रम, वचन, साधुपद पूजा

भगवान् कहते हैं कि जो बिना किसी कपट के, तन तथा मन से भगवान् के सच्चे सेवक, वैष्णव–संत की सेवा करता है, मैं उसे कभी नहीं त्याग सकता और मैं सदा उसके पास वास करता हूँ। ऐसे भक्त के बिना मैं कैसे रह सकता हूँ क्योंकि सच्चे संत के रूप में वह मेरी ही सेवा करता है और मैं उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसकी ओर आकर्षित हो जाता हूँ। उसके पीछे–पीछे चलने लगता हूँ।

7. जो सभी जीवों पर दया करता है, किसी भी प्राणी से हिंसा नहीं करता, सबसे प्रेम करता है, उसके हृदय कमल पर मैं सदा विराजमान रहता हूँ क्योंकि प्रत्येक जीव में वह मुझे ही देखता है। वह चींटी से लेकर हाथी तक में, मेरी उपस्थिति का ही अनुभव करता है। ऐसे भक्त से किसी का बुरा नहीं हो सकता।

8. मेरा भक्त हर क्षण मुझे अपने साथ महसूस करता है। वह हर पल मुझमें और मै उसमें विराजित हूँ। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। वह तो मेरा प्राण बन जाता है।

9. जो भक्त इन्द्रियों का संयम करता है, उसके पास ही भगवान् विराजते हैं। इन्द्रियों के संयम के अभाव में पंचम पुरुषार्थ (श्रीकृष्ण–प्रेम) का रस रुक जाता है और अंत में सूख जाता है।

10. मेरा भक्त संसार को दुःख रूप अनुभव करते हुये, वैराग्य को धारण करता हुआ, मेरे से कभी अलग नहीं होता और न मैं उससे अलग रहता हूँ । ऐसे भक्त की संसारी आसक्ति मूल रूप से नष्ट हो जाती है।

11. जो मेरे शरणागत हो जाता है, वह किसी में दोष नहीं देखता। वह नामापराध से ऐसे डरता रहता है जैसे कोई विषधर सर्प सामने फन फैलाकर खड़ा हो या फिर बब्बर शेर सामने आकर खड़ा हो और वह उससे डर जाये। यदि ऐसे भक्त से किसी वैष्णव

के चरणों में अनजाने में अपराध हो भी जाये तो वह उसके चरणों में लेट कर क्षमा–प्रार्थना करता है। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? मैं तो उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ क्योंकि उसने मुझे प्रेम की रस्सी से बांध लिया है। यह बात श्रीमद्भागवत पुराण के जय–विजय के प्रसंग में मिलती है।

उपरोक्त लिखी वृत्तियाँ भक्त में तभी उदय हो सकती हैं जब उसे किसी सच्चे वैरागी संत का सानिध्य उपलब्ध होगा। बिना सत्संग के, बिना सद्गुरु के, बिना किसी वैष्णव संत की कृपा के, कुछ भी नहीं मिलेगा – यह अकाट्य सिद्धांत है। सच्चे संत की कृपा होगी, उसका संग मिलेगा, उसका दर्शन मिलेगा तभी उक्त वृत्तियाँ हृदय में प्रकट हो सकेंगी, अन्यथा नहीं।

भक्तजन अक्सर कहा करते हैं कि हम भगवान् से बातें करते हैं, उन्हें बुलाते हैं, वह हमारी किसी भी बात का जवाब नहीं देते, हम से नहीं बोलते। मैं कहता हूँ–''नहीं, आप झूठे हैं। भगवान् बोलते हैं यदि बुलाने वाले की योग्यता हो तो। देखो ! जब तक मन, बुद्धि भगवान् में नहीं लग जाते तब तक कुछ नहीं होने वाला। मन, बुद्धि तथा कर्म भगवान् को दे दो, उन्हें अर्पित कर दो, भगवान् आपसे बातें करेंगे। जब यह तीनों ही अनुकूल नहीं हैं तो भगवान् आपसे क्यों बात करेंगे ?''

देखो! भगवान् को जिस अनुपात में आप बुलाओगे, जिस अनुपात में भजन करोगे, उसी अनुपात में आपको उनका प्रेम प्राप्त होता रहेगा।

भगवान् को जितना तुम चाहोगे, भगवान् भी आपको उसी मात्रा में चाहेंगे। श्रीमद् भगवद्गीता में अर्जुन से भगवान् कहते हैं:–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

(गीता 4.11)

"हे अर्जुन ! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।"

इसमें भगवान् का क्या दोष है ? दोष तो हमारा है। भगवान् कहते हैं कि मैं अन्तर्यामी हूँ। मैं सबके हृदय की बात जानता हूँ। लोग मेरे साथ भी कपट करते हैं। मेरे मन्दिर में आकर भक्त होने का ढोंग करते हैं। मेरे श्रीविग्रह के सामने लेट कर लंबे–लंबे हाथ जोड़ते हैं, परिक्रमा लगाते हैं, दण्डवत् करते हैं और मेरे ही भक्तों से द्वेष करते हैं, वैर–विरोध करते हैं। मन्दिर से बाहर निकलते ही अपने साथियों का गला घोंटते हैं – ऐसे साधक से मैं क्यों बोलूँ ? वह किसी और से नहीं, मेरे से ही द्वेष करता है, मेरा ही विरोध करता है, मुझ से ही वैर करता है और फिर कहता है–भगवान् दयालु नहीं हैं, उनके हृदय में दया नहीं है, मैंने ज़िंदगी भर भगवान् का भजन किया, पर उसने मेरा क्या किया ?

देखो ! ऐसा भक्त कभी भी भगवान् को नहीं प्राप्त कर सकता। भगवान् से द्वेष करने वाला व्यक्ति कैसा मूर्ख है ? अपने दोषों को नहीं देखता। अपने अवगुणों को दूर नहीं करता और दोष देता है भगवान् को। भगवान् पर दोषारोपण करता है। बाकी लोगों की छोड़ो, भगवान् को भी दोषी बना दिया। ऐसा मूर्ख स्वयं तो नरक के गहरे खड्डे में गिरता है, दूसरों को भी साथ ले बैठता है। ऐसे मूर्खों से दूर रहने में ही भलाई है। भक्तिविनोद ठाकुर जी ने अपने एक पद में कहा है कि ऐसे व्यक्ति से तो मैं बात तक नहीं करता।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
09.07.2011

प्रेमास्पद भक्तप्रवरगण!

नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विराहावस्था निरंतर होने की प्रार्थना।

मानव-जन्म सुदुर्लभ से भी सुदुर्लभ है

भगवान् जीव को मनुष्य का जन्म तभी देते हैं जब उस पर अति कृपा होती है। भगवान् यह सुदुर्लभ अवसर इसलिये प्रदान करते हैं ताकि जीवात्मा, जो उनसे बिछुड़कर, असीम दुःख सागर में गोता खाता रहता है, माया के विषय जाल में फंसकर सारी ज़िंदगी बेकार के कर्मों में खर्च कर देता है, इस भवसागर से निकल सके और उनकी गोद में आ सके। भगवान् ने बिना किसी कारण, जीव पर कृपा की और उसे अपने पास बुलाने का सुअवसर दिया परंतु दुर्भागे जीव ने, इस अति दुर्लभ अवसर को भी गँवा दिया।

अब जब उसने सुदुर्लभ मनुष्य जीवन गँवा दिया तो अपनी सूक्ष्म देह को लेकर, वह करोड़ों युगों तक अट्ठाईस प्रकार के नरकों का भोग भोगेगा। ऐसे नरक, जहाँ दुःखों का कोई अंत नहीं है। करोड़ों युगों तक नरक भोगने के बाद, वह चौरासी लाख योनियों का भोग करेगा। अनंत कोटि युगों तक इन चौरासी लाख योनियों का भोग करता रहेगा। ज़रा विचार करो कि अट्ठाईस प्रकार के नरक तथा चौरासी लाख योनियों को भोगने में कितना समय लगेगा ? अरबों–खरबों वर्ष व्यतीत हो जायेंगे। इतने समय के बाद भी कोई गारंटी नहीं है कि जीव को मनुष्य की योनि उपलब्ध हो। कलियुग की आयु है चार लाख बत्तीस हज़ार (4,32,000) वर्ष। उससे दुगना (8,64,000 वर्ष) द्वापर युग, उससे

तिगुनी (12,96,000 वर्ष) त्रेता की तथा उससे भी चार गुणा (17,28,000 वर्ष) सतयुग की आयु होती है। यदि इन चारों युगों की आयु को जोड़ा जाए तो यह 43 लाख 20 हजार (43,20,000) वर्ष के लगभग बनती है। कितने चर्तुयुग बीत जायेंगे तब कहीं जाकर मनुष्य जन्म की उपलब्धि होती है। वह भी भगवद्-कृपा से।

मेरे श्रील गुरुदेव ने अपने पिछले पत्र दिनांक 30.06.2011 में लिखवाया था कि किन कारणों से भगवान् भक्त के पीछे–पीछे चलते हैं, उनके पास खिंचे चले आते हैं। श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि पिछले रविवार को मैंने इस आयोजन में आने वाले सभी भक्तों को माखन खिलाया था पर इस इतवार को सभी श्रोताओं को कड़वी दवाई पिलाऊँगा ताकि उनके अंदर की विषय–वासनाओं का विष (ज़हर) मन से निकल जावे। इन्द्रियों में भरे हुये उस ज़हर को निकालने की, मैं कोशिश कर रहा हूँ।

मेरे श्रील गुरुदेव साधकों को भयभीत करके श्रीहरिनाम में लगाने का प्रयास कर रहे हैं। भयभीत होने की सभी घटनायें सत्य हैं। काल्पनिक नहीं हैं।

श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि यह मनुष्य जन्म कब मिलता है ? यह जन्म तब मिलता है जब किसी जीव का संग, किसी सच्चे संत से बन जाये और उसे उस संत की सेवा करने का अवसर मिल जाये। पर याद रखो, ऐसा संत मिलना, ऐसा अवसर मिलना भी बहुत मुश्किल है।

देखो ! याद रखो कि भगवान् न तो योग से, न तपस्या से, न शुभकर्मों से व न तीर्थाटन से आकर्षित होते हैं। भगवान् केवलमात्र भगवद्–नाम की शरणागति रूपी भक्ति से दृष्टिगोचर होते हैं। किसी सच्चे नामनिष्ठ की शरणागति में होना परमावश्यक है। जब किसी सच्चे हरिनामनिष्ठ संत की प्राप्ति होती है तो संसार से पूरा वैराग्य हो जाता है। तभी भगवान् से प्यार होता है। जब पूर्ण रूप से भगवान् से सच्चा प्रेम हो जाता है तो भगवान् जैसी शक्ति स्वतः ही उदय हो जाती है और भक्त अष्ट सिद्धि व नवनिधियों का भंडारी बन जाता है।

इस कलिकाल में भगवद्–प्राप्ति बहुत सरल है, सुगम है। इस कलियुग में भगवान् बहुत शीघ्र मिल सकते हैं। इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो सकती है। इस युग में करोड़ों मनुष्यों में से कोई एक, जो बहुत सुकृतिशाली होता है, वही भगवान् को चाहता है। इस युग में सच्चे मन से भगवान् को चाहने वालों की कमी है। श्रीमद्भागवत पुराण के जय–विजय के प्रसंग में भगवान् ने कहा है कि मेरा भक्त ही मेरा आराध्यदेव है। अपने भक्तों के बिना मेरा मन लगता ही नहीं है।

ज़रा विचार करो ! सोचो ! हमारे भक्तवत्सल भगवान् कितने दयालु हैं ! वे अपने दोनों हाथ फैलाये खड़े हैं और जीवों को बुला रहे हैं। वे कहते हैं–

"हे मेरे पुत्र! तू मुझसे बिछुड़ गया है। अब मेरे पास वापस आ जा। मेरी गोद में आ जा और सदा–सदा के लिये मेरे पास एक नित्य, आनंदमय व दिव्य जीवन का आनंद प्राप्त कर।"

भगवान् अपने पुत्र जीवात्मा को लेने के लिये तत्पर हैं, तैयार हैं, अपनी बाँहें फैलाये खड़े हैं पर दुर्भागा जीव उनकी ओर देखता भी नहीं और भवसागर के गर्त में गिरता जा रहा है। कैसी विडंबना है ? कितनी मूर्खता है ?

धर्मग्रंथों में अनेकों प्रसंग ऐसे मिलते हैं जिससे मनुष्य को शिक्षा मिल सके। यहाँ पर भी एक हृदय–स्पर्शी मार्मिक प्रसंग दिया गया है, ध्यान से सुनो।

जब रावण लंका का राजा था, उसी समय भारतवर्ष के उज्जैन में एक बहुत धार्मिक राजा था। जिसका नाम था –चकवा बैन। हो सकता है आप में से किसी ने यह नाम सुना भी हो।

रावण बहुत अहंकारी था। उसने अपने बल से सभी राजाओं

को हराकर अपने अधीन कर रखा था पर चकवा बैन से मिलने का उसे अभी तक अवसर नहीं मिला था। रावण उस राजा को भी जीत कर अपने अधीन करना चाहता था इसलिये उसने अपने एक बहुत ही विश्वासपात्र मंत्री को राजा चकवा बैन के पास भेजा और पूछा कि क्या वह रावण से युद्ध करना चाहता है ?

रावण का मंत्री महाराज चकवा बैन के राज्य, उज्जैन में आ गया और उसने वहाँ के निवासियों से उसके रहने का ठिकाना पूछा। किसी ने कहा कि इस समय तो राजा अपने खेतों में काम कर रहा होगा, वहाँ चले जाइये।

मंत्री पूछते–पूछते खेतों में आ गया और वहाँ जाकर उसने देखा कि एक आदमी खेतों में खड़ी फसल को पानी दे रहा है। रावण के मंत्री ने सोचा कि शायद यह कोई किसान है। चलो, इसी से राजा का पता पूछते हैं। मंत्री ने कहा–''राजा चकवा बैन कहाँ मिल सकता है ? ''

''तुम्हें चकवा बैन से क्या काम है ?''– राजा ने पूछा। मंत्री ने कहा कि मुझे जो काम है, वह मैं राजा को ही बताऊँगा। आपको नहीं। तब राजा ने कहा कि मैं ही चकवा बैन हूँ। बताइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

मंत्री ने कहा कि राजा रावण आपसे युद्ध करना चाहते हैं, आपकी क्या राय है ?

''ठीक है! आप मुझे लंका का नक्शा बनाकर दिखाओ''–राजा ने कहा।

मंत्री ने ज़मीन पर लंका का नक्शा बना दिया और चकवा बैन ने एक पत्थर से लंका की चारदिवारी की एक दीवार पर पत्थर मारा और कहा कि अंहकारी रावण को जाकर वह दीवार दिखा देना जो मेरे पत्थर मारने से लंका में सचमुच में गिर गई है और कहना कि जब चाहे, रावण मुझ से युद्ध कर ले।

मंत्री जब लंका वापस पहुँचा तो उसने देखा, चारदिवारी की

एक दीवार सचमुच गिरी पड़ी है। जब मंत्री ने सारी बात रावण को बताई तो रावण हैरान रह गया। उसके पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई। वह सोचने लगा कि जो आदमी इतनी दूर बैठा, मेरी लंका की एक चारदिवारी पत्थर मारकर गिरा सकता है, वह क्या नहीं कर सकता ! रावण मन ही मन उस चकवा बैन की शक्ति को जान चुका था पर अपने मंत्री के सामने, अपनी कमज़ोरी को छिपाकर बोला कि ऐसी जादूगरी तो मैं भी जानता हूँ। राजा चकवा बैन जादूगर है। समय आने पर मैं अपनी जादूगरी से उसे अपने अधीन कर लूँगा। मंत्री भी जान गया था कि रावण डींग हाँक रहा है इसलिये चुपचाप वहाँ से चला गया।

यदि इस प्रसंग को ध्यान से देखा जाए तो समझ आ जाएगा कि जिसने भगवद्–शरण ले ली, उसमें अतुलित शक्ति आ जाती है। चकवा बैन भगवान् का भक्त था और सच्चे मन से अपनी प्रजा का पालन करता था। राजा होते हुये भी अपने खेतों में काम करते हुये, अपने परिवार का पालन करता था। वह एकादशी व्रत करता था और उसने राज्य में आदेश दे रखा था कि सभी प्रजाजन एकादशी का व्रत करें। जैसा राजा, वैसी प्रजा।

महाराज चकवा बैन स्वयं जाकर लोगों से मिलता था। उनके दुःख–दर्द सुनता था, उनकी जरूरतों को पूरा करता था। अपनी प्रजा का पालन करना ही उसकी पूजा थी, उसका धर्म था। वह प्रत्येक प्राणी में भगवान् का ही दर्शन करता था इसलिये भगवान् उससे बहुत प्रसन्न थे। भगवद्–कृपा से उसमें एक सच्चे संत के सभी गुण थे। वह विनम्र था, सहनशील था, दयावान् था, सबका हितैषी था, संतो का सम्मान करता था, बालकों, वृद्धों तथा महिलाओं की रक्षा करता था। उसके राज्य में सभी सुखी थे और सर्वगुण संपन्न थे। यह उसकी भक्ति का ही तो प्रभाव था।

जितने भी धर्मग्रंथ हैं, वे भगवान् की ही वाणी हैं। भगवान् के मुख से निकले हैं। अतः उनमें अश्रद्धा करना अपराध है। शास्त्रों में हरिनाम के बारे में लिखी एक–एक बात सत्य है, सिद्ध है। कोई

भी जिह्वा से हरिनाम करके, उसको आज़मा सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। यदि इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति करना चाहते हो तो हरिनाम की शरण में आ जाओ। मुख से उच्चारण कर, कानों से सुनकर, कम से कम एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करो, आपका जीवन ही बदल जायेगा। आपका दुःखों का संसार समाप्त हो जायेगा। हरिनाम के बिना जीवन बेकार है और हरिनाम करने में ही सर्वोत्तम लाभ है। यदि यह मौका चूक गये तो पछताने के सिवा कुछ भी हाथ नहीं आयेगा।

मेरे श्रील गुरुदेव समझा रहे हैं कि 84 लाख योनियों में 30 लाख योनियाँ पेड़–पौधों की हैं। एक–एक पेड़ की आयु हज़ारों वर्षों की होती है। इस प्रकार इन 30 लाख योनियों में युगों के युग बीत जायेंगे। 20 लाख जल में रहने वाले (जलचर) जीव–जंतु, 20 लाख आकाश में उड़ने वाले पक्षी (नभचर) तथा 10 लाख थलचर हैं और चार लाख प्रकार की मनुष्य की जातियाँ हैं ।

कल्पना करो कि इन सब योनियों में जाना पड़ेगा, सब कुछ बनना पड़ेगा, कितना दुःख, कितना कष्ट सहना पड़ेगा। हर योनि में भोग भोगना पड़ेगा। सूअर बनना पड़ेगा, गधा बनकर बोझ उठाना पड़ेगा, घोड़ा बनकर गाड़ी खींचनी होगी, सांप बनना होगा, केंचुआ बनना होगा, बंदर बनना पड़ेगा, गंदी नाली में कीड़े बनना होगा, नेवला, बिच्छू, खरगोश, हाथी, गीदड़, चील, कौआ, तोता, कबूतर, गाय, भैंस, बकरी, जो कुछ भी नज़र आ रहा है, वह सब बनना पड़ेगा और उस योनि के अनुसार अपने कर्मों का भोग भोगना होगा। इससे छुटकारा नहीं मिलेगा। कितना समय लगेगा– यह सोचकर ही आदमी काँपने लगता है पर फिर भी अज्ञानी बना घूमता है। जानबूझकर भी अनजान बना हुआ है।

मेरे गुरुदेव गत कई वर्षों से, इन पत्रों के द्वारा हम सबको चेता रहे हैं, सावधान कर रहे हैं कि अभी भी समय है, सँभल जाओ और हरिनाम की शरण लेकर अपने मनुष्य जीवन को सफल कर लो। हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जाप करो। कीर्तन करो।

देखो। याद रखो कि सद्गुरु भगवान् का पार्षद होता है। भगवान् अपने पार्षदों को मृत्युलोक के जीवों के उद्धार के लिये यहाँ भेजते हैं। जो शिष्य अपने गुरु के वचनों में अटूट श्रद्धा व विश्वास करके, उनके आदेश का पालन करता है उसे इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो जाती है। जो गुरु को एक साधारण पुरुष समझता है, वह अपराधी है। जो गुरु का विरोध करता है, वह भगवान् का शत्रु बन जाता है। भगवान् उसे घोर दुःख देने हेतु नरक में डाल देते हैं जहाँ उसे युगों–युगों तक नारकीय यातनायें भोगनी पड़ती हैं। शास्त्र कह रहा है–

"जो सठ गुरु सन ईर्षा करहिं।
रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।
त्रिजुग जोनी पुनि धरहिं शरीरा।
अयुत जन्म तक पावहिं पीरा।।"

ऐसे जीव के दुःखों का कोई अंत नहीं। इसलिये सभी भक्तों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि मेरे श्रील गुरुदेव की आज्ञा का पालन करें और हर वक्त हरिनाम उच्चारण करते रहें। मेरे श्रीगुरुदेव सबका मंगल चाहते हैं। वे चाहते हैं कि सभी भक्त इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति करके असहनीय दुःखों से छूट जायें। मेरे गुरुदेव की चाह में अपनी चाह मिलाने में ही हमारा सर्वोतम लाभ है। अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहो। देखो! मौत का कोई ठिकाना नहीं है। वह किसी भी समय आ सकती है। इसलिये बार–बार इस बात को दुहराया जाता है। मैं अपने पत्रों में कई बातों को बार–बार दुहराता हूँ ताकि हम सावधान हो जायें। हमारी आँखें खुल जायें। देखो! बड़े से बड़ा पाप भी हरिनाम करने से समूल नष्ट हो जायेगा पर यदि वैष्णव अपराध बन गया तो उसका भोग तो भोगना ही पड़ेगा।

मेरे गुरुदेव ने सार रूप में तीन युक्तियाँ बताई हैं जिनको अपना कर, हम निश्चित रूप से अपना कल्याण कर सकते हैं।

1. रात–दिन जो भी कर्म करो, उसे भगवान् का काम मानकर करो।

2. हर प्राणी में भगवान् का दर्शन करो। किसी को भी मत सताओ।

3. हर समय भगवान् का नाम स्मरण करते रहो।

यदि कोई इन तीनों बातों को अपने जीवन में धारण कर ले तो उसका आवागमन निश्चित रूप से समाप्त हो जायेगा ।

श्रीमद्भागवत पुराण में अजामिल के प्रसंग में कथा आती है कि अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को पुकारा था। मृत्यु के समय ''नारायण'' नाम मुख से निकल जाने के कारण उसे भगवान् के पार्षद लेने के लिये आये। चूँकि वह बड़ा अत्याचारी था, पापी था, सबको सताता था, सब गलत काम करता था, इसलिये उसे यमराज के दूत भी लेने आये। यमराज के दूत उसे दंड देना चाहते थे पर भगवान् के पार्षदों ने उन्हें भगा दिया। यमराज के दूतों ने जाकर अपने स्वामी से पूछा कि क्या आपके सिवा कोई और भी भगवान् है।

यमराज ने अपने दूतों को जो आज्ञा दी, वह हम सबको समझनी चाहिये।

यमराज ने कहा–''दूतो ! सुनो ! मैं तो क्या, सभी देवी–देवताओं से बड़े भगवान् हैं। वही सबके मालिक हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी भी उनके अधीन हैं। ये तीनों देवता उनकी कृपा से ही सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं। हर वक्त उसी के नाम का जाप करते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा सभी ग्रह इत्यादि उस भगवान् की शक्ति से ही चल रहे हैं और अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। उसी के डर से समुद्र अपनी मर्यादा में रहता है। मेरे में भी अपनी कोई शक्ति नहीं है। मेरा स्वामी भी

परमात्मा परमेश्वर है। वही कृष्ण है। वही राम है। वही नारायण है। जो भी उसका नाम लेता है, उसका बन जाता है, उस प्राणी को दंड देना मेरे अधिकार में नहीं है। मेरे दूतो! भगवान् के भक्तों की तरफ, आँख उठाकर भी मत देखना। उन्हें प्रणाम करना, नहीं तो मेरा अधिकार भी छिन सकता है। मैं भी उसी की कृपा की बाट जोहता रहता हूँ। हरपल उसी का नाम जप करता रहता हूँ। यदि कोई भी प्राणी, भले ही वह किसी भी जाति का हो, वर्ग का हो, किसी भी देश का हो, गिरते–पड़ते, सोते–जागते, खाते–पीते, चलते–फिरते उसके नामों का उच्चारण करता है तो वह घोर पापों से बच जाता है। यदि कोई किसी भी बहाने, दिखावे के लिये ही सही, मोहवश, भ्रमवश, जाने–अनजाने में भी उसका नाम ले लेता है, तो उसका भी उद्धार हो जाता है।''

देखो ! अजामिल का उदाहरण आपके सामने है। अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को पुकारा था पर भगवान् ने अपने पार्षदों को भेजकर उसे बचा लिया। जिस प्रकार आग का स्वभाव है, वैसे ही हरिनाम का स्वभाव है। आग को जाने–अनजाने कैसे भी छू लो तो जला देगी। इसी प्रकार हरिनाम किसी भी बहाने मुख से उच्चारण हो गया, कान से सुन लिया तो कल्याण कर देगा। यह सत्य है। जो प्राणी इन्द्रियों का संयम करते हुये, मन से नाम लेता है, उसके तो भगवान् पीछे–पीछे डोलते हैं अर्थात् छाया की तरह उसके साथ रहते हैं।

भगवान् की कथाएँ अनंत हैं। साधारण जीव उन्हें समझ नहीं सकता। जिन पर भगवद्–कृपा होती है, वही इन लीलाओं को समझ सकता है।

ध्यान से सुनो! गोलोकधाम उसे ही मिलता है जिसको संबंध ज्ञान मिला होता है। जिसको संबंधज्ञान नहीं मिलता, उन्हें बैकुंठ धाम मिल जायेगा। गोलोकधाम भी बहुत हैं। वैकुण्ठधाम भी बहुत हैं। ऐसा शास्त्रों में वर्णन है। गोलोकधाम की प्राप्ति कैसे हो सकती है इसका वर्णन अगले पत्र में किया जायेगा।

– हरि बोल –

4

श्री श्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
14.07.2011

प्रेमास्पद भक्तप्रवरगण !

अनिरुद्धदास, नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा विरहाग्नि अवस्था चरम सीमा तक बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

गोलोक धाम किसको उपलब्ध होता है ?

भगवान् उसी जीव को गोलोक धाम ले जाते हैं जिसका पूर्ण रूप से मन से संसार का लगाव हट जाता है अर्थात् जिसकी संसार से आसक्ति मूल सहित नष्ट हो जाती है। ऐसे जीव पर भले ही कितने संकट आ जायें, कितनी मुश्किलों का पहाड़ टूट पड़े पर वह उनसे घबराता नहीं, अशांत नहीं होता, उसका मन चंचल नहीं होता क्योंकि वह जान लेता है कि भगवान् हर क्षण उसके साथ हैं। साक्षात् रूप में वह अपने स्वामी को अपने पास, अपने साथ महसूस करता है। वह जान लेता है कि यह संकट, यह दुःख यह तकलीफ मेरा क्या बिगाड़ेंगे ? मेरे भगवान् मेरे साथ हैं, वह स्वयं इनको संभालेंगे। मेरा इनसे कुछ लेना–देना नहीं है।

यही अवस्था है पूर्ण शरणागति की। जिस प्रकार यदि घर में कोई मुसीबत आती है या संकट आता है तो घर के मालिक (पिता) के पुत्र का मन अशांत नहीं होता। क्यों ? इसलिये कि वह अपने पिता पर पूर्ण रूप से आश्रित है, पूर्ण रूप से शरणागत है और वह सोचता है कि मेरा पिता इस संकट को स्वयं झेल लेगा। मैं इसकी चिंता क्यों करूँ ? ठीक उसी प्रकार जब भक्त साधक अपने स्वामी भगवान् के चरणों में पूर्ण रूप से शरणागत हो जाता है तो उसका भार भगवान् को उठाना पड़ता है। उसके संकट का भार भगवान् पर स्वतः ही बन जाता है।

जब महाभारत का युद्ध हो रहा था और पांडवों पर घोर संकट आया था तो वे बिल्कुल भी नहीं घबराये क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण पर पूर्ण रूप से आश्रित थे। उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति थी। इस महाभारत के युद्ध में पांडव पूरी तरह शांत रहे क्योंकि उन्हें मालूम था कि हम पर भगवान् श्रीकृष्ण का हस्तकमल है। वे ही हमारे रक्षक हैं और वे ही इस संकट को संभाल लेंगे। फिर हम चिंता क्यों करें?

जब भक्त की इस प्रकार भगवान् में पूर्ण शरणागति हो जाती है तो भगवान् हर पल उसके अंग–संग रहते हैं। एक पल के लिए भी उससे दूर नहीं जाते। पर यह भाव, यह अवस्था करोड़ों मनुष्य में से किसी एक की होती है। यह बहुत उच्च स्थिति है जो केवल हरिनाम के शरणागत होने पर स्वतः ही आ जाती है। मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर जब हम हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करते हैं तो हमारा बड़ी तेज़ी से विकास होता है, हम बड़ी तेज़ी से अपनी मंज़िल की ओर बढ़ने लगते हैं। हरिनाम में पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण विश्वास, पूर्ण शरणागति जब तक नहीं होगी तब तक यह अवस्था नहीं आयेगी।

'गोलोकेर प्रेमधन हरिनाम–संकीर्तन'

श्रील नरोत्तम ठाकुर कहते हैं कि गोलोकधाम का प्रेमधन, श्रीहरिनाम संकीर्तन है। हरिनाम–संकीर्तन के द्वारा ही पतितों, दीन–हीनों का उद्धार हुआ है। इस बात का प्रमाण हैं–जगाई और माधाई।

दीन हीन यत छिल, हरिनामे उद्धारिल
तार साक्षी जगाई–माधाई।

पर दुर्भागा मनुष्य, सुदुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर भी श्रीश्रीराधा कृष्णजी का भजन नहीं करता, इसलिये वह अशांत है, दिन–रात संसार रूपी विषयानल में उसका हृदय जल रहा है।

देखा जाता है कि थोड़ा सा संकट आने पर भक्त घबरा जाते हैं जिसका मलतब है कि उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति नहीं है। जब भक्त की भगवान् के चरणों में पूर्ण शरणागति बन जाती है तो उसमें विरह की अवस्था की स्थिति स्वतः ही आ जाती है। यह विरहावस्था भगवान् के लिये तड़प पैदा कर देती है। भक्त का मन भगवान् को मिलने के लिये व्याकुल हो जाता है। वह दिन–रात उसके दर्शन के लिये आतुर हो जाता है। एक गोपी ''ॐ अलि'' (अनिरुद्ध प्रभु) की अवस्था देखिये, क्या कह रही है?

रात–दिना याद में तड़पूं, मेरा जिया अकुलावे है।
कैसे धीर धरूं मैं सजनी, कलेजा क्षण–क्षण खावे है ।।
ये चाँदवा बैरी भया री आली, ये अग्नि बरसावे है।
भूख न लागे, प्यास न लागे, तन मेरा थर्रावे है,
माधव 'ॐ अलि' है तेरी, तोहे शर्म न आवे है।

जब भक्त की ऐसी अवस्था हो जाती है तो पूर्ण रूप से उसका मन संसार से हट जाता है। वह दिन–रात भगवान् के विरह में बेचैन रहता है, तड़पता है। उसके लिये खाना–पीना, सोना, जागना, चलना–फिरना सब भार बन जाता है। वह पागलों की तरह हँसने लगता है, कभी रोता है। ऐसी गहरी स्थिति में पहुँच कर, वह अपने शरीर की सुध–बुध भूल जाता है। लोग उसे पागल समझते हैं पर उसकी वास्तविक स्थिति को कोई नहीं समझता। कोई अनुभवी संत ही उसे पहचान सकता है।

जिस भक्त की स्थिति ऐसी बन जाती है, भगवान् उसे अपना पारिवारिक संबंध दे देते हैं। जिस भाव से वह भगवान् को भजता है, याद करता है, उसी भाव के अनुसार भगवान् उसे संबंध–ज्ञान दे देते हैं, क्योंकि भगवान् तो अन्तर्यामी है, सबके हृदय की बात जानते हैं । अतः उसके मन के अनुरूप ही उसे पुत्र, भाई, सखा, मंजरी, इत्यादि का संबध प्रदान कर देते हैं, उसके हृदय में प्रेरित कर देते है। संबंध–ज्ञान जब तक नहीं होगा, तब तक

श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति नहीं होगी। संबंध–ज्ञान होने पर ही विरह उदय होता है। संबंध ज्ञान होने पर ही भगवद्–दर्शन होता है।

मीरा जी भगवान् को पति रूप में देखती हैं। मीरा जी कहती हैं–

"जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।।"

जब हमें संबंध ज्ञान मिल जाता है तो किसी से क्या लेना–देना। कभी–कभी भक्त प्रेम के वशीभूत होकर भगवान् से शिकायत भी करता है, उसको निहोरा भी मारता है, ताने भी देता है। नरसी भक्त जी ने भात भरने पर भगवान् को ताने मारे हैं। स्वामी श्रीहरिदास जी का मंजरी भाव था और उन्होंने श्रीबाँकेबिहारीजी को प्रकट कर दिया। इसी प्रकार हर भक्त का अपना–अपना भाव होता है जिसके अनुसार ही वह भगवान् से अपने हृदय की बात करता है। अब मेरा शिशु भाव है। मैं भगवान् का एक छोटा सा शिशु हूँ। उनकी गोद में चढ़ जाता हूँ। कभी उन्हें परेशान करता हूँ। कभी रोने लगता हूँ तो वे मुझे चुप कराते हैं। रुक्मिणी की गोद में बिठा देते हैं। मुझे दुलारते, पुचकारते और प्यार करते हैं। कई बार उन्हें मेरे गुस्से को भी सहन करना पड़ता है । मेरी ज़िद्द भी पूरी करनी पड़ती है क्योंकि मैं उनका शिशु हूँ। उन्हें मेरी बात सुननी ही पड़ेगी।
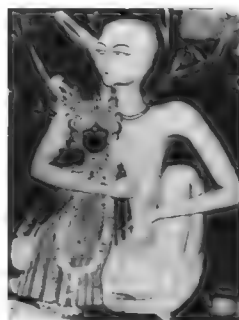
वास्तव में भाव की गति विचित्र है, इसे समझना असंभव है। जब तक संबंध ज्ञान नहीं होगा, गोलोकधाम की प्राप्ति नहीं होगी। संबंध–ज्ञान होने के बाद ही गोलोकधाम की प्राप्ति हो सकती है। जिन भक्तों का कोई संबंध नहीं बना, भाव नहीं बना और साधारण

रूप में, मन से वह भगवान् से जुड़े हैं, वे केवल वैकुण्ठ में ही जाते हैं। जहाँ से अन्तर्यामी भगवान् उसके अन्तःकरण में थोड़ा सा संबंध का भाव देकर, इस धरातल पर किसी भक्त के घर में जन्म दे देते हैं। फिर उसी भाव में भक्ति करके वह संबंध–ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। संबंध–ज्ञान होने के बाद उसे गोलोक धाम उपलब्ध हो जाता है।

उपरोक्त जो भी बातें कही गई हैं, यह सब बातें मेरे श्रील गुरुदेव सभी भक्तों को समझा रहे हैं। इन बातों को समझकर भक्तिमार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार भक्ति में आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर होगा।

देखो! गोलोकधाम भी एक नहीं है। बहुत से गोलोकधाम हैं। जिस भक्त का जैसा भाव होता है, उसे उसी भाव वाले गोलोकधाम में भेजा जाता है। इसी प्रकार वैकुण्ठ धाम भी अनेक हैं। वैकुण्ठ धाम तो भगवान् की कृपा मिलने पर ही उपलब्ध हो जाता है पर जब तक संसार की आसक्ति बनी रहेगी, बार–बार जन्म लेना पड़ेगा। भगवान् सबके हृदय की बात जानते हैं। साधक के अन्तः करण में जो भाव होता है, वह बाहर भी प्रकट हो जाता है। जिस भक्त का मन संसार से पूर्ण रूप से नहीं हटा, उसे भगवान् बार–बार अपने भक्तों के घरों में जन्म देते रहते हैं ताकि धीरे–धीरे भक्ति करके, संबंध–ज्ञान होने पर, उसे गोलोकधाम उपलब्ध हो सके। ऐसे भक्त को गोलोकधाम मिलने में ज्यादा समय लगता है।

जिस प्रकार जब कोई बच्चा स्कूल में जाता है तो हर साल अगली कक्षा में जाता रहता है। प्रथम, दूसरी, तीसरी, चौथी से लेकर आठवीं, दसवीं फिर कॉलेज, फिर यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी करके उसे नौकरी मिल जाती है। पर पढ़ाई किए बिना एक अच्छी नौकरी उसे नहीं मिलेगी।

अब संबंध–ज्ञान उदय कैसे होगा? यह बात भी समझ लो। संबंध–ज्ञान उदय होगा केवल तीन लाख हरिनाम नित्य प्रति करने से तथा कान से सुनने से अर्थात् एकाग्रता होने पर। जब तक मन

संसार की ओर भागता रहेगा, हरिनाम में एकाग्रता नहीं बनेगी। भजन होगा पर अनमने मन से। अधिकतर भक्तों को नामाभास ही होता है जिसके कारण वे विरहावस्था से बहुत दूर होते हैं। संबंध–ज्ञान हुये बिना विरह उदय नहीं होगा। विरह उदय हुये बिना पूर्ण शरणागति का भाव नहीं बनेगा और पूर्ण शरणागति बिना गोलोकधाम की प्राप्ति नहीं होगी। यह स्थिति बहुत ऊँची है, कोई विरला ही इसे उपलब्ध कर पाता है।

जिस प्रकार गोलोकधाम को कोई विरला ही प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी किसी विरले को ही प्राप्त होता है जिसका कारण है– नामापराध। नामापराध होने से भक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और बार–बार नामापराध होने से उसका किया–कराया सब व्यर्थ हो जाता है। कई लोग मुझे आकर अक्सर पूछते हैं कि हम हरिनाम करते हैं और भगवान् के शरणागत हैं पर हमें विरह नहीं होता। हमारी भक्ति बढ़ नहीं रही है। उन सभी भक्तों के लिये मेरे गुरुदेव ने एक नहीं, बहुत बार बोला है कि यह सच्ची–भक्ति नहीं है। ये सभी ऊपर से कहते हैं कि हम हरिनाम करते हैं, क्या वे पूरी तरह से भगवान् पर निर्भर हैं ? नहीं। वास्तव में, कोई भी भगवान् को नहीं चाहता। सभी अपने परिवार की खुशहाली चाहते हैं। भगवान् को तो कोई विरला ही चाहता है। मैं कई बार साधकों से पूछता हूँ कि इस इतवार को मैंने जो बोला है, उसे उन्होंने ध्यान से सुना है या नहीं। यदि सुना है तो क्या वे बता सकते हैं कि मैंने क्या बोला था ? जवाब मिलता है – हमें तो कुछ याद नहीं। जब तक आप मेरे गुरुदेव की वाणी को कान से नहीं सुनोगे, एकाग्रता से उस पर ध्यान नहीं दोगे, उसके अनुसार नहीं चलोगे तो अपराध होगा ही। फिर कैसे हरिनाम में रुचि होगी ? कैसे विरह उदय होगा ? कैसे भगवद् प्राप्ति होगी ? ऐसे साधक को सपने में भी भगवद्–प्राप्ति नहीं हो सकती। वह भक्ति से अभी कोसों दूर है और उसे निष्ठापूर्वक, श्रद्धा व विश्वास के साथ, कम से कम एक लाख हरिनाम, उच्चारण के साथ, कान से सुनकर करना होगा।

मेरे श्रीगुरुदेव एक उदाहरण देकर सभी भक्तों को समझा रहे हैं कि जब तक संसार में आसक्ति है, विरह उदय नहीं होगा।

एक पतिव्रता स्त्री का पति परदेश में रहता है और वह दिन–रात उसके लिए तड़पती रहती है पर समाज के भय से, शर्म के कारण अपना दुःख किसी से कह नहीं सकती। अंदर ही अंदर घुटती रहती है, रोती रहती है।

एक दस महीने के बच्चे की माँ परलोक सिधार गई है। वह शिशु माँ की गोद के लिए बेचैन है और स्तनपान के लिये छटपटाता है। वह न खिलौनों से खेलता है, न कुछ खाता है। बस रोता ही रहता है। सभी उसे खिलाने की कोशिश करते हैं, चुप कराते हैं पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसे तो अपनी माँ चाहिये। अपनी माँ की गोद चाहिये। माँ की गोद के सिवाय कोई भी चीज़ उसे वह खुशी नहीं दे सकती। यही है पूर्ण शरणागति का भाव। यदि भक्त का भाव उस पतिव्रता स्त्री जैसा बन जाये, उस शिशु जैसा बन जाये तभी समझना चाहिये कि वह भगवान् के शरणागत है। मेरे गुरुदेव ने सबको समझाने के लिये ही यह उदाहरण दिया है। अब जो भी साधक या भक्त कर रहे हैं, वह नाम–स्मरण नहीं है। केवल नामाभास है।

मेरे गुरुदेव सब कुछ स्पष्ट कह देते हैं। साधकगण ! भक्तजन ! नाराज़ न हों वरना घोर अपराधी बन जायेंगे। मेरे गुरुदेव तो सभी का कल्याण चाहते हैं। वह चाहते हैं कि सभी इस जन्म–मरण के चक्कर से छूट जायें। इसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सभी के उद्धार के लिये कितने पत्र लिखवा चुके हैं। रविवार को आयोजन भी इस लक्ष्य को लेकर ही शुरु किया गया है पर स्थिति वहीं की वहीं है। यह सब इसलिये हो रहा है कि भक्तजनों की पूर्ण शरणागति नहीं है। उनका मन तो संसार में फंसा है। मन तो एक ही है उसे चाहें भगवान् को दे दो या संसार को। भगवान् को मन देने से संसार अपने आप ठीक चलने लगेगा। फिर भगवान् की जिम्मेदारी हो जायेगी हमारे परिवार को चलाने की, संसार को

चलाने की, पर हमें विश्वास ही नहीं है, न अपने–आप पर, न भगवान पर। एक बार अपनी जीवन की नैया की बागडोर भगवान के हाथ में सौंप कर तो देखो ! कहने से नहीं, करने से होगा। इसलिये मैं बार–बार कहता हूँ कि प्रतिदिन कम से कम एक लाख हरिनाम ज़रूर करो। उच्चारण करो तथा कान से सुनो पर तीन साल हो गये मुझे बोलते हुये। मैं तो अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ और हर रविवार को उनकी वाणी सबको सुनाता हूँ पर इन श्रोताओं में से कोई एक भी ऐसा नहीं जिसे विरह उदय हुआ हो। इसका कारण साफ है – संसार में आसक्ति। संसार में मन का फँसना।

देखो! श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं –

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

(गीता 18.65)

"हे अर्जुन! तू मुझ में मन वाला हो। मेरा भक्त बन। मेरा पूजन करने वाला हो और मुझे प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ , क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।"

देखो ! भगवान् ने अर्जुन को कहा है कि तेरा यह मन मेरा है जो तूने अपना अधिकार समझ कर अपने काबू में कर रखा है। इस मन को माया का दास बना रखा है, इसी कारण तू दुःखी हो रहा है। हे अर्जुन! किसी दूसरे की वस्तु पर अधिकार जमाकर कोई सुखी नहीं रह सकता। यह अटल सिद्धांत है। अतः तू इस मन को, जो मेरा है, मुझे सौंप दे तो सुखी हो जायेगा। जब तू यह मन मुझे दे देगा तो दसों इन्द्रियाँ भी इस मन के साथ हो जायेंगी। जब यह मेरी वस्तु तू मुझे सौंप देगा तो अपने–आप ही तुझमें शरणागति का भाव उदय हो जायेगा और तू परम सुखी हो जायेगा। फिर तुझे शरण होने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा। जब तुझ में शरणागति

का भाव उदय हो जायेगा तो तेरे जीवन का सारा भार मैं अपने ऊपर ले लूँगा और तू मुझ को ही प्राप्त हो जायेगा। फिर तो तेरे सारे दुःखों का बखेड़ा मूल सहित समाप्त हो जायेगा। बस, एक बार अपना मन मुझे सौंप दे, फिर देख मैं तेरे लिये क्या करता हूँ। अभी तक तूने इसे अपने पास रखा हुआ है, इसलिये दुःखी है। इसलिये मैं कहता हूँ कि यदि तू शाश्वत सुख चाहता है, मेरे पास मेरे धाम में आना चाहता है तो इन चारों बातों को कर। अपना मन मुझे सौंप दे। मेरा भक्त बन जा। मेरी पूजा कर और मुझे प्रणाम कर।

मन भगवान् को सौंपने का अर्थ है–हर समय हरिनाम करते रहना। भगवद्–नाम करते रहना और कान से श्रवण करते रहना ही मन का भगवान् को सौंपना है। मेरे गुरुदेव ने स्पष्ट कहा है–

"While chanting harinam sweetly, listen by ears."

जब हम उच्चारणपूर्वक हरिनाम करेंगे और कान से श्रवण करेंगे तो स्वतः ही भगवान् के लिये तड़पन पैदा होने लगेगी। उनके दर्शन के लिये छटपटाहट होने लगेगी, मन अकुलाने लगेगा, शरीर पुलकित होने लगेगा और अश्रुपात होने लग जायेगा। धीरे–धीरे मन संसार से हटता जायेगा और भगवान् के नाम स्मरण में रुचि बढ़ती जायेगी। इस बात को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

मेरे श्रीगुरुदेव बता रहे हैं कि जब किसी कन्या का विवाह किसी लड़के के साथ माँ–बाप कर देते हैं तो उसे अपने माँ–बाप का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है। यदि वह पूर्ण समर्पण कर, पूर्ण शरणागत होकर, उस पति की सेवा करती है तो उसकी सारी ज़िम्मेदारी उसका पति अपने ऊपर ले लेता है और वह अपने पति के चरणों में रहकर, अपना पूरा जीवन सुख से बिताती है।

देखो! इस बात को ध्यान से समझो। जब तक कन्या रूपी यह जीवात्मा, अपने पति रूपी परमात्मा के चरणों में पूर्ण रूप से

समर्पण नहीं करेगी, पूर्ण रूप से उसके शरणागत नहीं होगी, तब तक इसे परमानंद की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, भगवद्धाम की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अपने पति रूपी परमात्मा के धाम में निवास करने के लिये उसे अपने माँ–बाप (मायके) के घर को छोड़ना ही पड़ेगा, उसका त्याग करना ही पड़ेगा। यह परमावश्यक है। माँ–बाप का घर छोड़े बिना, माँ–बाप का त्याग किये बिना, उसे पति का धाम उपलब्ध नहीं हो सकता।

यही बात विचारने की है। यही है संबंध–ज्ञान का महत्वशाली चिन्मय विचार। भगवद् कृपा बिना यह भी समझ में नहीं आ सकता। जिस पर गुरु–वैष्णव की कृपा होगी, वही इस तथ्य को समझ सकता है।

वैदिक परंपरा के अनुसार, माँ–बाप ही अपनी कन्या का वर ढूँढ़ते हैं और पूरी सामाजिक परंपराओं के साथ उसकी शादी एक योग्य, बुद्धिमान, विद्वान एवं सुरक्षित लड़के से करते हैं जो जीवन भर उनकी कन्या की ज़िम्मेदारी उठा सके। बड़ी सोच–विचार के बाद, माँ–बाप अपनी बेटी का संबंध, उसके पति (संबंध–ज्ञान) से करते हैं। जो पहले एक पुत्री थी, अब वह एक पत्नी बनेगी और माँ–बाप उसे यह संबंध–ज्ञान देंगे कि आज के बाद अमुक पुरुष तेरा पति होगा।

इसी प्रकार श्रील गुरुदेव अपने शिष्य का संबंध परमात्मा से जोड़ते हैं। वह जीवात्मा जो पहले पुत्र, भाई, पति या पिता था अब श्रीगुरुदेव की कृपा से एक शिष्य बन जाता है और गुरुदेव की कृपा से, उनके आदेश का पालन करने, उनके मार्गदर्शन में हरिनाम करने से, उसे वह संबंध–ज्ञान प्राप्त हो जाता है जो उसे गोलोकधाम उपलब्ध करा देता है। नामाभास से वैकुण्ठ मिल जायेगा। वैकुण्ठ में दुःख की छाया भी नहीं है। वहाँ पर परमानंद का स्रोत बहता रहता है। स्वतः ही भगवान् का प्रेम मिलता रहता है पर जब तक संबंध–ज्ञान नहीं होगा तब तक गोलोक धाम की उपलब्धि नहीं होगी। इस पूरे प्रसंग का सार यही है कि केवल

हरिनाम के द्वारा, किसी नामनिष्ठ के आनुगत्य में रहकर, हरिनाम करके, नामापराध से बचते हुये, श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, उच्चारणपूर्वक, हरे कृष्ण महामंत्रः–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करके ही गोलोक धाम में जाया जा सकता है।

– हरि बोल –

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
20.07.2011
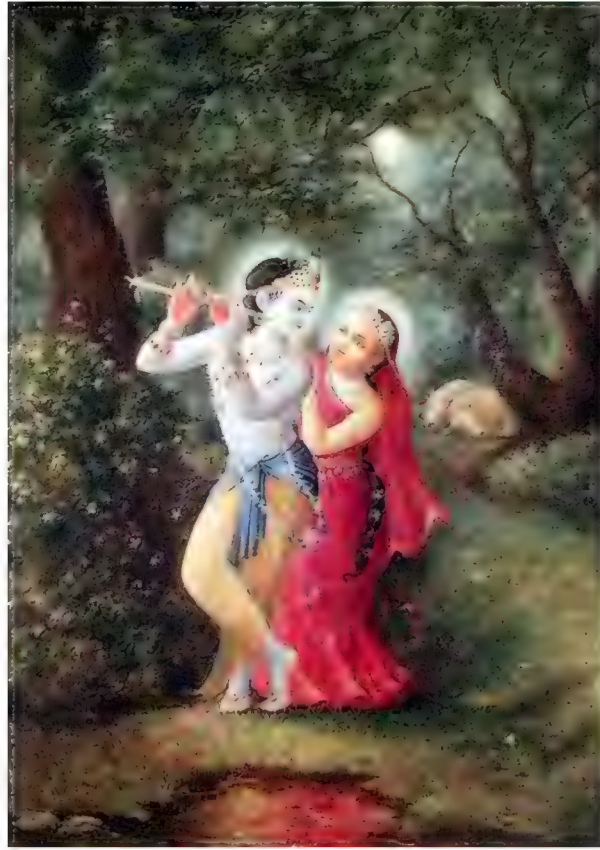
नामाभास से वैकुण्ठ प्राप्ति

जिस प्रकार यदि कोई जाने–अनजाने कैसे भी अमृत पी लेवे तो वह उसको अमर बना देता है। यदि कोई जाने–अनजाने में ज़हर पी लेता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है। अग्नि को छू ले तो वह जला देती है उसी प्रकार हरिनाम का स्वभाव है कि जिस भी जिह्वा या मुखारविंद से हरिनाम का उच्चारण हो जायेगा, भले ही वह भाव से हो या कुभाव से, अपना प्रभाव ज़रूर दिखायेगा। जैसे बिच्छू का स्वभाव है कि जिस जगह पर वह स्पर्श करेगा, वहाँ अपना ज़हरीला डंक मार कर ही रहेगा और यदि कोई सांप को छेड़ेगा तो वह अपने ज़हरीले दाँतो से उसे डस लेगा। इसी प्रकार हरिनाम का स्वभाव है। हरिनाम कैसे भी लिया जाये, सबका मंगल करता है और हरिनाम करने वाले का उद्धार होना निश्चित है।

शास्त्र उद्घोष कर रहा है, ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें :–

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

भले ही भाव से या बिना भाव के हरिनाम लिया जाये, भगवद्–नाम जीव का दसों दिशाओं में मंगल विधान करेगा। ऐसा हरिनाम का स्वभाव है।

अजामिल का उदाहरण प्रत्यक्ष है। उसने अपने पुत्र नारायण (भगवान्) का नाम अपने मुख से उच्चारण किया तो उसके वैकुण्ठ जाने की युक्ति बन गई। उसने भगवान् को नहीं बुलाया था। उसने तो अपने पुत्र को बुलाया था।

अजामिल के मुख से भगवान् का नारायण नाम क्यों निकला ? उसका भी कारण था। एक दिन अजामिल के घर पर कुछ साधु

बिना बुलाये पहुँच गये और न चाहते हुये भी अजामिल से उनकी सेवा बन गई। देखो! जिस घर में संतो के, वैष्णवों के चरण पड़ जाते हैं, वह वैकुण्ठ बन जाता है। सभी खुशियाँ वहाँ प्रगट हो जाया करती हैं। यह साधुओं की सेवा का ही फल था कि वह अपने मुख से नारायण नाम का उच्चारण कर सका।

श्रीमद्भागवत पुराण में जय–विजय के प्रसंग में वर्णन मिलता है कि जब उन्होंने सनकादि मुनियों को वैकुण्ठ की ड्योढ़ी पर ही रोक दिया तब सनकादि ऋषियों ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम इस वैकुण्ठ में रहने योग्य नहीं हो। जाओ! तीन जन्म तक राक्षस योनि में रहो।
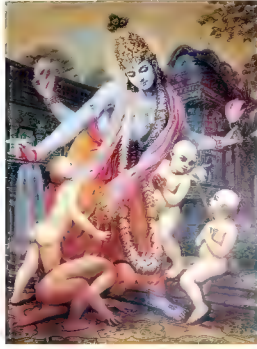
सनकादि का शाप सुनकर भगवान् नारायण सनकादि ऋषियों के पास आये और पूछने लगे कि क्या बात है जो आप इतने गुस्से में हो?

भगवान् की बात सुनकर जय–विजय बोले कि हमने इनके चरणों में अपराध किया है अतः हमें इनसे शाप मिला है। यह हमारा दुर्भाग्य है।

सनकादि ऋषियों ने कहा कि जय–विजय ने हमें आपके पास आने से रोका तो आपसे मिलने में बाधा डालने के कारण, हमने इन्हें तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप दिया है। यदि आप चाहें तो हम यह शाप वापस ले लेते हैं।

भगवान् नारायण ने कहा कि यह सब हमारी इच्छा से ही हुआ है, आप चिंता न करें। मैंने ही जय–विजय को प्रेरणा करके आपका रास्ता रुकवाया और आपको प्रेरणा करके इन्हें शाप दिला दिया। इसमें किसी का भी कोई दोष नहीं है। देखो! जब मेरी कोई लीला करने की इच्छा होती है तो मैं संतों के हृदय में प्रेरणा करके किसी को शाप या वरदान दिला देता हूँ।

यही बात अजामिल के प्रसंग में आती है। साधुओं ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा कि अपने होने वाले बेटे का नाम नारायण रखना। अजामिल की सेवा के ऋण से उऋण होने के लिये ही संतों ने नारायण नाम उच्चारण करवाया था। यदि वह अपने बेटे का नाम नारायण नहीं रखता तो वह नारायण नाम का उच्चारण भी नहीं कर पाता। पुत्र का नाम नारायण रखने से वह उसे दिन भर नारायण–नारायण कहकर बुलाता था और उसके पाप समाप्त होते गये। बार–बार नारायण नाम का उच्चारण करने से उसका हृदय निर्मल हो गया और अंत में जब यमराज के दूत उसे लेने आये तो उन्हें देखकर वह डर गया। उस डर से, उसने अपने बेटे नारायण को पुकारा। अंत समय में भगवान् का नाम उसके मुख से निकल गया। तभी भगवान् नारायण के पार्षद वहाँ पहुँच गये और उन्होंने यमराज के दूतों को वहाँ से भगा दिया। एक बार के नाम–उच्चारण ने उसकी मृत्यु बदल दी। कहाँ यमदूतों का फांसी का फंदा और कहाँ वैकुण्ठ जाने के लिए विमान ! पर यह सब अचानक नहीं हुआ ! उसने साधुओं की सेवा की थी। उनकी आज्ञा का पालन करके अपने बेटे का नाम नारायण रखा था।

साधुओं की सेवा का यह फल था। भगवान् अपने भक्तों को बहुत प्यार करते हैं। उनकी बात को कभी नहीं टालते। उनका प्रिय संत, उनका प्यारा भक्त जो कुछ अपने मुख से बोल देता है, भगवान् उसकी बात को सत्य कर दिखाते हैं। यह भगवान् का स्वभाव है कि वह थोड़े को भी बहुत बड़ा मानते हैं। पर अभागा जीव फिर भी उनकी शरण में नहीं जाता।

मेरे श्रील गुरुदेव ने सभी साधकों/भक्तों पर कृपा करके यह रविवार के सत्संग का आयोजन शुरु किया है और कहा है कि जो भी इस सत्संग में 80 प्रतिशत उपस्थिति करेगा, उसे इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति अवश्य होगी। भले ही उसे कुछ समझ आये या नहीं, उसका उपस्थित रहना ही बहुत बड़ी बात है। इसी से उसका

मंगल हो जायेगा। गर्मियों में इस रविवारीय सत्संग का समय 7 बजे होता है पर फिर भी साधक/भक्त समय पर नहीं पहुँचते। इसलिये मेरे गुरुदेव ने उद्घोष किया है कि जो साधक समय पर नहीं आयेगा या सात बजे के बाद आयेगा, उसका नाम उपस्थिति पंजिका में नहीं लिखा जायेगा। उसकी उपस्थिति नहीं मानी जायेगी। जो साधक एक सप्ताह में डेढ़ घंटे का समय भगवान् के लिये नहीं निकाल सकता वह भगवान् को क्या चाहेगा ? वह तो केवल दिखावा करता है। भगवान् तो उससे कोसों दूर हैं। उसकी हरिनाम में रुचि नहीं हो सकती क्योंकि वह तो हरिनाम के बदले अपने परिवार की खुशहाली चाहता है। वह भगवान् को नहीं चाहता।

हर रविवार के सत्संग के बाद, मैं कभी–कभी उपस्थित साधकों से पूछता हूँ कि आज मैंने क्या बोला था तो जवाब मिलता है, मुझे कुछ भी याद नहीं है। मतलब साफ है कि वह बेमन से आता है। यदि वह भगवान् को चाहेगा तो समय से सत्संग में आवेगा। एकाग्रचित होकर सत्संग सुनेगा तो कुछ न कुछ उसे याद रहेगा न। पर बेमन से किया हुआ काम बिगड़ जाता है।

मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि ऐसा साधक कई बार अनिरुद्ध प्रभु की बातें सुनकर नाराज़ भी हो जाता है पर इससे अनिरुद्ध प्रभु का तो कुछ भी बिगड़ेगा नहीं। हाँ, उस साधक का अपराध ज़रूर बन जाएगा और वह इस आयोजन में आना बंद कर देगा। इससे बड़ा नुकसान और क्या हो सकता है ! मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि मैं तो ठाकुर जी के आदेश का पालन कर रहा हूँ और साधकगण को इसकी कोई परवाह नहीं और वे मनुष्य जन्म को बेकार में खो रहे हैं।

कभी–कभी मेरे गुरुदेव मीठी दवाई का सेवन कराते हैं तो कभी कड़वी दवाई भी देते हैं ताकि विषयों का विष समाप्त हो जावे। जो साधक समय का पाबंद नहीं है, उसका नाम रविवार के सत्संग की लिस्ट में नहीं लिखना होगा – ऐसा मेरे गुरुदेव ने

बोला है। जो साधक जानबूझकर लेट आता है, वह जघन्य अपराध कर रहा है। जिन साधकों ने अपराध किया है, वे जानते हैं और उनका आना ही बंद हो गया।

यदि आदमी अपने दफ्तर समय से जा सकता है, डाक्टर के पास समय पर पहुँच सकता है, दुकान समय पर खोल सकता है तो क्या सप्ताह में एक दिन, केवल एक बार सत्संग में समय पर नहीं आ सकता ? क्या पूरे सप्ताह में डेढ़ घंटा नहीं निकाल सकता ? जिस सत्संग में जाने से आत्मा का पोषण होता है वहाँ पर तो मन जाता नहीं और जहाँ केवल पेट भरने का साधन है, वहाँ मन लग जाता है। कितनी विडम्बना है ! कितनी मूर्खता है ! शरीर का साधन तो अनित्य है। शरीर आज है, कल नहीं रहेगा पर आत्मा नित्य है, शाश्वत है। शरीर दुःखों का घर है और आत्मा ही सुख देने वाला है। देखो! ऐसा शुद्ध सत्संग फिर कभी उपलब्ध नहीं होगा। इतना सरल उपाय मिलने पर भी, इतनी सुगमता से भगवान् से मिलने का शुभ अवसर मिलने पर भी, वह नरक में जाना चाहता है। इसलिये तो शास्त्र कह रहा है कि करोड़ों में से कोई विरला ही इस मार्ग पर चलता है अन्यथा सभी माया के चक्कर में फँसे हुये हैं।

देखो! नामापराध बहुत खतरनाक है। नामापराधी एक लाख हरिनाम कर ही नहीं सकता, स्वयं नाम ही उससे रुष्ट हो जाता है। नाम स्वयं आराध्य अथवा साध्य भी है तथा साधन भी है।

मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि इन सभी साधकों को दुःख से छुड़ाने के लिये ही मैंने इस रविवार के आयोजन को शुरु किया है पर कोई भी इसे गंभीरता से नहीं ले रहा। ऐसे साधकों का इस जन्म में उद्धार होना बहुत मुश्किल है। मेरे गुरुदेव सबके मन की बात जानते हैं। सबके ह्रदय के भाव समझते हैं। उनसे कुछ भी छुपा हुआ नहीं है। आज मेरे गुरुदेव को इस बात का बहुत दुःख हुआ है कि बार–बार कहने पर, बार–बार समझाने पर भी साधकगण बेपरवाह बने हुये हैं। इसलिये आज कड़वी दवाई सभी साधकों को

खिला रहे हैं ताकि वे अभी भी सँभल जायें अन्यथा पछताने के सिवा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

कई साधक किसी के बहकावे में आकर अनुष्ठान या पुरश्चरण करवाना चाहते हैं, उनको गुरुदेव का आदेश है कि वे इन चक्करों में बिल्कुल न पड़ें। यदि करना ही है तो ज्यादा से ज्यादा हरिनाम करो। जो लोग अनुष्ठान या पुरश्चरण करने लगे थे, वे भजन से गिर गये। पुरश्चरण में तो काम की गंध भी नहीं होनी चाहिये। इसलिये गुरुदेव ने केवल हरिनाम करने के लिये ही कहा है। हरिनाम से ही सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। **हरिनाम चिंतामणि है। हरिनाम करते समय जैसा चिंतन करोगे, वही फल अवश्य मिलेगा।**

हरिनाम के प्रभाव का एक प्रत्यक्ष उदाहरण बता रहा हूँ। चंडीगढ़ में अमुक नाम से एक सज्जन हैं। बैंक मैनेजर थे और रिटायर होने के बाद बीमार रहने लगे थे। पूरे शरीर में दर्द रहता था। हृदय के वाल्व (volves) 90 प्रतिशत खराब हो चुके थे। इलाज के लिये न तो पैसे थे और न ही ठीक होने की गारंटी थी। उन महाशय ने मुझसे संपर्क किया तो मैंने कहा कि कान से सुनकर हरिनाम की 32 माला (50 हज़ार हरिनाम) कम से कम हर रोज़ करना शुरु कर दो। आपरेशन की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। वे मुझ पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। उन्होंने मेरी बात मान ली और कान से सुनकर हरिनाम की 64 माला करने लगे। मरता क्या न करता ! और कोई उपाय भी तो नहीं था। अब वे महाशय बिल्कुल ठीक हैं। उनका न कोई आपरेशन हुआ और न कोई पैसा खर्च हुआ। न कोई दवाई ली। कान से सुनकर हरिनाम वे करते रहे और बिल्कुल ठीक हो गये। अब वे प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करते हैं। चंडीगढ़ के भक्त उन्हें जानते हैं। यहाँ नाम देना ठीक नहीं। आज भी वे हर बात में मेरी सलाह लेते हैं।

ऐसे एक नहीं, बहुत से उदाहरण हैं। हरिनाम करने से कितनों का जीवन बदल गया। कितने बेरोज़गारों को नौकरी मिल गई।

कितनों के घर बस गये। मतलब साफ है–मुझ पर विश्वास और मेरी बातों में श्रद्धा। यहाँ सबका वर्णन कठिन है। कभी समय मिला तो वर्णन किया जा सकता है।

देखो ! हरिनाम समय का पाबंद नहीं है। जब चाहो, जिस वक्त भी चाहो, किसी भी अवस्था में हरिनाम कर सकते हो। मनुष्य जन्म बहुत मुश्किल से मिला है। इसलिये एक बात को बार–बार दुहराना पड़ जाता है ताकि बात हमारे मन में बैठ जाये। कभी साधक कहा करते हैं कि आप तो वही बातें बार–बार दुहराते हैं। मैं पूछता हूँ इतनी बार सुनकर भी, इतनी बार दुहराये जाने पर भी आप पर कोई असर नहीं पड़ा। वही ढाक के तीन पात। मेरे गुरुदेव ने बार–बार इन बातों को दोहराया है। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज भी बार–बार इन बातों को दुहराते हैं। मैं भी बार–बार यही कहता हूँ कि–

हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

भगवान् को जितना अपना भक्त प्रिय होता है, उसका चरित्र भी उतना ही प्रिय होता है। अपने भक्तों का जीवन–चरित्र सुनने में भगवान् को बहुत आनंद आता है। साधकों को शिक्षा देने के लिये ही महाप्रभु ने गदाधर जी से सौ से भी ज्यादा बार भक्त प्रह्लाद तथा ध्रुव जी का चरित्र सुना था। भक्त का चरित्र जो भगवान् को सुनाता है, उसे भगवान् हृदय से लगाये रखते हैं। भगवान् तो केवलमात्र भक्तों की प्रसन्नता के लिये इस धरातल पर आकर लीला करते हैं अन्यथा उनके आने का कोई दूसरा कारण नहीं है।

साधकगणो ! एक महत्वपूर्ण बात मेरे गुरुदेव बता रहे हैं, ध्यान देकर सुनो। मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि हर रोज़ सोते समय तथा प्रातः जागते समय जैसा मैं बोल रहा हूं, वैसे बोला करो–

"हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे और मेरे तन से अंतिम सांस निकले तो अपने नाम का उच्चारण मेरे मुख से करवा देना।"

मेरे गुरुदेव के इस बोल को बोलने से भगवान् पर ऋण चढ़ जायेगा और जो नित्यप्रति बोलेगा उससे भगवान् अंतिम सांस में अपना नाम उच्चारण करवा देंगे। मेरे गुरुदेव के वचन को सत्य करने हेतु भगवान् को अपना नाम उच्चारण कराना पड़ेगा। पर जो मेरे गुरुदेव के वचनों पर विश्वास नहीं करेगा, उसकी भगवान् कोई गारंटी नहीं लेंगे।

मेरे गुरुदेव फिर बता रहे हैं कि भगवान् को अपना भक्त बहुत प्यारा होता है। यदि कोई भगवान् के प्यारे पुत्र को गोद में लेकर प्यार करे अर्थात् उसकी सेवा–सुश्रुषा करे तो भगवान् की दृष्टि उस पर अपने आप ही चली जाती है और भगवान् उससे बहुत प्रसन्न होते हैं। उस पर भगवद्–कृपा बरसने लगती है।

इस लेख का सार यही है कि यदि आप अपना मंगल चाहते हो, अपना उज्ज्वल भविष्य चाहते हो, सदा–सदा के लिये जन्म–मरण के इस चक्कर से छूटना चाहते हो, इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति करना चाहते हो तो हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।

की नित्यप्रति चौंसठ माला अवश्य करो व नामापराध से बचो।

– हरि बोल –

विषयी जनों के धन और अन्न दोनों से मन मलिन होता है। मन मलिन होने से श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं होता।

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
25.07.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारंबार प्रार्थना।

महापापी अजामिल का अंतिम श्वास में नारायण नाम क्यों उच्चारण हुआ ?

मेरे गुरुदेव इसका कारण बता रहे हैं। साधकगण ध्यान देकर सुनें। अजामिल बचपन से ही भगवत्–भक्ति में संलग्न था। जवानी में भी वह भगवान् की पूजा–अर्चना बड़े प्रेम के साथ करता था। भगवान् की पूजा के लिये जंगल से कमल–फूल लाया करता था। एक दिन जंगल में उसने किसी कामी पुरुष को देख लिया और माया परवश होकर, वह भी उस स्त्री पर आसक्त हो गया जिसके साथ वह कामी पुरुष बुरी हरकत कर रहा था।

अजामिल के घर पर उसकी सती स्त्री उसके पास रहती थी। उसने अपनी पत्नी को छोड़ दिया और अपने माता–पिता को भी तिलांजलि दे दी और उस कुलटा स्त्री (वेश्या) को घर में रख लिया, भगवान् की माया ऐसी प्रबल है कि बड़े–बड़े महान् आदमियों को भी अपने पैरों के नीचे कुचल देती है। भगवद्–परायण होने पर भी अजामिल अपने आप को रोक नहीं सका और गलत मार्ग में फँस गया।

अंत समय जब वह प्राण त्यागने लगा तो बेटे के बहाने उसके मुख से भगवत् नाम–'नारायण' निकल गया।

एक कारण तो यह था कि भक्ति कभी भी मरती नहीं है। भक्ति किसी कारण से दब जाती है। इस भक्ति के कारण ही

संतगण इसके घर पर रात भर विश्राम करने को चले गये। भगवान् अपने भक्त का एहसान कभी नहीं भूलते। भगवद्–प्रेरणा से, किसी मनचले युवक ने संतगणों को महापापी अजामिल के घर पर जाने को बोल दिया। यह भगवान् की भक्ति के कारण ही था।

जब संतगण अजामिल के घर पहुँचे तो अजामिल शिकार करने के लिये जंगल में गया हुआ था। उसकी कुलटा–स्त्री (वेश्या) घर पर थी। चाहे कोई कितना भी बड़ा पापी व नास्तिक हो, साधुओं का तो सभी सम्मान करते हैं। अजामिल की स्त्री ने भी उनका सम्मान किया और चबूतरे पर दरी बिछा दी और कहा कि आज रात आप यहाँ विश्राम करिये। संतगणों ने पूछा कि आपके पतिदेव कहाँ हैं तो अजामिल की स्त्री बोली कि बाहर गये हैं, थोड़ी देर में आ जायेंगे। संतगणों ने उसके पति के बारे में इस कारण पूछा था कि उस घर में वह औरत अकेली थी और वे वहाँ कैसे रहेंगे ?

अजामिल की पत्नि ने महात्माओं से पूछा कि आपको क्या चाहिये ? आपके लिये क्या बनाऊँ ?

महात्मा बोले कि हम स्वयं–पाकी हैं अर्थात् हम स्वयं ही रसोई बनाकर, भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद सेवन करते हैं। हम किसी के हाथ का बनाया हुआ खाद्य पदार्थ नहीं खाते। यदि तुम हमें दाल, आटा तथा चावल दे सको तो हम बनाकर खा लेंगे। हम कल प्रातःकाल ही यहाँ से चले जायेंगे।

अजामिल की स्त्री ने बोला आपको जो कुछ भी चाहिये, मैं उसका इंतजाम कर देती हूँ। थोड़ी देर में मेरे स्वामी घर पर आ जायेंगे। आपकी जो भी ज़रूरत होगी, वह पूरा कर देंगे। आप बड़े आनंद से रात भर यहाँ विश्राम कर लीजिये। सोने के लिये बिस्तर आदि का भी इंतजाम हो जायेगा।

संतगणों को अभी तक यह बात मालूम नहीं थी कि अजामिल शराबी और मांसाहारी है। उसके घर के आस–पास रहने वाले

घरों के लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे कि इतने पापी अजामिल के घर साधुओं को किसने भेज दिया। पर किसी ने संतगणों को नहीं बताया कि अजामिल बुरा आदमी है और वे वहाँ क्यों आये।

संतगणों ने रातभर अजामिल के घर में विश्राम किया। अगले दिन प्रातःकाल जब वे जाने लगे तो उन्होंने सोचा कि इस अजामिल ने हमारी सेवा की है। इसका कुछ भला तो करना ही चाहिये। संतों ने अजामिल से कहा कि अब की बार जब तेरी पत्नि के प्रसव हो तो शिशु का नाम 'नारायण' रखना। संतगणों ने यह इसलिये कहा कि इसी बहाने अपने बेटे को बुलाने के लिये वह नारायण–नारायण बोलता रहेगा। संतों को यह प्रेरणा भगवान् ने ही दी थी क्योंकि अजामिल ने भगवान् के प्यारे पुत्र संतगणों की सेवा की थी। इसलिये भगवान् ने तो अजामिल का उद्धार करना ही था।

भगवान् अपनी महिमा कभी नहीं बढ़ाते। वे तो अपने प्यारे पुत्रों अर्थात् संतगणों की महिमा बढ़ाते हैं। धर्मग्रंथों में इसके बहुत से उदाहरण हैं। भगवान् अपने भक्त को स्वयं प्रेरणा देते हैं और प्रवृत्त करते हैं। नास्तिक को भी प्रेरणा होती है। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण–इन तीनों गुणों में, स्वभावानुसार भगवान् प्रेरणा करते हैं। ऐसा मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने ही प्रेरणा करके, महाभारत का युद्ध करवाया और अपने भक्त पांडवगणों को जिताया। उन्होंने अपने प्यारे भैया अर्जुन की संसार में महिमा बढ़ाई। अपने श्रीगुरुदेव की आज्ञा के अनुसार, मैं भी प्रत्येक इतवार को

प्रातःकाल 7 बजे से 8.30 बजे तक, हरिनाम महिमा का गुणगान करता रहता हूँ। मैं यह सब केवल मात्र अपने गुरुदेव की प्रेरणानुसार ही कर रहा हूँ और गुरुदेव जी नाम मेरा करवा रहे हैं। गुरुदेव भगवत्–रूप ही तो हैं–

साक्षाद्धरित्वेन समस्त शास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्‌भिः!
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविंदम्।।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती जी ने श्रीगुरुदेवाष्टकम् में लिखा है कि सभी शास्त्रों में यही बतलाया है कि श्रीगुरुदेव का स्वरूप साक्षात् श्रीहरि का ही स्वरूप होता है। सज्जनों के द्वारा उसी स्वरूप को अनुभव में भी लाया जा सकता है क्योंकि श्रीगुरुदेव अपने प्रभु के अतिशय प्यारे हैं। ऐसे श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्दों की मैं वंदना करता हूँ।

कहने का मतलब यही है कि भगवान् ही श्रीगुरुदेव के रूप में आकर सबका उद्धार करते रहते हैं।

हाँ, तो श्रील गुरुदेव, साधकों के संशय निवारण हेतु कह रहे थे कि अजामिल तो महापापी था, महापापी होते हुये भी उसने नारायण का नाम उच्चारण क्यों किया तथा सब कैसे हुआ? यह प्रसंग सुनाया है। इसका खास कारण मेरे श्रीगुरुदेव बता रहे हैं कि यह सब संतगणों की सेवा का ही फल है। जो संत की सेवा करता है उसका ऋण भगवान् पर चढ़ जाता है और भगवान् को उसका उद्धार करना ही पड़ता है। लेकिन साधकगणो, ध्यान से सुनो! जब तक हरिनाम की शरणागति नहीं होगी तो संतों की सेवा करने की प्रेरणा हृदय में उदय नहीं होगी। यह गुण केवल हरिनाम रूपी भगवत् प्रेरणा से ही आता है। अजामिल भूतकाल में परमभक्त शिरोमणि था पर वेश्या के संग से उसकी भक्ति कुछ समय के लिए दब गई थी। जब उससे संतों की सेवा बन गई तो भक्ति जग गई। अब क्योंकि भगवान् ने उसकी सेवा का ऋण उतारना था अतः प्रेरणा करके अपना नाम नारायण उच्चारण करवा दिया।

इन्द्रद्युम्न राजा भक्त था। संत के शाप से हाथी योनि में गया परंतु हाथी योनि पाकर भी उसे भगवान् की स्तुति याद रही। उसने भगवान् से प्रार्थना की। वृत्रासुर पिछले जन्म में भक्त था। शाप से राक्षस हो गया था। यह सब प्रत्यक्ष उदाहरण हैं जिनसे यह बात साबित होती है कि भक्ति कभी नष्ट नहीं होती। गीता में भगवान् अर्जुन को कह रहे हैं:–

"कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।" (9.31)

"हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।"

देखो ! जिनकी हरिनाम में शरणागति नहीं है वह अनंत मार्गों– मंत्र, पुरश्चरण में, मंत्रों के अनुष्ठान में, हवन–यज्ञ में फँस जाता है। ये सब साधन व्यर्थ हैं। कलियुग में केवल हरिनाम ही साधन है। इसके अलावा कोई साधन नहीं है। हमारे प्रभु चैतन्यमहाप्रभु ने तो किसी को नहीं बोला कि ये करो, ये करो। इसलिये मनगढ़ंत चक्करों में पड़कर समय बर्बाद न करो। हरिनाम से बड़ा अन्य कोई साधन नहीं है लेकिन भोले–भाले साधक इन मार्गों में फँस जाते हैं। यज्ञ केवल पैसा कमाने हेतु होते रहते हैं। यह कलियुग का साधन नहीं है।

रविवार को, श्रीगुरुदेव की वाणी, उनके पत्रों को पढ़कर, साधकों को सुनाने का जो आयोजन शुरु हुआ है और पिछले तीन वर्ष से नियमित रूप से चल रहा है, स्वयं भगवान् ने, मेरे श्रीगुरुदेव को आदेश देकर आरंभ करवाया है तथा इसका माध्यम मुझ अनिरुद्धदास को बनाया है। यदि किसी को मुझ पर श्रद्धा न हो, विश्वास नहीं हो तो उसका आना फिजूल है। यह आंदोलन भगवान् की अहैतुकी कृपा से शुरु हुआ है और जो इसमें 80 प्रतिशत उपस्थित रहेगा, उसके कल्याण की गारंटी मेरे गुरुदेव ले रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के अठाहरवें अध्याय की श्लोक संख्या 66 में बोला है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त व शिष्य अर्जुन को उपदेश देते हुये कहते हैं कि तू संपूर्ण धर्मों को अर्थात् सभी कर्त्तव्यों को त्यागकर केवल एक मुझ सर्व–शक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

देखो जैसा भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, गारंटी ली है, उसी तरह मेरे श्रील गुरुदेव भी गारंटी से कह रहे हैं कि रविवार के आयोजन में जिनकी उपस्थिति 80 प्रतिशत होगी, उनकी ज़िम्मेदारी वे स्वयं लेते हैं। उन्हें किसी भी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इतना सुगम उपाय गुरु जी ने बता दिया इसलिये बार–बार कहता हूँ सब कुछ छोड़कर, सप्ताह में एक दिन, रविवार को केवल डेढ़ घंटे के लिये इस आयोजन में आओ और कृष्ण–प्रेम प्राप्त करो।

ज़रा आंखें खोलकर देखो! ज़रा मन में विचार करो कि इस आयोजन के शुरु होने के बाद कितने साधक एक लाख हरिनाम हर रोज़ करने लग गये। कितनों को तो विरहावस्था भी उदय होती जा रही है। जो मुझ में श्रद्धा करेंगे, उन्हें यह अवस्था प्राप्त होगी ज़रूर। देखो! आज तक तो ऐसा वातावरण नहीं रहा। सारी ज़िंदगी सत्संग करते हो गये फिर भी जूं तक नहीं रेंगी। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जो सुकृतिवान होगा वही समय पर आवेगा अन्यथा बनाने के लिये बहाने तो बहुत हैं। जो पुराने भक्त हैं, बड़े महान् साधक हैं जब वे ही समय पर नहीं आयेंगे तो बाकी पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? जो सात दिन में एक या डेढ घंटा भगवान् के लिये नहीं निकाल सकता, वह श्रद्धालु नहीं हो सकता। वह तो अपना ही नुकसान करेगा। उसके न आने से न तो मुझे कोई नुकसान होने वाला है और न ही मेरे श्रील गुरुदेव माधव

महाराज को नुकसान होगा। इसलिये अब भी सतर्क हो जाओ। इसी में भलाई है अन्यथा माया की चक्की में पिसना तो है ही।

निष्कर्ष यह हुआ कि भगवद्–प्रेरणा से ही अजामिल के मुख से नारायण का नाम उच्चारण हुआ। बेटे के मोह के कारण पुकारने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

देखो! जब मृत्यु आती है तो प्राणी बेहोश हो जाता है। एक हज़ार बिच्छुओं के काटने से जो दर्द होता है, उतना दर्द मृत्यु के समय प्राणी को होता है। ऐसे में भगवान् के नाम का उच्चारण वह कैसे कर सकेगा ? असंभव है। मेरे गुरुदेव ने सभी साधकों को सचेत किया है कि रात को सोते समय तथा प्रातःकाल जागते समय भगवान् से प्रार्थना करो–

"हे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आवे तो अंतिम सांस के साथ, जब मेरे प्राण मेरे शरीर से निकलें तो अपना नाम उच्चारण करवा देना।"

जब आप प्रार्थना करोगे तो क्या भगवान् नहीं सुनेंगे? क्या भगवान् इतने बेपरवाह हैं? फिर भी साधकगण सोते रहते हैं। यह बड़े दुःख की बात है।

नामाभासी को मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं। साधकगण इस बात को बड़े ध्यान से सुनें कि जब प्रातःकाल नींद से जागो तब ऐसा बोलो कि–**"आज पूरे दिन, मैं तन व मन से जो भी कर्म करूँ, वह आपके लिये हो। ऐसी शक्ति दीजिये। यदि मैं बीच–बीच में भूल जाऊँ तो हे मेरे प्राणनाथ! कृपा करके मुझे याद दिलाते रहना।"**

जब साधक बार–बार ऐसी प्रार्थना करेगा तब अभ्यास होने के कारण भूल नहीं होगी। साधकगण जब ऐसा बोलेगा तो संसारी माया का सत, रज व तम गुण जड़ सहित उखड़ जायेगा और जन्म मरण का दारुण दुःख सदा–सदा के लिये दूर हो जायेगा।

– हरि बोल –

7

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
03.08.2011

प्रेमास्पद भक्तगण शिरोमणि !

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

शुद्ध हरिनाम से गोलोकगमन–1

मेरे गुरुदेव सब साधकों को समझाते–समझाते थक गये कि नामापराध मत करो। नामापराध से भयभीत रहो परंतु फिर भी साधकगण नहीं मानते। नामापराध करते रहेंगे तो स्वप्न में भी मुख से शुद्ध हरिनाम नहीं निकल सकता। निंदा–स्तुति करने में क्या आनंद आता है ? तुम्हें इनसे क्या लेना–देना ? आप बेफिक्र होकर अपना हरिनाम करते रहोगे तो शुद्ध हरिनाम शत–प्रतिशत निकलता रहेगा। नामापराध होने से भगवद्–नाम मुख में क्यों आने लगा ? इसमें शुद्ध नाम का क्या दोष है ?

शुद्ध नाम ही धीरे–धीरे संसार से वैराग्य उदय करा देगा। जब संसार से मन हटने लगेगा तो भगवत्–संबंधी विषयों में मन स्वतः ही सुगमता से लगने लगेगा। मन हरिनाम में लगा नहीं कि नाम भगवान् से मिलने की तड़पन आरंभ होने लगेगी। जिस प्रकार दो बांसों को आपस में रगड़ने से अग्नि प्रगट हो जाती है। दियासलाई की रगड़ से अग्नि प्रगट हो जाती है उसी प्रकार मन तथा नाम की रगड़ से विरहाग्नि जल जायेगी।

जब भगवान् के प्रति तड़पन अधिक होने लगेगी तो भगवान् के साथ दास, सखा, पुत्र या पिता आदि का संबंध उदय होने लगेगा। इस स्थिर संबंध–ज्ञान को भगवान् हृदय में प्रगट कर देंगे। जब जीव का भगवान् के प्रति संबंध उदय हो जायेगा तो

फिर वह संबंध टूट नहीं सकता और संबंध न टूटने से भगवान् उसे अपने गोलोकधाम में ले जायेंगे। वहाँ वह अमरता प्राप्त कर लेगा। उस गोलोकधाम में क्या सुख है? क्या आनंद है? इसका वर्णन इस जड़ जिह्वा से बताया नहीं जा सकता। छायामात्र इंगित किया जा सकता है।

नामाभासी का, जो नामापराध भी करता रहता है, उसका वैकुण्ठ में वास हो जाता है। यदि कोई नामाभासी एक लाख हरिनाम करता है या इससे अधिक करता है, डेढ लाख या दो लाख हरिनाम करता है और नामापराध भी करता है तो भी उसे वैकुण्ठ धाम ही उपलब्ध होता है। इसका कारण है कि उसने नाम भगवान् को नहीं त्यागा। देखो ! गलती तो सबसे होती ही है। भगवान् का स्वभाव है कि वे साधक को बार–बार मौका देते हैं। जब हरिनाम करते–करते उसका हृदय निर्मल हो जायेगा तो उसे वैकुण्ठ धाम ही वास करवाते हैं। जैसे पाठशाला में कोई विद्यार्थी फेल हो जाता है तो हैडमास्टर उसे पाठशाला से निकालता नहीं है। उसे फिर मौका देते हैं। उससे ट्यूशन करवाते हैं। इसी प्रकार भगवान् बड़े दयालु हैं। वे नामापराधी को त्यागते नहीं हैं पर यदि वह अपराधी ही भगवद्–नाम को छोड़ देता है तो भगवान् उसे चौरासी लाख योनियों में डाल देते हैं। पर वह नरक भोग नहीं करता क्योंकि उसने कोई जीव हत्या नहीं की।

जिसने भगवान् के नाम को पकड़ रखा है, भगवान् उसे वैकुण्ठ धाम में वास करवा देते हैं जहाँ वह कई युगों तक वास करता है। फिर भगवान् उसे संबंध ज्ञान हेतु किसी भक्त के घर में जन्म दे देते हैं।

भगवान् उसे साधु–संग करवाते हैं–यह गीता का वचन है। जैसे पाठशाला का विद्यार्थी ट्यूशन पढ़ने के बाद पास हो जाता है उसी प्रकार भक्त के घर में जन्म देकर, भगवान् साधक को साधु–संग करवा देते हैं जहाँ उसे संबंध–ज्ञान हो जाता है और वह गोलोकधाम चला जाता है।

नारद जी का वचन है कि कलियुग में केवल भगवद्–नाम ही भगवद्–प्राप्ति का साधन है। मन्दिरों का अर्चन–पूजन द्वापर का साधन है। मन्दिरों का अर्चन–पूजन एक सहायक मात्र है क्योंकि मन्दिरों में साधक निर्भय होकर हरिनाम कर सकता है।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने सभी अनुचरों को बोला है कि जो लखपति होगा उसके घर पर मैं आऊँगा। जो लखपति नहीं होगा उसके घर पर मैं जाऊँगा ही नहीं। सभी को चिंता हो गई कि हमारे पास तो सौ रुपये भी नहीं। हम तो मारे गये तो महाप्रभु बोले कि मेरा मतलब है जो हरिनाम की 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम करेगा उसके घर पर मैं प्रसाद सेवन करूँगा। जिस मन्दिर में पुजारी से अर्चन–पूजन के साथ एक लाख हरिनाम नहीं होगा, ठाकुर जी उसका निवेदित भोग नहीं खाते। उस मन्दिर में ठाकुर जी भूखे रहेंगे और जब ठाकुर जी भूखे रहेंगे, ठाकुर जी भोग ही नहीं लगायेंगे तो मन्दिर में रहने वालों को भगवत्–प्रसाद नहीं मिल सकेगा। जहाँ भगवद्–प्रसाद सेवन नहीं होगा वहाँ पर कलि महाराज कलह कराकर झगड़े का वातावरण बनाते रहेंगे। मंदिरों में गलत कर्म होता रहेगा। चोरी, ज़ारी तो मुख्य कर्म होगा। मेरे गुरुदेव डंके की चोट पर यह घोषणा कर रहे हैं कि जहाँ भगवान् भूखे रहते हैं, वहाँ पर गुप्तरूप में कंचन, कामिनी व प्रतिष्ठा का राज्य हो रहा है। इसे कोई माने या न माने। जैसा करोगे वैसा भरोगे। इसमें एक प्रतिशत भी गलत बात नहीं है। जहाँ कोई भी ब्रह्मचारीगण या कोई भी मठ कर्मचारी गलत मार्ग में फँस रहा है, उसे समझाना उचित है अन्यथा धीरे–धीरे कोई भी मठ में आना कम करता जायेगा।

यदि कलियुग में अर्चन–पूजन सेवा जरूरी है तो शास्त्र क्यों बोल रहा है कि–

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।"

"न कलि कर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलंबन एकू।।"

"सतयुग, त्रेता, द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम ते पावें लोग।।"

भरत जी को श्रीराम जी के विग्रह की पूजा करनी चाहिये थी, उन्होंने नाम का सहारा क्यों लिया ? भरत जी क्या साधन कर रहे हैं ? केवल नाम जप रहे हैं –

"पुलक गात हिय सिय रघुबीरु।
जीह नाम जप लोचन नीरु।।"

धर्मग्रन्थों में अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जहाँ केवल हरिनाम की शरण ली गई है लेकिन भगवत्–विग्रह के अर्चन–पूजन का एक भी उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अर्चन–पूजन भी तभी फलीभूत होगा जब हरिनाम का एक लाख जप होगा। तभी भगवान् की भूख मिट सकेगी वरना भगवान् भूखे ही रहेंगे।

शिवजी करोड़ों रामायण रच कर, उनमें से केवल एक 'राम ' नाम निकाल कर क्यों जपते रहते हैं ? उन्हें तो श्री राम जी के विग्रह का अर्चन–पूजन करना चाहिये। वाल्मीकि जी ने राम नाम ही क्यों जपा ? गुरु नारद जी को तो उन्हें राम का अर्चन–पूजन बताना चाहिये था। अर्चना–पूजा तो द्वापर युग का विशेष साधन है। हमारे वृद्ध गुरुवर्ग एकांत में रहकर नाम जप करते थे। वृन्दावन के छः गोस्वामी रूप, सनातन इत्यादि गिरिराज जी की तलहटी में नाम–जप किया करते थे। कहते हैं भगवत्–सेवा बहुत ज़रूरी है परंतु प्रधान सेवा भगवद्–नाम है। जब भगवद्–सेवा के साथ हरिनाम भी होगा तो सेवा सरस होगी। जब नाम नहीं होगा तो सेवा नीरस होगी अर्थात् जबरन होगी। उसे भगवान् अंगीकार नहीं करते। सेवा से तो भगवद् के लिये छटपटाना चाहिये। दुर्गुण जाने चाहियें, पर ऐसा हो तो नहीं रहा है।
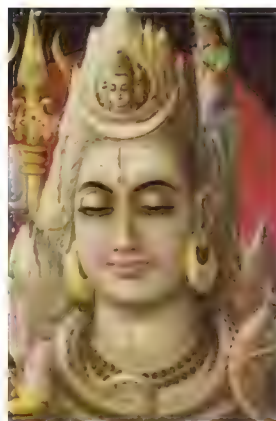
मेरे गुरुदेव पापी मानव की मरण–अवस्था का वर्णन कर रहे हैं कि जब पापी मानव की मृत्यु का समय आता है तो उसकी नस–नस में एक असहनीय दर्द होता है, उसकी नसों में असहनीय खिंचाव होता है। तन में दर्द होता है जैसे एक हज़ार बिच्छू एक साथ काट रहे हों, डंक मार रहे हों। उस वक्त यमराज के तीन दूत विकराल रूप धारण करके उसके सामने आते हैं। उन्हें देखकर पापी मानव इतना भयभीत हो जाता है कि उसे बेहोशी आ जाती है। वह कुछ भी बोल नहीं सकता।

अब प्रश्न उठता है कि फिर अजामिल के मुख से भगवान् का नाम कैसे निकल गया ? उसने 'नारायण' नाम का उच्चारण कैसे किया ?

मेरे गुरुदेव इस बात का जवाब दे रहे हैं। अजामिल ने बचपन से जवानी तक मन से भगवान् का भजन किया था। भजन कभी भी नष्ट नहीं होता, दब जाता है। मेरे गुरुदेव जी बता रहे हैं कि उसके मुख से 'नारायण' नाम निकला, इसका प्रथम कारण तो यह है कि उसने संतों की सेवा की थी। नामापराध नहीं किया। संतों की सेवा से भगवान् अजामिल के ऋणी हो गये थे। उसी ऋण को उतारने के लिये ही भगवान् ने उसके मुख से अपना नाम उच्चारण करवा दिया। यद्यपि सभी कहते हैं कि उसने डर के कारण अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा था। लेकिन यह पुकार भी भगवान् ने ही उच्चारण करवाई। जब यम दूत को देखकर वह बेहोश हो गया था तो नाम का उच्चारण कैसे कर सकता था ? भगवान् ने ही कृपा करके यह पुकार उच्चारण करवाई। इसके पीछे भगवान् ही थे। यह संत–सेवा का फल है। उसका कोई नामापराध नहीं था।

श्रीमद्भागवत पुराण में भगवद्–प्रेरणा का प्रत्यक्ष उदाहरण देखने को मिलता है। जब जय–विजय को सनकादि से शाप मिल गया, तो भगवान् ड्योढ़ी पर आकर पूछने लगे "सनकादिगण ! आज मैं आपको गुस्से में देख रहा हूँ। आपको तो आज तक कभी भी गुस्से में नहीं देखा ! तो सनकादिक बोले कि आपके इन दोनों

द्वारपालों ने हमें आपके चरणों के दर्शन पाने से रोक दिया अतः हमने इन्हें शाप दे दिया कि जाओ! तीन जन्म तक राक्षस हो कर पृथ्वी पर विचरण करो। ये शाप हम वापस ले लेते हैं। हमसे गलती हो गई।

तब भगवान् बोले, '' देखो! जब मुझे लीला करनी होती है तो मैं अपने प्यारे भक्तों के मुख से शाप या वर दिला दिया करता हूँ। अतः जय–विजय को प्रेरणा करके, मैंने ही आपको अंदर आने से रुकवाया है और मैंने ही आप में क्रोध वृत्ति जगाकर शाप दिलाया है। इसलिये यह सब कुछ मेरी ही मर्ज़ी से हुआ है। जो कुछ भी होता है, मेरी ही प्रेरणा से हुआ करता है इसलिये कोई चिंता की बात नहीं है। ''जय–विजय'' से भगवान् बोले कि अब आप जाओ और मेरे से विरोध करके पृथ्वी पर विचरण करो। मैं ही तुम्हें फिर से इस ठौर पर विराजमान कर दूँगा। आप चिंता न करो। सनकादिक को भगवान् बोले कि आप भी चिंतन करें कि मैंने ही आपके मन से ऐसा शाप दिलाया है।

साधारण जीव अपने सत्, रज, तमोगुण से अपना कर्म करते रहते हैं। इससे भगवान् को कुछ भी लेना–देना नहीं है। लेकिन ऐसा भी है कि आत्मा रूपी भगवान् ही जीव के हृदय में विराजमान हैं। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक जीव कर्म करता है। जब आत्मा शरीर को छोड़ देती है तो कर्म होने का सवाल ही नहीं है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

''राखहिं गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोऊ जग त्राता।।''

– हरि बोल –

8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
09.08.2011

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि!

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा दिन–रात विरहावस्था जाग्रत रहने की बारंबार प्रार्थना।

समस्त धर्मग्रंथों तथा श्रीमद्भगवद्गीता का सार

मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि मैंने भक्तों को न चूकने वाले, तीन इंजैक्शन (तीन बातें) लगाये हैं। भक्त–साधक इन तीनों इंजैक्शन को लें। ये तीनों हृदयस्पर्शी तथा पूर्ण शरणागति के द्योतक हैं। ये तीनों भवरोग तथा विषय–विष को नष्ट करने हेतु अमोघ औषधि के रूप में प्रचलित हैं। ये इंजैक्शन संसार रूपी दुःखालय से बचने हेतु अमोघ हथियार हैं। अपने पिछले पत्रों में मैंने इनके बारे में बताया है। जो साधक–भक्त इनको भूले हुये हैं, उनको याद कराने के लिये फिर बता रहा हूँ। ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्त होकर सुनो ताकि अनंत युगों से जिस संसार रूपी दुःखसागर में गिरे हुये हो उससे बाहर निकल सको तथा परमानंद सागर में तैर सको।

पहला इंजैक्शन है कि रात को जब सोने लगो तो भगवान् से यह प्रार्थना करें–

1."हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे और इस तन से अंतिम सांस में, मेरे प्राण निकलने लगें तो कृपा कर अपना नाम उच्चारण करवा देने की कृपा करें क्योंकि धर्मग्रंथ बोल रहे हैं कि मृत्यु के समय प्रत्येक नस–नाड़ियों में असहनीय खिंचावट होती है। हज़ार बिच्छू के डंक मारने जैसी पीड़ा होती है तो बेहोशी आ जाती है। उस समय, हे प्राणनाथ! आपका नाम मेरे मुख से

उच्चारण होना असंभव जान पड़ता है अतः मुझ शरणागत की रक्षा करें। यही मेरी अंतिम प्रार्थना होगी। ''

इस प्रार्थना में श्रीमद्भगवद्गीता का सार तत्त्व है कि अंतिम सांस में जिस भाव में प्राण का निष्कासन होगा उसी भाव के अनुसार अगला जन्म होगा।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

(गीता 8.5)

''जो पुरुष अंतकाल में मुझको स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग करता है वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है।''

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता 8.6)

''हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस–उस भाव को प्राप्त होता है क्योंकि वह सदा उसी भाव से प्रभावित रहता है।''

भाव यह है कि जो मानव पूरी ज़िंदगी भर जिस भाव में भावित रहता है, उसी भावानुसार उसे अगला जन्म उपलब्ध होता है। जिस प्रकार यदि किसी ने ज़िंदगी भर बकरियाँ चराई हैं तो अंत समय में, मरने के समय उसे बकरी ही याद आयेगी तो वह बकरी के गर्भ में बकरी या बकरा होकर जन्म लेगा। अधिकतर वह बकरा होकर ही जन्म लेगा क्योंकि मांस बेचने वालों को वह पैसों के लिये बकरे बेचता रहा है। इसलिये पहले तो उसे नरकभोग करने के लिये नरक में जाना पड़ेगा। नरक भी एक नहीं। अट्ठाईस नरक भोग करेगा जिनमें कई युग बीत जायेंगे। युगों की आयु के बारे में धर्मग्रंथ बता रहे है कि 4,32,000 वर्ष का तो कलियुग है। इससे दुगुना द्वापर है। इससे तिगुना त्रेतायुग है और उससे चौगुना

सतयुग है। यह तो हुई एक चर्तुयुगी। वह बकरी पालने वाला, जो बकरे बेचकर मांसाहारियों को मांस खिलाता रहता है, कई चतुर्युगों तक नरकभोग करेगा। नरकों का कष्ट देखकर मन दहल जाता है, अधीर हो जाता है। धर्मग्रंथ भगवान् की सांस से प्रकट हुये हैं और कह रहे हैं कि हर क्षण–क्षण नाम की शरणागति में रहना ही उचित है। इसलिये ''हे मनुष्यो–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

नामाभास भी कल्याणप्रद है। यदि शुद्ध नाम होता है तो उसे भगवद्–विरह होने से संबंध–ज्ञान उपलब्ध होगा जो भगवान् कृपा करके प्रदान करेंगे। इससे भक्त–साधकों को गोलोकधाम उपलब्ध हो जायेगा अन्यथा वैकुण्ठ तो मिलेगा ही। हरिनाम करने वाला न नरक में जायेगा, न चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करेगा। यदि वह नामापराधी भी होगा तो भी भगवान् उस पर कृपा ही करेंगे। जैसे कुपात्र पुत्र को भी माँ–बाप घर से बाहर नहीं निकालते, उसे सुधारने की कोशिश करते हैं। पर जिस साधक या भक्त ने हरिनाम को ही छोड़ दिया, उस पर भगवत् कृपा नहीं होगी।

भगवान् तो दयानिधि हैं। जीवमात्र ही भगवान् के पुत्र हैं फिर वे नाम लेने वालों को चौरासी लाख योनियों में कैसे भेज सकते हैं ? ऐसे अपने भक्त को, कई युगों तक वैकुण्ठ वास करवा कर, भगवान् किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं ताकि वह संबंध–ज्ञान प्राप्त कर अंतिम धाम जा सके अर्थात् उसका गोलोकधाम में वास हो सके।

अब दूसरा इंजैक्शन गुरुदेव बता रहे हैं, ध्यानपूर्वक सुनो !

2. प्रातःकाल जागते ही प्रार्थना करो–

'हे प्राणनाथ! मेरी बात ध्यान से सुनिये। इस समय से, मेरे तन, मन, वचन से जो भी कर्म मेरे से बनें, वह कर्म आपके ही निमित्त, आपका ही समझकर बनें तथा जब मैं किसी क्षण आपको भूल जाऊँ तो कृपा करके मुझे याद दिलाते रहें क्योंकि मैं अल्पज्ञ

हूँ पर मैं हूँ तो आपका ही। बस इतनी कृपा मुझ पर करते रहिये। मैं सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से आक्रान्त न हो सकूँ। मुझे निर्गुणधारा में बहाते रहो। मुझे संत–समागम कराते रहो। अहम् से मुझे बचाते रहो। तन, मन, वचन से आपका ही कर्म समझकर आपके लिये ही कर्म होते रहें।

3. तीसरा इन्जैक्शन मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि हर रोज़, जब संध्या करने बैठो तो भगवान् से यह मार्मिक प्रार्थना करो–

"हे मेरे प्राणनाथ! मेरे मन की भावना इस प्रकार भावमयी बना दो कि मैं कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। आपको ही निहारा करूँ। इससे मुझसे दूसरों का बुरा होगा ही नहीं। अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में आपका ही अस्तित्व है। आपके बिना तो कुछ भी नहीं है। सब कुछ आपसे ही है, आपका ही है। फिर भी आप इनसे अलग ही हो । सभी मेरे मन के भावों से भावित होता रहे।"

भगवान् बोलते हैं जो ऐसा करता है, उससे मैं ओझल नहीं रहता और वह मेरे से ओझल नहीं रहता।

ये तीनों इंजैक्शन मेरे श्रीगुरुदेव जी ने कृपा करके, भक्त–साधकों को लगाये हैं ताकि यह भवरोग तथा विषयों का विष नष्ट हो सके। तो फिर बचेगा ही क्या ? केवल भगवत्–नाम । जब भगवत्–नाम। बच जायेगा तो संसार सागर का विष जल सूखकर खाली हो जायेगा। सारे दुःखों का बखेड़ा ही विलीन हो जायेगा। कण–कण में भगवान् नज़र आयेगा।

उक्त प्रसंग गीता का सार है, तत्त्व है। पूरी गीता का प्राण है। यदि भक्त साधक उक्त प्रसंग अनुसार अपना जीवनयापन करता रहे तो अष्टयाम (आठों पहर) भगवत्–चरणों में ही रमता रहेगा तथा भगवत्–माया तो उससे बहुत दूर विराजेगी। माया का तो अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

भगवान् को पाने का कितना सुगम तथा सरलतम मार्ग मेरे

गुरुदेव जी ने सभी भक्तों को बता दिया है। इसी कारण इस ग्रंथ के पांचों भागों का नाम रखा है–"इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति"।

कलिकाल में भगवान् भक्त–साधकों को छद्म रूप में दर्शन दिया करते हैं क्योंकि भक्त–साधक साक्षात् दर्शन करने में असमर्थ हैं। हमारे भूतकाल के गुरु वर्ग को भगवान् ने छद्म–दर्शन दिया है। माधवेन्द्रपुरीपाद, रूप–सनातन, ईश्वरपुरीपाद आदि–आदि गुरुजन हमारी गुरु–परंपरा में हो गये हैं। अब भी जो मेरे श्रीगुरुदेव के बताये हुये मार्ग पर चलते रहेंगे तो भगवान् छद्म–दर्शन देंगे तथा अन्त में अपने गोलोकधाम में ले जाकर भव्य–स्वागत कराते रहेंगे। सदा–सदा के लिये आवागमन रूपी दारुण–दुःखालय से साधकगण मुक्ति पा लेंगे।

भगवान् अर्जुन को बताते हैं कि जिसने मन को जीत रखा है जिसकी अन्तःकरण की वृत्ति शांत है, विकार रहित है, उसके ज्ञान में कोई कमी नहीं है। उसके लिये मिट्टी व सोना एक समान है। वह भगवान् में ही निष्ठित है। उसके लिये वैरी व मित्र एक समान हैं। ऐसा साधक युक्त आहार–विहार वाला होता है और शांति की पराकाष्ठा उपलब्ध करता है। ऐसा साधक भगवद्–प्राप्ति के सिवाय कोई लाभ नहीं समझता। बड़े से बड़े संकट में भी चलायमान नहीं होता क्योंकि वह भगवान् पर पूर्ण आश्रित है। पूर्ण शरणागत है। वह भगवान् को अपने पास साक्षात् रूप में अनुभव करता है। ऐसे भक्त साधक के आनंद का कोई परिवार नहीं है। वह अपनी जड़ जिह्वा से इस आनंद को बता नहीं सकता।

अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि क्या मंदयत्न (साधारण भजन) करने वाला साधक दुर्गति को प्राप्त होगा ? तो भगवान् बोले कि वह स्वप्न में भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होगा। वह स्वर्ग आदि लोकों में जायेगा और फिर बाद में भक्त के घर में जन्म लेगा। वहाँ वह तीव्रगति से मेरी ओर यत्नशील होगा और अन्त में मुझे ही प्राप्त हो जायेगा। हाँ, उसको मुझे प्राप्त करने में समय अधिक लग सकता है। शुभकर्म करने वाला कभी दुर्गति में नहीं जा सकता।

हरिनाम करना शुभकर्म ही है। श्रीगौरहरि की शिक्षा है –

"सर्वक्षण बोले इथे विधि नाहिं आर।"

"अविश्रांत नामे नाम अपराध जाये।
ताहे अपराध कभू स्थान नाहिं पाय।।"

"कि भोजने कि शयने किवा जागरणे,
अहर्निश चिन्त कृष्ण बलह वदने।"

इसलिये हर समय कृष्ण नाम लेते रहो। ऐसा कहीं नहीं लिखा कि केवल 16 माला ही करनी चाहिये।

नाम–जापक कभी भी स्वर्ग में नहीं जायेगा। वह सीधा वैकुण्ठ में जायेगा और कई युगों तक वहाँ रहकर संबंध–ज्ञान प्राप्त करने हेतु फिर किसी भक्त के घर में जन्म लेगा। फिर गोलोक गमन करेगा। यह "हरिनाम चिंतामणि" में लिखा है।

जो साधक भगवान् के बताये हुये उपरोक्त तीन इन्जैक्शन लगवा लेगा, उसका भवरोग तथा माया का बंधन सदा–सदा के लिये हट जायेगा और वह जन्म–मरण रूपी दारुण–कष्ट से मुक्ति पा लेगा। इसमें थोड़ा भी संशय नहीं है। लेकिन यह तीनों इंजैक्शन तभी लाभप्रद होंगे जब साधक हर क्षण भगवत् नाम की शरण में रहेगा क्योंकि कलियुग का मुख्य साधन है केवल मात्र हरिनाम स्मरण करना। शास्त्र का वचन है–

सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग,
जो गति होय सो कलि, हरिनाम से पावें लोग।

नारदजी साधकों को समझा रहे हैं –

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु बोल रहे हैं :–

नाम बिना कलिकाले नाहिं आर धर्म।
सर्वमंत्र सार नाम एइ शास्त्र मर्म।।

जो लोग हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

की केवल सोलह माला करने के लिये बोल रहे हैं, बिल्कुल गलत है।

श्रीमहाप्रभु जी कहते हैं :–

अविश्रान्ते नामे, नाम अपराध जाय।
ताहे अपराध कभू, स्थान नाहिं पाय।।

अर्थात् निरंतर नाम लेना ही सर्वोत्तम है। खाते–पीते, चलते–फिरते, उठते–बैठते, सदा नाम लेते रहो। अपनी मनगढ़ंत बातों से किसी को भ्रमित करना घोर अपराध है। मानव जन्म बहुत ही कीमती है। इसे बर्बाद मत करो वरना अन्त समय में पछताना पड़ेगा। फिर तो स्वप्न में भी मानव जन्म उपलब्ध नहीं होगा। मैंने जो कुछ भी बोला है, शास्त्रानुसार बोला है। आप मेरी धृष्टता क्षमा करें। मैं तो सब भक्तों के चरणों की धूल मात्र हूँ।

भगवान् अर्जुन को साफ–साफ बोल रहे हैं कि जो लोग तन से या मन से दूसरे संसारी जीवों को सताते रहते हैं तो दूसरों को सताने वाले ऐसे मानव, मुझे ही सताते हैं क्योंकि प्रत्येक जीवमात्र में, मैं ही विराजित हूँ। जीव जिस शरीर में रहता है, वह उसका मकान है और यदि कोई किसी जीव को सताता है तो मकान को पीड़ा क्या होगी ? पीड़ा तो मकान में रहने वाले आत्मस्वरूप मुझ को ही होगी। अतः ऐसे लोग जो दूसरों को सताते हैं, मैं उन्हें घोर नरकों में यातना हेतु भेजता हूँ। यहाँ तक कि पेड़ को काटना भी उचित नहीं है। उसमें भी मैं आत्मा रूप में विराजित हूँ। देखो ! सांप की आयु एक हज़ार वर्ष की होती है पर यदि किसी ने उसे उस समय मार दिया जब उसकी आयु दो सौ वर्ष की थी तो मारने वाले को आठ सौ साल, उसी तरह सांप की देह में आना पड़ेगा। जिसने सांप को मारा है, उसे ही सांप की देह में आना होगा। उसने भले ही सांप का बुरा नहीं किया हो पर उसने मेरी आत्मा को तो सताया है।

मैंने अपने श्रीगुरुदेव जी से कहा कि हम तो किसान हैं। जब हमारी फसल को कीड़ा लग जाता है, सरसों में कीड़ा लग जाता है जो करोड़ों की संख्या में होता है, हमें तो उस पर दवाई छिड़क कर मारना ही पड़ता है। इसी तरह गेहूँ , जौ आदि अनाज को जब घूण आदि कीड़े अंदर से खा जाते हैं तो उनको भी दवाई डालकर मारना पड़ता है। हमें तो जबरदस्ती पाप करना पड़ता है। हम इससे बच नहीं सकते। फिर भले ही हम भक्ति करते हैं, असंख्य जीवों की हत्या करने से, हमारा मनुष्य जीवन, जो हमें भगवद्–प्राप्ति के लिये मिला है, बेकार चला जायेगा।

तो मेरे श्रीगुरुदेव जी ने उत्तर दिया कि तुम्हें चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि तुम भगवान् के शरणागत हो, हरिनाम के शरणागत हो। जिस फसल के लिये, जिस अनाज को बचाने के लिये तुम्हें पाप करना पड़ रहा है, वह भी तो भगवान् का ही है। तुम्हें वह पाप कभी नहीं लग सकता। क्या धर्मग्रंथों में इसका उदाहरण तुम नहीं देखते ? श्रीहनुमान जी ने पूरी लंका में आग लगा दी, वहाँ जीवमात्र जलकर भस्म हो गये। क्या श्रीहनुमान जी को पाप लगा ? उन्हें पाप इसलिये नहीं लगा क्योंकि उनका वह कर्म अपने प्रभु भगवान् श्रीराम के निमित्त था। भगवान् के निमित्त जो कर्म होता है, उसका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है। फिर तुमको चिंता करने की क्या ज़रूरत है ? तुम्हारा तो पूरा परिवार ही भगवान् के शरणागत है इसलिये तुम्हें तो स्वप्न में भी पाप नहीं छू सकता। स्वयं के लिये तो तुम कुछ करते नहीं हो। जो करते हो, केवलमात्र भगवान् के लिये करते हो।

मेरे गुरुदेव ने तीसरा इंजैक्शन यहीं दिया है कि भगवान् से यही प्रार्थना करे कि मेरे से जो भी कर्म बने, वह मैं आपका ही समझ कर करता रहूँ। बस ! आप मेरी ऐसी भावना बना दो क्योंकि मैं आपका हूँ और आप मेरे हितैषी हो। मैं अल्पज्ञ हूँ। आप सर्वज्ञ हो। इसलिये मुझ पर कृपा करते रहना।

जिस प्रकार कलियुग में भगवद्–प्राप्ति का केवलमात्र एक ही साधन है–हरिनाम–उसी प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के समस्त शास्त्र, वेद या गीता का सार यही तीन साधन हैं जिनको अपना कर जीव दुःखदायी भवसागर से पार हो सकता है।

1. प्रथम–अंतिम सांस में भगवद्–नाम उच्चारण हो जाये।

2. दूसरा साधन है–संपूर्ण कर्म भगवत् के निमित्त हों।

3. तीसरा साधन है–कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में, मैं आपको ही देख पाऊँ।

इन तीनों साधनों से ऊपर, कोई भी साधन सरल व सुगम नहीं है। यह तीनों साधन धर्मग्रंथों का बीज है। इन साधनों की प्रार्थना को बोलने में दो मिनट लगते हैं जो सभी साधकों को अवश्य करना चाहिये। ऐसा मेरे गुरुदेव, सब साधकों को आदेश दे रहे हैं। मानव जीवन गँवाना उचित नहीं है। गहराई से सोचने की ज़रूरत है। ये साधन ही पूर्ण शरणागति के प्रतीक हैं। इनसे ही पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध हो जाती है। जब साधक को उक्त लिखित तीनों साधनों की उपलब्धि हो गई, इनमें बताई गई स्थिति उपलब्ध हो गई, फिर उसे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह तो कृतकृत्य हो गया। वह तो भगवान् को पा गया।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह महामंत्र उस दिव्योन्माद अवस्था में आविर्भूत होता है जब श्रीकृष्ण मादनाख्य महाभाव सागर में डूबकर आत्म–विस्मृत हो जाते हैं, वे यह भी निश्चय नहीं कर पाते कि वे श्रीकृष्ण हैं या श्रीराधा।

9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20.08.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् के प्रति विरहाग्नि दिन–प्रतिदिन अधिक होने की प्रार्थना।

शुद्ध हरिनाम से गोलोक गमन–2

मेरे श्रीगुरुदेव जी सब साधकों को बता रहे हैं कि नामापराध रहित होकर हरिनाम करते रहने से नाम भगवान् हृदय में प्रकट होकर, संसारी फँसावट अर्थात् आसक्ति धीरे–धीरे हटा देंगे तथा भगवान् के लिये छटपटाहट शुरु कर देंगे।

जब घंटों–घंटों तक विरहाग्नि जग पड़ेगी तो श्रीगुरुदेव, जो साक्षात् भगवद्–रूप ही हैं तथा भगवान् के प्रियजन हैं, साधक–विरही को कोई भी संबंध अपना करवा देंगे–सखा का, दास का, भाई का, पुत्र का या पिता का आदि–आदि। जब संबंध ज्ञान हो जायेगा तो भगवान् इसे संसार में नहीं छोड़ सकते। मरने के बाद उसे अपने संग गोलोकधाम ले जायेंगे और वहाँ इस नये साधक का भव्य स्वागत करवायेंगे।

गोलोकधाम में भगवान् इसके साथ उसी संबंध से लीला करते रहेंगे। वहाँ पर जो आनंद है, वह इस जड़ जिह्वा से बखान नहीं किया जा सकता। गोलोकधाम में भी साधक का विरह जाग्रत रहेगा क्योंकि वहाँ भी भगवान् साधक की दृष्टि से समय–समय पर ओझल होते रहेंगे। अपने भक्त के साथ आँख–मिचौनी करते रहेंगे। जिस प्रकार एक शिशु पिता की गोद में जाने के लिये रोता है, तड़पता है पर पिता हर वक्त शिशु के पास नहीं रह सकता।

इसी प्रकार भगवान् भी साधक के साथ हरदम नहीं रह सकते, भले ही उसका भगवान् के साथ कोई भी संबंध हो। इस स्थिति में साधक की विरह अवस्था जाग्रत होती रहती है। इसी विरह में, इस मस्ती में जो आनंद है, वह बताया नहीं जा सकता। जिसको ऐसी विरह–अवस्था उपलब्ध हो जाती है, वही इस अवस्था का आनंद भोग कर सकता है।

उस साधक का जीवन, जब वह इस संसार में था, कैसा था ? यह मेरे गुरुदेव बता रहे हैं–

ऐसा साधक जब इस संसार में रहता है तो प्रत्येक प्राणी में भगवद्–दर्शन का अनुभव करता रहता है। सभी जनों की भलाई करने में लगा रहता है। किसी जीव को दुःख देने से उसका हृदय काँपता है। ऐसा साधक तन, मन से जो भी कर्म करता है, वह भगवान् का कर्म समझ कर करता है, भगवान् के निमित्त करता है, इस प्रकार उसका रात–दिन का अर्थात् आठ घड़ी (24 घंटे) का भजन बन जाता है। वह अपना मन, इन्द्रियों सहित, भगवान् के लिये, भगवान् की सेवा में ही लगाये रहता है। उसके मन में जो भी संकल्प–विकल्प होते हैं, वे सब भगवान् के लिये ही होते रहते हैं। ऐसे साधक से माया तो बहुत दूर रहती है अर्थात् माया उसको सताती नहीं, प्रत्येक क्षण उसका साथ देती है।

ऐसा साधक हर क्षण भगवत्–नाम में रत रहता है। नामापराध तो उसे स्वप्न में भी नज़र नहीं आता। उसका तो नींद में भी, हर क्षण नाम स्मरण चलता रहता है और वह भगवान् के विरह में रोता रहता है। उसके अन्तःकरण में अलौकिक मस्ती छाई रहती है।

भगवान् अपने भक्त के माध्यम से ही किसी को शाप या वरदान दिया करते हैं। भक्त के अन्तःकरण में जो भी प्रेरणा होती है, वह भगवान् के करने से ही होती है। अभक्त अर्थात् नास्तिक को जो प्रेरणा होती है वह उसके स्वभावानुसार– सतोगुणमयी, रजोगुणमयी या तमोगुणमयी होती है। भगवान् का इसमें कोई लेना–देना नहीं होता।

भूतकाल में जितने भी धर्मग्रंथों का प्रकाशन हुआ है या अब हो रहा है, वह भगवान् ने प्रेरणा करके अपने भक्तों के माध्यम से किया है। इसमें भक्त की अपनी प्रेरणा बिल्कुल नहीं होती। भक्त तो भगवान् की प्रेरणा से ही अपना जीवन धारण करता रहता है। एक तरह से वह तो भगवान् की कठपुतलीवत् ही है।

भगवान् भी भक्त के आश्रित होकर प्रेरक बनते रहते हैं। दोनों का संबंध ऐसा रहता है जैसे दूध और पानी। दूध में पानी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार भक्त और भगवान् भी आपस में मिले रहते हैं। भगवान् अपने भक्त की बात कभी नहीं टालते और भक्त भी भगवान् की रुचि के विरुद्ध कुछ नहीं करता। जिस प्रकार अरणि में आग छिपी रहती है और रगड़ने पर प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भगवान् और भक्त के अन्तःकरण का भाव मिला रहता है और समय आने पर प्रकट हो जाता है। साधारण साधक इस स्थिति को नहीं समझ सकता। किसी के आचरण या भाव को, भगवत्–कृपा बिना समझना, असंभव है।

ऐसे भावुक संत का दूसरों पर बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ जाता है पर ऐसा संत–समागम बहुत दुर्लभ है। भगवत् कृपा बिना ऐसा संयोग बनता ही नहीं है।

भगवान् का मन अपने भक्त के साथ लीला करने में ही खुश रहता है। लीला बिना भगवान् का मन कहीं पर भी नहीं लगता। अतः भगवान् ही प्रेरक बन जाते हैं और भक्त से शाप या वरदान दिला देते हैं ताकि उन्हें लीला करने का अवसर उपलब्ध हो सके। धर्मग्रंथों में ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद हैं। उदाहरण के लिये, जैसे देवर्षि नारद जी ने विवाह करने के लिये भगवान् से सुंदर रूप माँगा तो भगवान् ने उसे बंदर का रूप दे दिया। भगवान् ने ऐसा इसलिये किया क्योंकि वे जानते हैं कि नारद मेरा भक्त है। विवाह करने के बाद वह बेचारा संसार में फँस जायेगा। इसलिये भगवान् ने सोचा कि मैं इसे ऐसा रूप दूँ कि इसे संसार की कोई भी लड़की वरे ही नहीं (शादी ही नहीं करे)।

यह सब भगवान् की इच्छा थी। वे चाहते थे कि किसी प्रकार कोई लीला–विधान हो और मैं इस लीला में आनंद लूट सकूँ। इसलिये भगवान् ने लीला करने के लिये देवर्षि नारद जी को इसका माध्यम बनाया। जब नारद जी ने देखा कि भगवान् ने मुझे धोखा दिया है तो उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने भगवान् को शाप दिया कि जिस तरह मुझे पत्नी के लिये तड़पना पड़ा है, उसी प्रकार तुम भी पत्नी के लिये जंगलों में रोते फिरोगे।

इस प्रकार भगवान् अपने भक्त के मुखारविन्द से ही शाप या वरदान दिलाते रहते हैं क्योंकि उन्हें करना होता है अपना लीला–विधान। भगवान् बोलते हैं कि मैं अपने भक्त के मुखारविन्द से ही प्रसाद ग्रहण करता हूँ, बोलता हूँ। मेरी हर हरकत (क्रिया) अपने भक्त के द्वारा ही होती है। अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में मेरा भक्त ही मुझे सबसे प्यारा है। भक्त के बिना मेरा मन लगता ही नहीं।

ऐसे ही भगवान् ने लीला करके, सनकादि द्वारा अपनी ड्योढ़ी के द्वारपालों– जय और विजय को शाप दिलवाया था कि तीन जन्म तक राक्षस बन जाओ। अब तो भगवान् को लीला करने का बहुत बड़ा अवसर मिल गया। भविष्य में भी देखा जायेगा कि लीला करने हेतु भगवान् के किस भक्त के द्वारा शाप या वरदान दिया जायेगा।

भगवान् बड़े कौतुकी हैं। कुछ न कुछ करते रहते हैं और साधकगणों को इन लीलाओं से, भजन में रत रहने का मसाला उपलब्ध होता रहता है। अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवत्–लीलायें चलती ही रहती हैं। कभी भी बंद नहीं होतीं। किसी ब्रह्मांड में रामावतार की लीला चल रही है। किसी ब्रह्मांड में कृष्ण अवतार की लीला हो रही है। कहीं कपिल, कहीं वामन आदि की लीलायें प्रत्येक ब्रह्मांड में चलती ही रहती हैं जिनका स्मरण कर साधकगण भगवद्–प्राप्ति कर लेते हैं।

भगवान् से ही भगवत्–सृष्टि बनती रहती है। इस सृष्टि से ही लीलाएँ प्रगट होती रहती हैं। भगवान् के बिना तो सृष्टि में एक कण मात्र भी नहीं है। यह सब ही भगवत्–माया का साम्राज्य है। माया को अंगीकार कर भगवत्–लीलाएँ होती रहती हैं। इन लीलाओं का कभी अंत नहीं होता। अंत केवल जीवमात्र का ही होता है। इस संसार में सुख की छाया भी नहीं है, यह संसार दुःखों का घर है क्योंकि माया सब जीवों पर छाई रहती है। यह माया केवलमात्र भगवत् के चिंतन से ही दूर होती है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समस्त कर्मों को समर्पित कर देना ही संसार के तीनों पापों को दूर करने की एकमात्र औषधि है। जितने भी कर्म हैं यदि वे भगवान् के निमित्त नहीं किये जायेंगे, तो वे जन्म–मरण के चक्करों में डालते रहते हैं। इस तन से या मन से, यही कर्म जब भगवान् के निमित्त किये जाते हैं तो इन कर्मों का कर्मपना ही नष्ट हो जाता है।

पिछले इतवार को मेरे श्रीगुरुदेव जी ने सभी साधकों को बोला था कि प्रातःकाल नींद से जागते ही भगवान् से यही प्रार्थना करनी है कि आज से मेरे द्वारा इस तन–मन से, रात–दिन में जो भी कर्म हो, वह आपके निमित्त ही हो। ऐसी मुझे शक्ति प्रदान करना। जब मैं कर्म–समर्पण करने की भूल कर बैठूँ तो आप मुझे याद करवाने की कृपा करना।

जब साधक ऐसी प्रार्थना करेगा और उसका ऐसा स्वभाव बन जायेगा फिर तो कर्मपना ही नष्ट हो जायेगा और उसे सहज में ही भगवत्–शरणागति उपलब्ध हो जायेगी। जब साधकों को भवरोग आक्रांत करता है, सताता है तो मेरे गुरुदेव को ऐसा इंजैक्शन देना पड़ता है।

जब साधक उपरोक्त साधन करता है तो उसका मन हरिनाम में सहज में लगना आरंभ हो जाता है और जब मन हरिनाम में लगने लग जाता है तो दसों इन्द्रियाँ एक ठौर आकर रुक जाती हैं। जब इन्द्रियों का संसारी व्यापार समाप्त हो जाता है तो

भगवत्–व्यापार उदय होकर विरहाग्नि प्रकट कर देता है। जब विरहाग्नि प्रकट हो जाती है तो भगवान् को संबंध–ज्ञान प्रदान करना पड़ता है। जब साधक को संबंध–ज्ञान उपलब्ध हो जाता है तो उसे सहज में ही गोलोकधाम मिल जाता है।

अब बताओ इसमें कौन सा श्रम करना पड़ता है ? कौन सी बहुत मेहनत करनी पड़ती है ? सहज में ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। **इस कलिकाल में भगवान् के ग्राहक नहीं के बराबर हैं इसलिये यदि थोड़ा भी मन हरिनाम में लग जाता है, भगवान् में लग जाता है तो भगवान् फौरन प्रसन्न हो जाते हैं।**

मेरे श्रीगुरुदेव सभी साधकों को इतना सरल उपाय बताते रहते हैं फिर भी साधकगण सोते रहते हैं। कितने दुःख की बात है !

गोलोकधाम उपलब्ध करने वाले साधक का स्वभाव सरल, दम्भरहित, सबका हित करने वाला, दूसरों के दुःखों में दुःखी होने वाला, परहित करने में आतुर रहने वाला, जीवमात्र का प्यारा आदि गुणों का भंडार होता है। वह एकांत सेवी तथा भगवत् नाम में रत रहने वाला होता है। कंचन, कामिनी तथा प्रतिष्ठा की तो छाया भी उसे छू नहीं पाती। हर समय मस्ती छाई रहती है। वह तो अलौकिक आनंद का भंडारी होता है। वह प्रत्येक प्राणी में भगवत्–दर्शन के भाव में ओत–प्रोत रहता है। हिंसक प्राणी की भी सदा रक्षा–पालन करता है। संतसेवा तो उसका जन्मजात स्वभाव होता है। निद्रावस्था में भी नाम–स्मरण व जप करता रहता है तथा भगवत्–अभाव में अश्रुपात करता रहता है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी बहुत दुःखी होकर बोल रहे हैं कि एक प्रसिद्ध संन्यासी हैं। उनका नाम लेना उचित नहीं है। वे साधकों को भ्रमित करते रहते हैं कि एक लाख हरिनाम करने की क्या ज़रूरत है। केवल सोलह माला ही करनी चाहियें और वे भी स्पष्ट मन सहित होनी चाहियें। वे संन्यासी साधकों को कहते हैं कि

गुरुदेव सभी को सोलह माला करने को कहते हैं इसलिये सोलह माला से अधिक करना व्यर्थ है। वे कहते हैं कि महाप्रभु ने जो एक लाख हरिनाम करने की बात कही है उसका अर्थ है–एक लक्ष यानि एक लक्ष्य। देखो! इस संन्यासी ने अर्थ का अनर्थ कर दिया। जो लोग एक लाख हरिनाम नहीं करते या करना नहीं चाहते या जिनका एक लाख हरिनाम होता ही नहीं, वे ही ऐसा कहते हैं। वे एक लाख हरिनाम करने वालों को भी भ्रमित करते रहते हैं। हरिनाम तो सदा ही करते रहना चाहिये। खाते–पीते, चलते–फिरते नाम करते रहना चाहिये।

श्रीगुरुदेव सोलह माला से अधिक अर्थात् एक लाख हरिनाम करने को इसलिये नहीं कहते क्योंकि वे जानते हैं कि यह साधक अभी नया है, यदि मैं इसे एक लाख हरिनाम यानि 64 माला करने को कहूँगा और यदि ये न कर सका तो गुरु–आदेश पालन नहीं होने से इससे गुरु–आज्ञा का घोर अपराध बन जायेगा। अतः शुरु–शुरु में गुरुदेव अपने शिष्यों को सोलह माला ही प्रतिदिन करने को बोलते हैं। कुछ साल में गुरुदेव शिष्यों को एक लाख हरिनाम या चौंसठ माला करने का आदेश दे देते हैं। एक लाख या इससे कुछ अधिक हरिनाम करना सर्वोतम है। ऐसा करने से कुछ हरिनाम शुद्ध भी होने लगेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने अपने साथियों को बोला है कि जो लखपति होगा उसके घर पर आकर प्रसाद पाऊँगा और जो साधक लखपति नहीं होगा उसके घर पर आकर प्रसाद नहीं पाऊँगा। सभी को चिंता हो गई। सबने बोला ''प्रभु जी ! हमारे पास तो सौ रुपये भी नहीं हैं, इसलिये हमारे घर पर आपका प्रसाद पाने का सवाल ही नहीं उठता।''

तब महाप्रभु बोलने लगे, ''मेरा मतलब है कि जो हरिनाम की चौंसठ माला अर्थात् एक लाख हरिनाम नित्य करेगा, उसके घर पर आकर ही प्रसाद पाऊँगा।''

महाप्रभु जी का यह स्पष्ट आदेश है कि नित्य एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है। महाप्रभु स्वयं भी दिन–रात माला पर हरिनाम किया करते थे। एक बार महाप्रभु जी ने नित्यानंद प्रभु जी से बोला कि मैं अकेला ही वृन्दावन जाऊँगा। जब नित्यानन्द प्रभु जी ने बोला कि आपके एक हाथ में हरिनाम की माला रहेगी, दूसरे हाथ में झोला रहेगा, फिर दंड कैसे पकड़ोगे। इसलिये आपको एक व्यक्ति को संग ले जाना पड़ेगा तब महाप्रभु जी बोले कि आपने ठीक कहा है। मैं एक व्यक्ति को संग ले जाऊँगा।

इससे स्पष्ट हो गया कि महाप्रभु भी हरदम माला जपा करते थे। महाप्रभु ने हम सबको यह शिक्षा दी है कि हर क्षण नाम जपना है, कभी भी नाम को छोड़ना नहीं है। धर्मशास्त्रों में भी नाम की महिमा के अनंत उदाहरण मौजूद हैं। देवर्षि नारद जी ने वाल्मीकि को सदा राम–नाम जपने को बोला, जिसे जपकर वे त्रिकालदर्शी हो गये। शिवजी ने सौ करोड़ रामायणों में से राम नाम चुना और अब पार्वती को संग में बिठाकर हर क्षण राम नाम जपते रहते हैं।

इस्कॉन के संस्थापकाचार्य त्रिदण्डि–स्वामी श्रीमद् भक्तिवेदांत स्वामी जी महाराज ने वृन्दावन के श्रीराधा–दामोदर मन्दिर में सौ करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया। नारद पुराण में नारद जी कहते हैं कि कलियुग में भगवत्–प्राप्ति का एक मात्र साधन हरिनाम ही है। इसके बिना दूसरा कोई भी साधन भगवद्–प्राप्ति कराने वाला नहीं है।
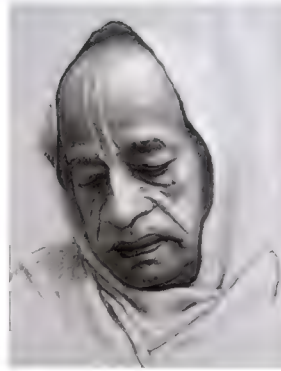
"कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।"
"सत्युग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम ते पावें लोग।"
"न कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।"

हरिनाम सदा जपना चाहिये–इसके अनेक उदाहरण हैं। इस विषय पर विस्तार से लिखने का समय नहीं है, ऐसा मेरे गुरुदेव जी बोल रहे हैं।

हरिभक्तिविलास में स्पष्ट लिखा है कि यदि जल्दी–जल्दी में नाम अधूरा हो, खंडित हो तो भी कोई नुकसान नहीं है। भगवान् तो भावग्राही हैं। नाम लेने वाले पर प्रसन्न रहते हैं। शुरु–शुरु में नाम खंडित व अधूरा होता है पर बाद में शुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार कोई शिशु तोतली बोली में अधूरा बोलता है तो क्या उसके माँ–बाप उससे नाराज़ हो जाते हैं ? इसी प्रकार भगवान् तो हम सबके माँ–बाप हैं। वे हमसे कभी नाराज़ नहीं होते। वे तो प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और जब शिशु बड़ा हो जाता है तो अपने आप शुद्ध बोलने लगता है। ऐसे ही अभ्यास होने पर साधक भी शुद्ध हरिनाम करने लग जाता है।

भगवान् नामाभासी को भी नरक में या चौरासी लाख योनियों में नहीं भेजते यद्यपि नामाभासी नामापराधी है तो भी भगवान् उसे वैकुण्ठवास देने के बाद, संबंध–ज्ञान प्राप्त करने हेतु किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं। संबंध–ज्ञान ही भगवद्–प्राप्ति का अंतिम सोपान है, सीढ़ी है, साधन है। इसके बाद कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। इसके बाद जन्म–मरण नहीं होता। जिस प्रकार माँ–बाप कुपात्र बेटे को भी घर से बाहर नहीं निकालते बल्कि उसे सुधारने की कोशिश करते हैं उसी प्रकार नामापराधी को भी भगवान् अपने किसी भक्त के घर में जन्म देकर संबंध–ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देते हैं।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भगवान् नारायण के द्वारपाल जय–विजय हैं। उन्होंने सनकादिकों के चरणों में अपराध कर दिया तो उन्हें शापवश तीन जन्म तक राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ा पर बाद में वे अपनी ठौर पर आ गये। भगवान् ने उन्हें नरक या चौरासी लाख योनियों में नहीं भेजा।

इस पूरे प्रसंग का निष्कर्ष यही निकलता है कि भगवान् का नाम लेने वाले का स्वप्न में भी अमंगल नहीं हो सकता। उसका मंगल होने में देर हो सकती है पर अंधेर नहीं ।

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

नाम जपने वाले का दसों दिशाओं में मंगल ही मंगल होता है।

जिस प्रकार माता–पिता जब तक अपने पुत्र को अच्छी तरह पढ़ाई–लिखाई कराके, उच्चशिक्षा देकर, या पी–एच.डी. आदि करवाकर पास नहीं करवा लेते तब तक वे उस पर बेपरवाह होकर पैसा खर्च करते रहते हैं। कोई भी माँ–बाप यह नहीं चाहता कि उसका बेटा अपनी पढ़ाई बीच में ही अधूरी छोड़ दे। वे तो यही चाहते हैं कि उनका बेटा अपनी पढ़ाई पूरी करके, अपना रोज़गार प्राप्त करे। इसी प्रकार भगवान् हम सबके माँ–बाप हैं। सबके हितैषी हैं। जब तक नामाभासी संबंध–ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता तब तक भगवान् उसे कई युगों तक वैकुण्ठ में वास कराते हैं। संबंध–ज्ञान उपलब्ध कराने के लिये वे उसे अपने किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं जहाँ वह बचपन से भक्ति में लग जाता है और भक्ति में आगे बढ़ता रहता है। उसे भक्त माँ–बाप का सत्संग मिलता है और शुद्ध–हरिनाम करने का अवसर मिलता है।

जब शुद्ध नाम होने लगता है तो भगवान् के प्रति छटपटाहट, पुलक होना आरंभ हो जाता है। तब उसके मन के अनुसार भगवान् उसे संबंध–ज्ञान प्रदान कर देते हैं। वह सखा, भाई, पिता, जमाई या मंजरी आदि का संबंध ज्ञान प्रदान करते हैं। जब उसे संबंध ज्ञान हो गया फिर तो उसकी पी–एच.डी. की पढ़ाई पूरी हो गई। तब भगवान् उसे संबंध–ज्ञान की डिग्री, उसका सर्टीफिकेट दे देते हैं अर्थात् उसे गोलोकधाम में अपनी सेवा प्रदान कर देते हैं, नौकरी दे देते हैं। जिस प्रकार माँ–बाप ने अपने बेटे को पी–एच.डी. करवाई तो उसे राजकीय पद मिल जाता है। फिर उसे जीवन भर किसी बात का डर नहीं रहता। पूरी ज़िंदगी तक, कर्म करके, अपना व अपने माता–पिता व परिवार का पेट पालने तथा भरण–पोषण

करने की गारंटी हो गई। पूरी जिंदगी की मौज लग गई। पूरा जीवन सुखमय हो गया, ठीक उसी प्रकार संबंध–ज्ञान हो जाने पर वह सदा–सदा के लिये गोलोकधाम में आनंद लेता रहता है।

हर रोज़ प्रातःकाल संध्या करते समय भगवान् को बोलना है–

"हे मेरे प्राणनाथ! आप मेरी आत्मा हो। अतः मैं आपका ही हूँ। पर मैं अल्पज्ञ हूँ। अतः मेरे मन की ऐसी धारणा बना दो कि मुझे कण–कण में, जीवमात्र में आपका ही दर्शन हो। "

-- हरि बोल --

10

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः
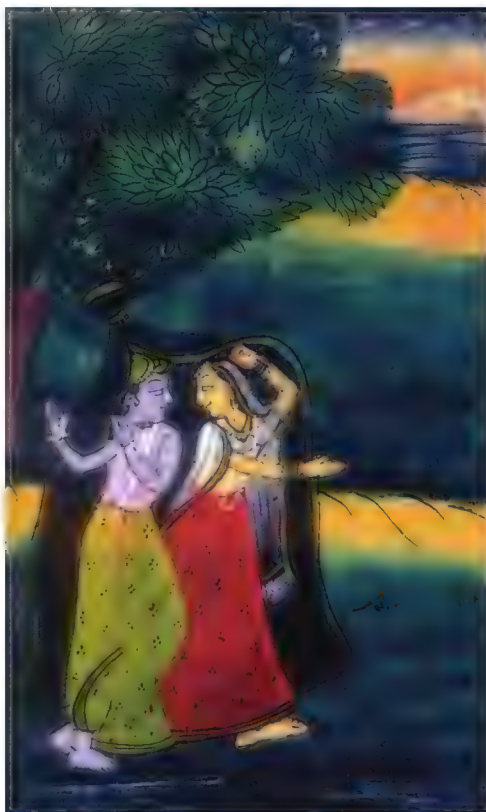
छींड की ढाणी
श्रीकृष्णजन्माष्टमी
22.08.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा अष्टयाम विरह–अवस्था रहने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवत्–शरणागति से ऊपर कोई भक्ति–साधन नहीं

भगवत्–गीता का प्राण, निचोड़ तथा सार ही शरणागति है। सर्वग्रंथों का सार ही शरणागति है। शरणागति के अभाव में अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों का कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

प्रत्येक चर–अचर प्राणी को किसी न किसी की शरणागति लेनी ही पड़ती है। बिना शरणागति के किसी का कोई कर्म बन ही नहीं सकता। पेड़ को ज़मीन की, आत्मा को शरीर की, पुत्र को पिता की, विद्यार्थी को अध्यापक की, शिष्य को गुरुदेव जी की, राजकर्मचारी को तनख्वाह की, सेठ को मुनीम आदि की शरणागति लेनी ही पड़ेगी। इस प्रकार भक्त को भगवान् की शरणागति लेनी ही पड़ेगी। यदि भक्त शरणागति नहीं लेता तो माया उसे सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से दुःखी करती ही रहेगी। जब भगवत्–शरणागति पूर्ण रहती है तो निर्गुणवृत्ति भक्त–साधक में स्वतः ही सुगमता से हो जाती है। जब अन्तःकरण में निर्गुणवृत्ति उदय हो जाती है तो भगवत्–माया इसको हाथ जोड़े दूर खड़ी हो जाती है। तब माया भक्त की भक्ति उन्नति में साथ देती है।

अब प्रश्न उठ सकता है कि शरणागति होने का क्या रूप है ? क्या साधन है ? मन की वृत्ति क्या है ? साधक का जीवनयापन क्या है ?

मेरे श्रीगुरुदेव इस प्रश्न का उत्तर बता रहे हैं कि –

प्रत्येक हरिनाम साधक के लिये भगवत्–शरणागति परमावश्यक है। खाते–पीते, चलते–फिरते, सोते–जागते, हरिनाम को पकड़े रहो तो पूरे धर्मग्रंथों का सार, निचोड़, साधक के अन्तःकरण में स्वयं ही उदित हो जायेगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं – श्रीगौर किशोरदास बाबा जी महाराज, जो बिल्कुल अनपढ़ थे।

सर्वग्रंथों का सार क्या है ? पूरी उम्र भर मानव जिस भाव में अपना जीवनयापन करता रहेगा, वही भाव अन्त समय में, मरते समय उदय होगा। जैसा भाव उदय होगा उसी भावानुसार अगली देह नर–मादा के संग से निर्मित हो जायेगी। यदि मानव मांसाहारी व शराबी होगा तो तमोगुणी स्वभाव के अनुसार नरक भोग करके चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरेगा जिसमें उसको कई चतुर्युगी का समय गुज़ारना पड़ेगा। तब भी, मानव का जन्म उसे उपलब्ध होगा–इसमें भी संदेह है। भगवद्–कृपा से ही सुदुर्लभ मानव शरीर मिलता है, संत भी श्रीहरि की कृपा से ही मिलते हैं।

"बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।"

श्रीहरि की कृपा भी जीव पर तभी होती है जब संयोगवश उसे संत–सेवा का अवसर मिल जाता है। ऐसा अवसर करोड़ों में से किसी एक को ही मिला करता है।

इसीलिये मेरे श्रीगुरुदेव ने सभी साधकों को सावधान करके बोला है कि रात को सोते समय, जब नींद आने को हो, तब भगवान् से प्रार्थना करनी है कि **"जब मेरे तन से प्राण निकलें तो आपका नाम मुख से उच्चारण करवाने की कृपा करें।"**

एक प्रकार से यही है–भगवत् शरणागति का साक्षात् स्वरूप। जब माला झोली लेकर तुलसी की माला से हरिनाम करने के लिये

बैठो तो भगवान् की ओर देखते रहो व यह प्रार्थना बोलते रहो तथा ऐसा महसूस करते रहो कि भगवान् नाम द्वारा मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। जब हरिनाम करते–करते यह धारणा बनती जायेगी तो कुछ समय बाद विरहावस्था प्रगट हो पड़ेगी। ऐसा तभी होगा यदि नामापराध से बचते रहोगे अन्यथा विरहावस्था प्रगट होने में देर भी लग सकती है। अपराध होते रहने से उक्त धारणा बन ही नहीं पायेगी। ऐसा मेरे गुरुदेव सभी साधकों को बता कर सावधान कर रहे हैं।

पूरी ज़िंदगी भर का भाव बदलने हेतु ही श्रीगुरुदेव ने कृपा–परवश होकर उक्त प्रार्थना का आयोजन सभी साधकों को बताया है कि रात में सोते वक्त ऐसा मार्मिक उच्चारण करवाने की भगवान् से प्रार्थना करनी है। **प्रार्थना, आत्मा का बल है और आत्मा का भोजन है–भगवान् को याद करते रहना।** भगवान् ने ही पूरी सृष्टि का निर्माण किया है। इसलिये सभी चर–अचर प्राणियों के अमर पिता भगवान् ही हैं। पिता को भूलने से ही जीवमात्र हर क्षण दुःखी रहता है। भगवत्–माया इसे दुःखों के कोल्हू में पीड़ती (पीसती) रहती है। जीव भगवान् को भूला बैठा है, यही इसका अज्ञान है।

जीव की भूल को यदि कोई सुधार सकता है तो वह है सच्चा साधु। पर साधु–संग मिलना बहुत मुश्किल है। भगवत्–कृपा बिना साधु–संग मिलता नहीं है और यदि कहीं साधु संग मिल भी जावे तो जीव सेवा करने से वंचित रहता है। कारण यह है कि उसे साधु–सेवा करने का ज्ञान ही नहीं है। आत्मा का भोजन साधु ही दे सकता है।

जीवमात्र सत, रज और तम के चंगुल में फँसा रहता है। उक्त स्वभाव अनुसार ही कर्म में प्रवृत्त रहता है और भगवान् को भूला रहता है। रात सोने में तथा दिन हाय–धाय में, इसी तरह पूरी उम्र गुज़र जाती है। जिस उद्‌देश्य के लिये मानव जन्म उपलब्ध हुआ था, मूर्खतावश, अज्ञानतावश, वह उस उद्‌देश्य को भूलकर अपना

जीवन खो देता है और फिर से नरक तथा चौरासी लाख योनियों में भटकने को चला जाता है। बाद में यह सुदुर्लभ मानव जन्म उपलब्ध होता है। इसलिये धर्मग्रंथ बोल रहे हैं कि करोड़ों में कोई एक विरला ही भगवान् के धाम में पहुँच पाता है, बाकी सबका जीवन तो व्यर्थ चला जाता है।

मन से बंधन तथा मन से ही स्वतंत्रता उपलब्ध होती है। मन ही मित्र तथा मन ही शत्रुवत् बर्ताव करता है। इस मन का विश्वास कभी मत करना। यह मन जीव को गहरे खड्डे में गिरा देता है इसलिये इसे कभी भी फुर्सत में मत रखो। मन को सदैव काम में लगाए रखना उत्तम है।

भगवत्–नाम में मन को लगाये रखो तो यह त्रिगुणों (सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) से दूर होता जायेगा और जीव को सद्गति की उपलब्धि हो जायेगी। भगवत्–नाम में, भगवद्–चिंतन में मन को नहीं लगाने से, यह संकल्प–विकल्प करके जीव को भ्रमित करता रहेगा। मन को हरिनाम की शरणागति परमावश्यक है। जब मन को नाम की शरणागति बन जायेगी तो वह नाम–संबंधी ही संकल्प–विकल्प करेगा और जीव का सुख विधान बन जायेगा।

मायिक (माया का) अहम् यदि भगवान् के प्रति बदल जाये तो सुगमता से परमानंद की उपलब्धि हो जाये। अहम् ही जीव का सबसे बड़ा दुश्मन है। इस अहम् को मारना बहुत ज़रूरी है। यह अहम् ही जीव को दुःखी कर रहा है। यदि यह अहम् भगवान् की ओर मुड़ जाये तो पूरा कर्म ही भगवान् के प्रति होगा तो यह शरणागति का ही प्रतीक होगा। जब सब कर्म ही भगवान् के प्रति होने लगेंगे तो सब पर तथा अपने आप पर दया करने की उसकी धारणा बन जायेगी। जीवमात्र में उसकी भगवत्–दृष्टि होने लगेगी। तब जीव–साधक किसी भी जीवमात्र का बुरा कर ही नहीं सकेगा। उसके हृदय में दया का भाव उदय हो जायेगा और वह सभी को अपना हितैषी अनुभव करने लगेगा। तब उसे यह सारा जगत्

सुखमय नज़र आने लगेगा। फिर दुःख का तो नामोनिशान ही नहीं रहेगा।

पर यह अवस्था हरिनाम–स्मरण से ही हो सकेगी। हरिनाम ही मन को स्वच्छ व निर्मल बनाता है। कलियुग में हरिनाम के बिना कोई भी दूसरा साधन नहीं है।

किसी भी जीव को दुःख देना, सताना, भगवान् को ही सताने जैसा है। इसलिये उसका दण्ड–विधान स्वतः ही बन जाता है। प्रत्येक जीव का शरीर एक मकान ही है। शरीर रूपी इस मकान में कौन रहता है ? आत्मा ही इसमें रहती है। किसी को भी दुःखी करना आत्मा को ही दुःखी करना होता है। इसी कारण श्रीगुरुदेव ने बोला है कि भगवान् से प्रार्थना करो कि **"हे प्रभो! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि प्रत्येक प्राणी में, मैं आपको ही देखूं।"**

एक बात जो मार्मिक है, ध्यानपूर्वक सुनो। साधक नाम लेता है, यह तो बहुत उत्तम बात है पर नाम लेने के बाद हिंसा–प्रवृत्ति में संलग्न हो जाता है, जीवों को मारता है, दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है, पेड़–पौधों को काटता है, (यह भी हिंसा है), यह बात ठीक नहीं है। यह तो नाम के बल पर पाप करना हो गया अर्थात् यह सोचकर पाप करना कि अभी पाप कर लेते हैं, फिर हरिनाम करके उसे धो डालेंगे। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। प्रत्येक जीवमात्र में आत्मा रूप से परमात्मा विराजित है। यदि साधक किसी को सताता है या दुःख देता है, वह भगवान् को ही सताना या दुःख देना है क्योंकि प्रत्येक जीवात्मा का रहने का स्थान तो शरीर ही होता है। शरीर तो भौतिक पदार्थों से रचित है, अतः जड़ है। जड़ को दुःख होने का प्रश्न ही नहीं होता है। आत्मा चेतन है। दुःख तो आत्मा रूपी परमात्मा को ही हुआ करता है। जो परमात्मा को सताता रहता है, वह सुखी कैसे रह सकता है ? जब इस शरीर से आत्मा निकल जाती है तो क्या इस शरीर से कुछ कर्म बन सकता है ? नहीं। अतः साधक को जीवमात्र में भगवान् को

विराजित देखकर अर्थात् अनुभव कर, उसकी भलाई में रत रहना चाहिये जैसा कि मेरे श्रीगुरुदेव ने बोला है कि कण–कण में तथा जीवमात्र में साधक भगवान् को ही विराजमान अनुभव करे तो ऐसा साधक भगवान् को उपलब्ध हो जायेगा।

जब साधक का ऐसा स्वभाव बन जायेगा तो उसका हर कर्म स्वतः ही (अपने आप ही) भगवान् के प्रति बन जायेगा। जब कण–कण में भगवान् को देखने की दृष्टि साधक की हो जायेगी तो कर्त्ता–भाव से कर्म कैसे हो सकेगा ? उसका हर कर्म भगवान् के प्रति ही हो जायेगा।

--हरि बोल--

11

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
अमावस्या
29.08.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि भभकने की करबद्ध प्रार्थना स्वीकार हो।

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

फिर से मानव–जन्म उपलब्ध होना, सुदुर्लभ तथा वर्णनातीत है। भगवत् माया को अपने अनुकूल बनाना खंडे की धार (बहुत मुश्किल काम) है। जीवात्मा को काबू रखने हेतु माया के पास सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण–तीन अमोघ हथियार हैं। इनको जीत पाना आत्मा के लिये असंभव है।

जीवात्मा जब से भगवान् की गोद से बिछुड़ा है, तभी से दुःख के सागर में गोते खा रहा है तथा अनंत जन्मों से अर्थात् अनंत कल्पों से, अनंत युगों से भगवान् की गोद में नहीं पहुँच पाया है। यह जीवात्मा संसार की बीहड़ जंगल में भटकता रहता है। इस बीहड़ जंगल से बाहर निकलने का सबसे आसान रास्ता तथा सुख का रास्ता बताने वाला इसे आज तक नहीं मिल पाया। जहाँ सुख का नामोनिशान भी नहीं, उसी को सुख मानकर, मौज–मस्ती में अपना जीवन बिता रहा है। इसी को सब कुछ मान बैठा है। इस अज्ञान को ही परम सुख मान रहा है। कितनी मूर्खता है ? कैसी विडंबना है ?

सूकर (सूअर) आदमी का मल खाता है पर उसे ही अमृत समझ कर, अपनी मौज़ में रहता है। यह उसकी अज्ञानता है। इस

संसार में चारों ओर अज्ञान छा रहा है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्'–जीव ही जीव का भोजन है। जीव ही जीव को खाकर आनंद मना रहा है। जीव ही जीव का वैरी बन रहा है। दसों दिशाओं में भय का साम्राज्य है। कोई भी निर्भय नहीं है। सभी परतंत्रता (गुलामी) का जीवन काट रहे हैं। कहीं भी स्वतंत्रता का नामोनिशान नहीं है। कोई भी सुरक्षित नहीं है।

सभी की ऐसी अवस्था क्यों है ? ऐसी अवस्था इसलिये है क्योंकि जीव भगवान् को भूल गया है। अपने को जन्म देने वाले को भूल बैठा है। यदि जीव जन्म देने वाले को याद करता रहे तो सभी दुःखों का बखेड़ा ही समाप्त हो जाये। अब क्या हो रहा है ? पुत्र वाला भी सुखी नहीं है और जिसके पुत्र नहीं है, वह भी सुखी नहीं है। धनवान भी सुखी नहीं है। गरीब भी सुखी नहीं है। गृहस्थी भी सुखी नहीं है। संन्यासी भी सुखी नहीं है।

अब प्रश्न उठता है कि फिर सुखी कौन है ? जो ब्रह्मलीन है, जिसका मन भगवत् चरण में लीन है, वही सुखी है। श्रीमद्भगवद् गीता का वचन है :–

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

(गीता 18.54)

अर्थात् जो दिव्य पद पर स्थित हो जाता है, वह तुरन्त परब्रह्म का अनुभव करता है और पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोक करता है न किसी वस्तु की कामना करता है। वह प्रत्येक जीव पर समभाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है। पर जिसका मन सदा ही उधेड़ बुन में रहता है वह सुखी कैसे रह सकता है ? मन केवल भगवान् का चिंतन करने से ही स्थिर होता है। हमारे दुःख और सुख का कारण केवल मन ही है। मन ही सुख व दुःख की अनुभूति करता है। सब कुछ मन पर ही निर्भर है।

मन कौन है ? मन स्वयं भगवान् है। हमने अपने मन को माया के हाथों में सौंप रखा है अर्थात् हमारा मन सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के चंगुल में पड़ गया और दुःखी हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बोल रहे हैं कि इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। तूने जबरदस्ती इस पर अपना अधिकार जमा रखा है। बिना किसी अधिकार के मेरी वस्तु (मन) को अपना मान लेने के कारण तू व्यर्थ में दुःखी हो रहा है। यदि इस मन को, जोकि मेरा है, तू मुझे सौंप दे तो सब तरह से सुखी बन जाये। इस मन को जब तक तू मुझे नहीं देगा, दुःखी ही रहेगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 9.34)

"मुझ में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को मुझ में नियुक्त करके, मेरे परायण होकर तू मुझे ही प्राप्त होगा।"

"भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार मैं ही मन हूँ उसी प्रकार हरिनाम भी मैं ही हूँ। इन दोनों को एक संग में रख ले तो तुझे सुखी होने में देर नहीं लगेगी। मेरा नाम और मेरा रूप एक ही वस्तु है इसमें कोई भेद नहीं है। श्रीहरिनाम स्मरण करने के साथ–साथ ही मेरा रूप प्रकट होता है। जब कोई साधक बड़ी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, एकाग्रता के साथ मन से हरिनाम करता है तो मेरा नाम और मेरे रूप उसके हृदय में नृत्य करते हैं।

श्रीनाम स्मरिले रूप आईसे संगे।
रूप नाम भिन्न नय, नाचे नाना रंगे।।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि)

कहने का मतलब हुआ कि तू मन से ही हरिनाम कर। मन से हरिनाम करने का अभिप्राय है कि मुख से हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जाप कर और कान से सुन। ऐसा करने मात्र से ही तू सुखी हो जायेगा।

भगवान् महावदान्य हैं। परम करुणामय हैं। परम दयालु हैं, पतित पावन हैं और परम स्वतंत्र हैं। भगवान् चाहते हैं कि किसी तरह मेरा पुत्र (जीवात्मा) मेरे पास वापस आ जाये। इसलिये भगवान् कहते हैं कि हे साधक! यदि तू अपना मन मुझे नहीं दे सकता या देने में असमर्थ है तो एक काम कर। मैं तुझे एक दूसरा उपाय बताता हूँ। तू भगवान् के किसी प्यारे, किसी नामनिष्ठ संत के साथ सांठ–गांठ कर ले। ऐसा नामनिष्ठ जिसने अपना मन भगवान् को सौंप रखा है जो भगवान् को ही अपना सब कुछ मानता है, उसका संग कर। उसका संग करने से, उसके शरीर से निकलने वाली तरंगें, उसके मुख से निकलने वाले हरिनाम को सुनने मात्र से तेरा जीवन बदल जायेगा और तुझ पर हरिनाम का रंग चढ़ जायेगा। तेरा जीवन सरल हो जायेगा और वह नामनिष्ठ तेरा मन भगवान् में लगा देगा। जब तेरा मन भगवान् में लग गया, जब तू भगवान् के पास पहुँच गया फिर तो सारा दुःख ही समाप्त हो जायेगा।

ध्यान से सुन और विचार कर कि यदि तूने भजन नहीं किया तो इस सुदुर्लभ मानव जीवन के बीत जाने के बाद तुझे क्या–क्या दुःख झेलना पड़ेगा। मैं तुझे बता रहा हूँ , इसे समझ और हरिनाम करने में लग जा।

यदि तू भगवान् का भजन नहीं करेगा तो मरने के बाद, सबसे पहले तो कई युगों तक तू अट्ठाईस नरक भोग करेगा। इन नरकों में जो दुःख और कष्ट तुझे उठाने पड़ेंगे, उनका कोई अन्त नहीं। उनको देखने मात्र से जीव बेहोश हो जाता है। श्रीमद्भागवतपुराण में इन नरकों का वर्णन मिलता है।

अनंतकोटि जन्मों तक, नरक भोगने के बाद, फिर तुम्हें चौरासी लाख योनियों में जीवन बिताना पड़ेगा। इन चौरासी लाख योनियों में तीस लाख योनियाँ तो पेड़–पौधों की हैं, बीस लाख योनियाँ

जलचरों (जल में रहने वाले जीव–जंतु) की हैं, बीस लाख योनियाँ नभचरों (आकाश में उड़ने वाले पक्षी इत्यादि) की हैं। दस लाख थलचरों (जमीन पर चलने वाले साँप इत्यादि) की हैं। मनुष्य की योनियाँ चार लाख तरह की हैं। इस प्रकार इन चौरासी लाख योनियों में जीवन बिताने में ही कई चतुर्युग (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग) का समय लग जायेगा। इन चौरासी लाख योनियों के कष्ट को महसूस करते हुये मानव साधक को हरिनाम में लग जाना चाहिये। इतने नरकों का भोग भोगने के बाद तथा चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद, यह सुदुर्लभ मनुष्य का शरीर मिला है। यदि मनुष्य का शरीर पाकर अब भी भजन नहीं करता तो अगला मनुष्य शरीर कब मिलेगा ? इसमें संदेह है। इसकी कोई गारंटी नहीं है।

मेरे श्रीगुरुदेव गारंटी ले रहे हैं कि जो इस जन्म में हरिनाम करने में जुट जायेगा, उसका उद्धार होना निश्चित है पर नित्य प्रति एक लाख हरिनाम करना परम आवश्यक है। नामाभास होने पर भी वैकुण्ठ प्राप्ति अवश्य हो जायेगी। श्रीहरिनाम चिन्तामणि में लिखा है कि यदि एक कृष्ण नाम किसी के मुख से निकले अथवा कानों के रास्ते से किसी के अंदर प्रवेश करे तो चाहे शुद्ध वर्ण हों या अशुद्ध वर्ण, हरिनाम के प्रभाव से वह जीव भवसागर से पार हो जाता है किन्तु इसमें एक बात सुनिश्चित है कि नामाभास होने पर वास्तविक फल की प्राप्ति में विलंब होता है। नामाभास होने पर अन्य शुभ फल तो शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं लेकिन प्रेमधन की प्राप्ति में विलंब होता है। नामाभास के द्वारा जब हरिनाम करने वाले के सारे पाप और अनर्थ खत्म हो जाते हैं तब शुद्धनाम भक्त की जिह्वा पर नृत्य करता है। उसी समय शुद्धनाम के प्रभाव से जीव को प्रेमधन की प्राप्ति हो जाती है।

मेरे श्रीगुरुदेव ने सभी शास्त्रों का सार, निचोड़ तथा बीज केवल मात्र तीन बातों में बता दिया है। इन तीनों बातों को याद करके, नित्यप्रति भगवान् से प्रार्थना करना परमावश्यक है। लगातार

तीन महीने तक इस साधन को अपनाने से, अभ्यास करने से, इनको करने की आदत बन जायेगी और यही तीन बातें (तीन साधन) मरते समय साधक को दुःख सागर से पार कर देंगे। भवसागर से पार होने के लिये ये तीनों बातें सर्वोत्तम नाव है।

पहली बात हर रोज़ रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करनी है–**"हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे तो अंतिम सांस के साथ, हे भगवान् आपका नाम उच्चारण हो जाये।"**

दूसरी बात प्रातःकाल जगते ही भगवान् से प्रार्थना करे–**"हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आज मेरे तन–मन से जो भी कर्म बने, वह सब आपके निमित्त ही हो। यदि मैं भूल जाऊँ तो हे भगवान् ! कृपा करके मुझे याद दिलाते रहें। मैं आपकी शरण में हूँ।**

तीसरी बात, नित्यप्रति आह्निक अर्थात् संध्या करते समय भगवान् से प्रार्थना करे–**"हे प्रभु! आप मुझ पर ऐसी कृपा करो, मेरी दृष्टि ऐसी बना दो कि कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में, मैं आपको देखूँ अर्थात् आपको ही अनुभव करूँ।**

इन तीनों बातों को बोलने में केवलमात्र दो मिनट का समय लगता है। यदि साधक इन तीनों बातों को अपने जीवन में अपना ले, प्रतिदिन इन प्रार्थनाओं को भगवान् से कहे तो निश्चित रूप से उसे इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति हो जायेगी। इन तीनों बातों के सिवाय भगवान् को प्राप्त करने का चौथा साधन और कोई नहीं है। ऐसा मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं।

ये तीनों बातें या साधन पूर्ण शरणागति के द्योतक हैं। इन प्रार्थनाओं को करने से साधक का मन एक क्षण भी भगवत् चरण के सिवाय कहीं नहीं जा सकता। इसलिये मेरे श्रीगुरुदेव बार–बार इन तीनों साधनों को बता रहे हैं और सभी को सावधान कर रहे हैं।

ऐसी भावना तथा ऐसी दृष्टि एक दिन में तो होगी नहीं। तीन महीने अभ्यास करने पर 50 प्रतिशत दृष्टि बन जायेगी और

लगातार करते रहने से भविष्य में पूर्ण सफलता मिल जायेगी। अब यह साधक पर निर्भर करता है कि वह भगवान् को कितना चाहता है। जिस अनुपात (Ratio) में वह भगवान् को चाहेगा, उसी अनुपात (Ratio) में, उसी अनुपात के समय में, उसे सफलता मिलती रहेगी। यदि साधक भगवान् को चाहेगा ही नहीं तो यह साधन उससे कभी नहीं हो सकेगा और यदि साधक भगवान् को चाहेगा तो इस साधन को करने में केवलमात्र दो मिनट का समय लगता है। ऐसा सरल, सुगम साधन मेरे श्रीगुरुदेव ने कृपा करके साधको को बता दिया है।

श्रीमद्भागवतपुराण में देवर्षि नारद जी बोल रहे हैं कि यह मन प्रधान लिंग शरीर ही जीव के जन्मादि का कारण है। अतएव कर्म बंधन से छुटकारा पाने हेतु, संपूर्ण विश्व को भगवत्–रूप देखते हुये, सब प्रकार से हरिभजन करना चाहिये। यही बात मेरे श्रीगुरुदेव भी कह रहे हैं कि जीवमात्र में भगवान् को देखो।

श्रीगुरुदेव जी बोल रहे हैं कि हमारे सुख और दुःख का कारण केवल मन है। मन सुधर जाये तो सारा जीवन सुधर जाये। वास्तव में मन जीव का है ही नहीं। यह तो भगवान् की संपत्ति है। अतः इस संपत्ति को, हरिनाम जपकर, कान से सुनकर, भगवान् को देना ही पड़ेगा। तब ही जीव का सुख का साधन बन सकता है। अन्य कोई रास्ता नहीं है। एकमात्र मन को ही बुद्धि द्वारा समझाना होगा। गीता में भगवान् ने अर्जुन को बोला है कि–

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि।

अर्थात् इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। मेरा मन लेकर जीव दुःखी हो रहा है। जब तक वह मेरा मन मुझे नहीं देगा तब तक वह हर क्षण दुःखी ही रहेगा। जब तक माया के तीनों गुण–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण जीव के साथ रहेंगे तब तक सूक्ष्म शरीर यातना लेने हेतु साथ में रहेगा। जब जीवन के संग में निर्गुणवृत्ति उदय हो जायेगी तो सूक्ष्म शरीर भी नष्ट हो जायेगा। जब सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जायेगा तो समस्त दुख का बखेड़ा भी समाप्त हो जायेगा। तब

भगवान् का संग उपलब्ध हो जायेगा। आवागमन भी छूट जायेगा तथा माया से पिंड भी छूट जायेगा। फिर पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध हो जायेगी।

यह निर्गुणवृत्ति कब प्रकट होगी ? यह वृत्ति तब उपलब्ध होगी जब श्रीगुरुदेव के बताये हुये तीनों अमूल्य साधन जीव को उपलब्ध हो जायेंगे। ऐसा सरल, सुगम साधन मानव जन्म का अमूल्य धन है जो कोई भी इनको अपनायेगा, वह हर क्षण सुख पायेगा। श्रीहरिनाम को (हरे कृष्ण महामंत्र)–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

को मुख से उच्चारण करके, कान से सुनकर–ये तीनों साधन सफलतापूर्वक उपलब्ध हो जायेंगे। पर यह होगा तभी जब साधक मन से इसको चाहेंगे। जब संसारी आसक्ति निर्मूल हो जायेगी तभी निर्गुणधारा अन्तःकरण में प्रवाहित होगी। संसारी आसक्ति निर्मूल तब होगी जब साधक अपने जीवन में मेरे श्रीगुरुदेव द्वारा बताये गये, ये तीनों साधन (बातें) अपने जीवन में उतारेंगे। मेरे श्रीगुरुदेव आदेश दे रहे हैं कि इन तीनों साधनों को बार–बार बोलकर, मन को सावधान करते रहो ताकि ये तीनों बातें जीवन में अंकित हो जायें। निर्गुणधारा बहने पर ही यातनामय सूक्ष्म शरीर का अभाव हो सकेगा। जब तक सत, रज, तम–माया के ये तीन गुण अन्तःकरण में रमे रहेंगे तब तक निर्गुणधारा अन्तःकरण में प्रगट होगी ही नहीं।

हरिनाम ही एक ऐसी औषधि है जो कान के द्वारा सेवन की जायेगी। ये औषधि माया के इन तीनों गुणों (सत, रज, तथा तम) को निर्मूल करके ही रहेगी। इस औषधि को मन से सेवन करना परम आवश्यक है। मन से सेवन करने पर ही शीघ्र सफलता उपलब्ध होगी। यदि हरिनाम रूपी यह औषधि मन से सेवन नहीं की तो भी सफलता तो अवश्य मिलेगी परंतु उसमें समय लगेगा, देर होगी। इस कलियुग में हरिनाम के सिवाय दूसरा कोई साधन है ही नहीं। नारद जी ने घोषणा कर रखी हैः–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
क्लौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

इस कलियुग में केवल हरिनाम ही एकमात्र साधन है। भगवद् प्राप्ति का इसके सिवाय दूसरा कोई साधन नहीं है और इस साधन में न कोई खर्च होता है, न कहीं जाने की आवश्यकता है, न कोई समय की पाबंदी है, न कोई जगह की पाबंदी है, न शुद्ध–अशुद्ध का नियम, न शब्दों के शुद्धिकरण की आवश्यकता है। हरिनाम को मन से लेना है बस !

भगवान् तो साधक का केवल मात्र भाव देखते हैं। शब्द खंडित उच्चारण होने पर भी कोई नुकसान नहीं। भगवान् तो भावग्राही हैं, वे सब समझते हैं कि साधक क्या कर रहा है। जब कोई छोटा सा शिशु अपनी तोतली भाषा में कुछ बोलता है तब उसे न तो भाषा का ज्ञान होता है, न उच्चारण का और न ही वह अपनी बात को पूरी तरह कह पाता है, पर ममतामयी माँ उसके हाव–भाव से समझ जाती है कि वह क्या कह रहा है और क्या चाहता है। इसी प्रकार भगवान् तो संपूर्ण विश्व की करुणामयी, दयामयी, कृपामयी एवं वात्सल्यमयी माँ है। इस सृष्टि के जीवमात्र उसके पुत्र हैं। वह अपने सभी पुत्रों के मन की बात समझती है, जानती है। उस माँ को सच्चे मन से पुकार कर तो देखो ! कातर प्रार्थना करो तो सही ! वह दौड़ी चली आयेंगी और उसे बुलाने का एक ही साधन मेरे श्रीगुरुदेव ने बताया है।

While Chanting Harinam Sweetly, listen by ear.

मन से ही हरिनाम करो और कान से सुनो

मेरे गुरुदेव की इस वाणी को पढ़कर एक भक्त के हृदय में भगवद्–दर्शन की उत्कट इच्छा हुई। उसने मुझसे पूछा कि विरहाग्नि कैसे प्रकट होगी? भगवान् कैसे मिलेंगे ? मैंने कहा– मुख से उच्चारण करके हरिनाम को कान से सुनो।

उस साधक ने जब बार–बार प्रयास किया और भगवान् से

कातर प्रार्थना की तब भगवान् ने दिनांक 25 मई, 2010 को स्वयं उन्हें आदेश दिया।

"मेरा नाम करो। कान से सुनो।"

ये बात शत प्रतिशत सत्य है। जब उस साधक ने मुझे बताया तो मैं भाव–विभोर हो गया। देखो! भगवान् आज भी अपने भक्तों की पुकार सुनते हैं, वे कहीं चले नहीं गये। जब भक्त बुलाता है, वे आते हैं। ये बात मैं इसलिये बता रहा हूँ ताकि आपकी हरिनाम में श्रद्धा एवं विश्वास बढ़ जाये। हरिनाम करने में मंगल ही मंगल है। नाम जपने वाले का अमंगल हो ही नहीं सकता।

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्मकोटि अघ नासहुं तबहिं।।

सन्मुख का आशय है कि मेरा नाम ले, फिर उसके सुख का विस्तार हो जायेगा।

देखो ! इस कलियुग में राक्षस जन्म ले रहे हैं जो माँ–बाप को ही मार देते हैं। इसमें राक्षसों का कोई कसूर नहीं है। इसमें सारा दोष, सारा कसूर माँ–बाप का है क्योंकि माँ–बाप में भगवद् भक्ति का अभाव है अतः तमोगुण आचार–विचार होने से तमोगुणी संतान ही जन्म लेती है। ऐसी संतान दुष्ट–प्रकृति, दुष्ट स्वभाव की होती है और सभी को दुःख देती है।

शास्त्र मानव की आँखे खोल रहा है पर मानव है कि शास्त्र को मानता ही नहीं। यही कारण है कि आँखें बंद होने से, मानव के सभी कर्म अशुद्ध होते जा रहे हैं।

श्रीभागवत पुराण स्पष्ट रूप से बोल रहा है कि जब भगवान् की नाभि से कमल प्रकट हुआ तो उसमें से ब्रह्मा जी का अवतार हुआ। ब्रह्मा जी को भगवान् का आदेश हुआ कि सृष्टि पैदा करो। ब्रह्मा जी ने सृष्टि पैदा करना आरंभ किया तो अशुभ सृष्टि पैदा होने लगी। कामुक, क्रोधी, लोभी, गाली–गलौज देने वाली सृष्टि जन्म लेने लगी और ब्रह्मा जी को ही परेशान करने लगी। तब ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की कि शुभ सृष्टि करना मेरी

सामर्थ्य से बाहर है तो भगवान् ने आदेश दिया कि तप करो अर्थात् मुझे याद करके अर्थात् मेरी भक्ति करके सृष्टि आरंभ करो। तब ब्रह्मा जी ने भगवान् की भक्ति की। भक्ति करने के बाद जब सृष्टि आरंभ करने लगे तो सनकादिक (चार कुमार) का अवतार हुआ जो सदा ही पाँच साल के बच्चे बने रहते हैं। वे सदा नंगे–धड़ंगे रहते हैं। उनके बाद दस संन्यासी प्रकट हुये जिनमें दसवें नारद जी हैं। जब ब्रह्मा जी ने भगवान् की भक्ति आरंभ की तब रुद्र देवता आदि की शुभ सृष्टि होना आरंभ हुआ।

आजकल हम सभी देख रहे हैं कि बच्चे माँ–बाप का कहना नहीं मानते। गलत मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। पर इनमें बच्चों का कोई भी दोष नहीं है। इसमें तो माँ–बाप का ही दोष है। जब तामसी वृत्ति से बीज डालता है तो तामसी बच्चा ही पैदा होगा। ऐसे माँ–बाप का उद्देश्य पुत्र पैदा करने का नहीं होता, केवल इन्द्रिय तर्पण का ही रहता है। इसलिये मुझे यह सब स्पष्ट रूप से कहना पड़ रहा है। लोग मेरे पास आकर मुझसे शिकायत करते रहते हैं कि मेरा बच्चा कहना नहीं मानता। बराबर ऊँचा बोलता है। सामने बोलता है। गलत मार्ग में चला गया है। दूषित खान–पान करता रहता है। तो मेरे पास इन सभी समस्याओं की एक ही औषधि है, एक ही उपाय है और वह है–''हरिनाम करो।'' करके देखो तो सही ! **एक लाख हरिनाम अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र की चौंसठ माला प्रतिदिन करने से जीवन ही बदल जायेगा।**

कई परिवार में पति–पत्नि का झगड़ा रहता है। इसका स्पष्ट कारण है कि लोग जन्म–पत्री का मिलान नहीं करते। अपनी इच्छानुसार थोड़ा सा प्यार हुआ और शादी कर ली। आपस में थोड़ा बहुत मनमुटाव होना एक साधारण बात है। यदि कौए की शादी कबूतरी से होगी तो आपस में प्यार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही है–कर्मशास्त्रों की अवहेलना। कर्मशास्त्र तो मानव को सुख का मार्ग दिखाता रहा है लेकिन मानव शास्त्र को मानता ही नहीं है। इसलिये दुःख सागर में पड़ा गोते खाता रहता है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने ''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति'' पुस्तक के दूसरे भाग में मनचाही संतान प्राप्त करने का लेख लिखवाया है। पाठक वहाँ देख सकते हैं। इस लेख के अनुसार चलने से साधु पैदा होंगे और प्रत्यक्ष हो भी रहे हैं। जो लोग मेरे श्रीगुरुदेव की आज्ञा अनुसार चल रहे हैं उनके साधु प्रकृति के बच्चे पैदा हो रहे हैं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। पाठकों की जानकारी के लिये लिख रहा हूँ कि चंडीगढ़ के हरिबल्लभ (हितेश) तथा गीता (पति–पत्नि) तथा वृन्दावन के कुणाल के साधु प्रकृति के बच्चे पैदा हुये हैं। दूसरे लोगों को भी ऐसे बच्चे पैदा हुये हैं जिनके स्वभाव से ही पता चल जाता है। ऐसे साधु स्वभाव के बच्चे ही माँ–बाप को सुख देते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में भी साधु स्वभाव की संतान होने के अनेकों उदाहरण मौजूद हैं। घर में भक्ति होने से बच्चे भी भक्त बनते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान् कह रहे हैं कि सभी भूत प्राणियों में मानव ही श्रेष्ठ है। मानव में भी ज्ञानी मानव श्रेष्ठ है। ब्रह्मा जी का पुत्र रुद्र श्रेष्ठ है। रुद्र से भी ब्रह्मा श्रेष्ठ है और ब्रह्मा से भी मैं श्रेष्ठ हूँ क्योंकि मैं ब्रह्मा का पिता हूँ। मेरे से भी श्रेष्ठ है मेरा भक्त क्योंकि भक्त मेरा प्राण स्वरूप है। मैं अपने भक्त को आराध्य देव मानता हूँ। जो भी मेरे भक्त का बुरा करता है, वह मुझसे सहन नहीं होता। बुरा करने वाले का मैं दुश्मन बन जाता हूँ। जो मेरे भक्त को भोजन कराके उसे तृप्त करता है उससे मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। उसकी तृप्ति मेरी ही तृप्ति है। यज्ञ में आहुति देने से भी वह तृप्ति मुझे नहीं होती। भीलनी ने मुझे बेर खिलाये तथा विदुरानी ने मुझे केले के छिलके खिलाये। इन बेरों तथा छिलकों को खाकर मैं जितना तृप्त हुआ उतना तृप्त माँ–यशोदा मैया के हाथ से बिलोये माखन खाने से भी नहीं हुआ। मैं तो प्रेम खाता हूँ। प्रेम के अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं खाता।

देखो ! भगवान् से तब ही प्रेम होगा जब संसारी दिखावटी प्रेम निर्मूल हो जायेगा। प्रेम का उद्गम कान से हरिनाम सुनकर

ही होगा। कलियुग का अन्य कोई मार्ग नहीं है। अतः साधक को चाहिये कि वह अपना पूरा जीवन हरिनाम में लगा दे। तभी से कल्प वृक्ष की छाया में बैठने का अवसर हाथ लग सकता है। इससे ज्यादा सुखदायक छाया कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकती। ऐसा मेरे श्रीगुरुदेव का अमृत वचन है। इसे अपनाना सर्वोत्तम होगा। भविष्य में ऐसा समय आने वाला है कि तब न कोई त्योहारों को मनायेगा, न मंदिरों में भगवान् को मानेगा। मन्दिर सरकार के हाथ में चले जायेंगे। किराये पर पुजारी रखे जायेंगे। फिर एक समय ऐसा भी आयेगा कि जो भगवान् को मानेगा उसे दंड दिया जायेगा। इसलिये जागो। चेत जाओ। अभी समय है–हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

-- *हरिबोल* --

●

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

12

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
राधाष्टमी
05.09.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का सभी के चरणों में बारंबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उग्र रूप से होने की करबद्ध प्रार्थना।

सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से ही कर्म भोग तथा पुनर्जन्म भोगना

अनंतकोटि पिछले जन्मों के सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के स्वभावानुसार अगला जन्म चर–अचर प्राणियों में किसी का हुआ करता है। जिसे धर्मग्रंथ कारण शरीर भी कहते हैं। शरीर भी तीन प्रकार के होते हैं। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर। सूक्ष्म शरीर ही अगले जन्म का हेतु है। जब निर्गुण वृत्ति का स्वभाव साधक का बन जाता है तो यह सूक्ष्म शरीर समाप्त हो जाता है। सूक्ष्म शरीर तो सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के संग में ही रहता है। निर्गुण वृत्ति का स्वभाव तो परमहंस तथा दिव्य महानुभावों महात्माओं का ही हुआ करता है। इनको दिव्य शरीर प्राप्त हो जाता है।

संसारी आसक्ति वाले साधकों का स्वभाव तो गुणों से ही लिप्त रहता है। गुणों से ही पुनर्जन्म होता रहता है। भगवान् के भक्त के संग से ही इन गुणों का अंत हो जाता है क्योंकि भक्त से ही सच्चा ज्ञान उपलब्ध होता है। भक्त के संग में सदैव भगवत् चर्चा होती ही रहती है। अतः साधक पर भक्त का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है। क्योंकि भक्त स्वयं आचरणशील है जो स्वयं आचरण में रहता है उसका प्रभाव चुम्बक की तरह पड़ता है। जैसे चुम्बक

द्वारा लोहा सुगमता से खिंच आता है उसी तरह संसार में फँसा साधक शुद्ध आचरण में रंग जाता है। वह भगवान् को उपलब्ध करके, आवागमन से जोकि जघन्य दुःख का कारण है, सदा के लिये छुट्टी पा लेता है। सूक्ष्म शरीर के बाद ही दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म शरीर पिछले जन्मों के शुभ–अशुभ संस्कारों का पुंज है जो केवल मात्र साधु संग से हट सकता है। साधु संग भी भगवत् कृपा से ही मिला करता है। भगवत् कृपा कब मानव पर होती है ? जब मानव हरिनाम नामाभास पूर्वक करने लग जाता है तथा उससे संत सेवा बन जाती है। तब ही तो शास्त्र घोषणा कर रहे हैं कि –

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

कलिकाल में भगवत् प्राप्ति का कोई दूसरा साधन है ही नहीं। जिसका अनुष्ठान करने में कोई कठिनाई है ही नहीं। किसी भी समय, कहीं भी बैठकर, बिना कुछ खर्च किये सुगमता व सरलता से हरिनाम कर सकते हैं। लेकिन मानव इतने मायाजाल में फँसा पड़ा है कि हरिनाम जपने में इसका जी घबराता है। कितना अज्ञान, कितनी मूर्खता इसमें समायी पड़ी है। यह दुःख को ही सुख मानकर अपना जीवन काट रहा है। इसको यह पता नहीं है कि अब भविष्य में इसे मानव जन्म नहीं प्राप्त होगा एवं यह दुःख सागर में गिर जायेगा। शास्त्र बोल रहा है कि करोड़ मानवों में कोई एक ही अपना उद्धार करता है। मेरे श्रीगुरुदेव जी कितनी कृपा कर रहे हैं और बता रहे हैं कि कितनी सुगमता से मानव, भगवान् के धाम में सदैव सुख प्राप्त करने हेतु जा सकता है। फिर भी साधक व मानव श्रीगुरुदेव की कृपा की अवहेलना करता जा रहा है।

मानव का अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से गठित है। यह अहंकार ही बंधन का कारण है। इसमें मैं–मेरा भरा पड़ा है। यदि इससे तू–तेरा भाव बन जाये तो इसका सारा दुःख ही विलीन हो जावे। इसी कारण मेरे श्रीगुरुदेव जी ने सभी साधकों को बोला

है कि जो भी रात–दिन कर्म करो तो भगवान् का समझ कर, भगवान् के निमित्त ही किया करो तो निष्काम करने से कर्म भोग भोगना नहीं पड़ेगा। यह सकाम कर्म ही केवल मात्र दुःख का कारण होता है। यह भाव केवलमात्र हरिनाम जपते रहने से ही उदय हो जायेगा। हरिनाम को छोड़ा नहीं और माया के बंधन में पड़ा नहीं। हरिनाम करने से ही माया दूर रहेगी अन्य कोई साधन माया को दूर रखने का है ही नहीं। त्रिगुण ही पुनर्जन्म का कारण है।

मन भगवान् का है जो अन्तःकरण का हिस्सा है तथा अहंकार भी भगवान् को देना है। इन दोनों को भगवान् को सौंपने से बुद्धि तथा चित्त स्वतः ही सुगमता से भगवान् की ओर मुड़ जायेंगे। जब पूरा अन्तःकरण ही भगवान् की ओर मुड़ जायेगा, जब शरीर का महत्वशील हिस्सा ही भगवान् का बन गया तो फिर बचा ही क्या ? इस मानव जन्म का सार ही सफल हो गया।

इसमें महत्त्वशील चर्चा यह है कि साधक अपने अन्तःकरण से, हृदय से, भगवान् को ही उपलब्ध करना चाहेगा तभी पूरी सफलता हाथ में आ सकती है वरना तो श्रम ही हाथ में आयेगा।

आजकल कलियुग में दुष्ट स्वभाव के बच्चे क्यों जन्म ले रहे हैं ? इसका खास कारण है कि मानव का स्वभाव ही तामसी गुण का है। इनको संतान की आवश्यकता तो नहीं है इनको तो मन की तृप्ति होनी चाहिये। क्योंकि मन ही कामुक स्वभाव का बना हुआ है इसलिये जो बच्चा होगा, तामसी स्वभाव का ही होगा। जो माँ–बाप का कहना नहीं मानेगा, खान–पान दूषित करेगा। कर्म भी अशांति करने वाला करेगा। पड़ोसी को सतायेगा। निर्दयी स्वभाव का होगा। लोभी होगा तो माँ–बाप को पैसे हेतु मार भी देगा। फिर माँ–बाप शिकायत करते हैं कि मेरा बच्चा मेरा कहना नहीं मानता। तो मैं इनको यही बोलता हूँ कि हरिनाम के आश्रित हो जावो, हरिनाम ही इसको सुधार सकता है, दूसरा उपाय है ही नहीं। सत्संग से कौन नहीं सुधरा ? पशु–पक्षी तक सत्संग से सुधर जाते

हैं। गलती बच्चे की नहीं है, गलती मानव की है। मानव उचित समय नहीं देखते हैं। जब चाहे तब ही इन्द्री तर्पण करते रहते हैं। शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन करना तथा दुःख–कष्ट मोल लेना अवश्यम्भावी है ही। इसका उदाहरण शास्त्र बोल रहा है। दिति कश्यप जी का उदाहरण मौजूद है जिनकी संतान हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष ने जन्म लिया। उचित समय जो नहीं देखता उसे दुःख का भोग भोगना ही पड़ेगा।

मेरे श्रीगुरुदेव कितनी बार साधकों की आँखें खोलते रहते हैं परन्तु फिर भी साधकों की आँखें बंद होती रहती हैं जो इनका दुर्भाग्य ही है। धर्मशास्त्र भगवान् के मुखारविंद के साँस से प्रकट हुये हैं जो मानव के सुख के लिये ही बनाये गये हैं। शास्त्र मर्यादा जो तोड़ेगा वह कभी स्वप्न में भी सुख पा नहीं सकता।

"बोये बीज बबूल के, तो आम कहाँ से खाय" यह सच्ची कहावत है। बो दिया जौ और चाहें कि चावल मिल जाये। सही रास्ते चलो तो कहीं पर गिरने का डर नहीं होगा।

हनुमान जी राम जी को बोल रहे हैं :–

कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई।।

जब हरिनाम स्मरण कम होने लगेगा तो समझना होगा कि अब मनुष्य में कुछ न कुछ दुःख आने वाला है एवं जब हरिनाम स्मरण अधिक संख्या में होने लगेगा तो समझना होगा कि अब सुख के दिन आने वाले हैं। क्योंकि मानव का संबंध केवल भगवान से है न कि माया से जिसका जिससे संबंध होगा उसी के संग से आनंदवर्धन होगा एवं जिसका जिससे संबंध ही नहीं होगा उसके संग से आनंदवर्धन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कबूतर कभी कौवे के पास जाकर नहीं बैठता। यदि कौवे के पास बैठेगा तो वहाँ उसका मन सुखी नहीं रहेगा क्योंकि स्वभाव में रात–दिन का अंतर है। अतः कहने का मतलब यही है कि आत्मा का संबंध परमात्मा

से है जब आत्मा परमात्मा के पास में बैठेगा तो सुखी बन जायेगा एवं जब माया के पास आत्मा बैठेगा तो दुःखी रहेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है ! संसार में हम देखते हैं कि शराबी, शराबी के पास बैठता है। सत्संगी साधु के पास बैठता है। तो सुखी कौन है ? यह सभी जानते हैं। यदि मानव को अतुलित परमानंद की उपलब्धि करनी हो तो साधु का संग करे। ग्राम चर्चा से दूर रहे। हरिनाम की शरण में अपना जीवनयापन करता रहे तो दुःख तो कोसों दूर भाग जायेगा। जहाँ सूर्य उग रहा है वहाँ रात अर्थात् अँधेरा कैसे रह सकता है? इनकी आपस में कभी बनती ही नहीं है। सुख–दुख आपस में दुश्मन हैं। जहाँ सुख है वहाँ दुःख नहीं आ सकता एवं जहाँ दुःख है वहाँ सुख नहीं आ सकता। यह पक्का विधान है।

भगवत्–नाम की शरणागति उपलब्ध हो जाये तो यह माया का प्रभाव, सत–रज–तम गुण समाप्त हो जाये और निर्गुणवृत्ति अन्तःकरण में उदय हो जाये। मन से सच्ची शरणागति होती नहीं। अतः दुःख का साम्राज्य छाया रहता है। भगवत् नाम के पास दुःख आ ही नहीं सकता। भगवत् नाम कैसे स्मरण होना चाहिये उसके लिये श्रीगुरुदेव जपने का तरीका बता रहे हैं कि **जब माला हाथ में आवे तथा नाम करना आरंभ हो तो शरीर में एक तरंग व्याप्त होने लगे। इस तरंग से संसार विलीन होता हुआ चला जाता है।** यह है सुचारु रूप से, सत्य रूप में, हरिनाम जाप। इससे प्रेम उदय होकर विरहावस्था प्रगट हो पड़ती है। सती पतिव्रता का उदाहरण दिया जाता है। उसका सारा कर्म ही पति की सेवा के लिये होता है। इसी प्रकार भक्त का कर्म केवल मात्र, अपने इष्टदेव भगवान् के लिये ही होता है। अन्य के लिये भक्त को अवकाश ही कहाँ मिल सकता है ? उसका तो सारा समय भगवान् के लिये ही हो गया।

सत्संग प्राप्त होने का लाभ अकथनीय है। शास्त्र बोल रहा है–

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक संग
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

एक समय की बात है कि विश्वामित्र व वशिष्ठ जी में आपस में बहस हो गई। विश्वामित्र कहने लगे कि तपस्या सबसे बड़ी होती है क्योंकि विश्वामित्र जी ने हज़ारों साल तपस्या की थी और वशिष्ठ जी ने केवल सत्संग की भक्ति ही की थी। दोनों में कुछ झगड़े की संभावना बन गई। किसी साधु ने कहा कि आप दोनों क्यों झगड़ते हो ? किसी बड़े साधु के पास जाकर इसका निर्णय करवा लो। दोनों राजी हो गये कि सबसे बड़ा निर्णायक तो विष्णु भगवान् ही हैं, उनके पास जाकर यह निर्णय ले सकते हैं। बीच में शिवजी मिल गये। शिवजी से पूछने लगे तो शिवजी ने टाल दिया। शिवजी ने सोचा एक का पक्ष लेंगे तो दूसरा नाराज हो जायेगा। पार्वती साथ में ही थी। पार्वती ने ही शिवजी से पूछा–"आपने उनको तो नहीं बताया, मुझको ही बता दें कि तपस्या बड़ी है या सत्संग बड़ा है ? शिवजी बोले–

गिरिजा सन्त समागम सम, न लाभ कछु आन।
बिन हरि कृपा न होय, गावहिं वेद पुरान।।

"हे सती! सत्संग ही बड़ा है, जो संत के पास ही मिल सकता है।"

शिवजी ने इसका निर्णय नहीं दिया तो दोनों संत ब्रह्मा, विष्णु के पास पहुँचे और उक्त प्रश्न किया तो विष्णु जी ने भी इस कारण निर्णय नहीं दिया कि दोनों ही मेरे भक्त हैं मैं किसका पक्ष लूँ । अतः टाल दिया और बोले कि आप दोनों शेषनाग के पास चले जाओ, वहाँ आपका ठीक निर्णय हो जायेगा।

अब तो दोनो पाताल के नीचे शेषनाग के पास चले गये और अपना प्रश्न उनके सामने रखा। शेषनाग जी ने सोचा कि मैं किसका पक्ष लूँ ? एक का पक्ष लूँगा तो दूसरा नाराज हो जायेगा। अतः मन में सोचा जवाब देना तो परमावश्यक है तो विश्वामित्र जी

से बोले कि मेरे सिर पर पृथ्वी का भार अर्थात् बोझ रखा है, आप अपनी तपस्या पृथ्वी माँ को दे दो तो भार हल्का होने से मैं जवाब दे सकूँगा। विश्वामित्र ने दस हजार वर्ष की तपस्या का फल पृथ्वी माँ को दे दिया। शेषनाग ने कहा कि आप पृथ्वी को अपने करकमलों से पकड़े रहो तो मैं जवाब दे दूँ। जब विश्वामित्र जी ने भार सँभाला तो पृथ्वी नीचे खिसकने लगी। विश्वामित्र जी बोले यह पृथ्वी तो नीचे खिसक रही है तो शेषनाग जी बोले आपको अपनी पूरी तपस्या पृथ्वी को देनी पड़ेगी फिर पृथ्वी नीचे नहीं खिसकेगी। विश्वामित्र जी ने फिर पूरी तपस्या अर्पण कर दी तो भी पृथ्वी नीचे खिसकने लगी। विश्वामित्र जी बोले आपको जवाब देना ही होगा। शेषनाग जी बोले अब तो वशिष्ठ जी आप ही अपने सत्संग का फल पृथ्वी को दे दो। तब वशिष्ठ जी बोले–

"हे पृथ्वी माता ! यदि सत्संग का लवमात्र भी कोई प्रभाव हो तो अधर में रह जा।"

शेषनाग जी ने अपना फन नीचा कर लिया तो पृथ्वी अधर में ही रुक गई। अब तो विश्वामित्र जी पानी–पानी हो गये पर वशिष्ठ जी को कोई अहंकार नहीं हुआ। वशिष्ठ जी विश्वामित्र के चरणों में गिर गये कि मेरी वजह से आपको दुःख हुआ तथा शेषनाग जी के चरणों में लिपट कर कहने लगे कि यह सब भगवत् कृपा का ही फल है। इसमें मेरा क्या है ? भगवान् को भी सत्संग ही प्यारा है। सत्संग भक्ति का ही अंग है।

एक अलौकिक बात है कि एक पोता अपने दादा अर्थात् बाबा से बोला कि सत्संग का क्या प्रभाव होता है। दादा बोला "अमुक जगह चला जा, वहाँ बड़ वट का पेड़ है, उसमें एक कीड़ा रहता है, वही सत्संग का प्रभाव बता सकेगा।"

पोता बोला–आप तो बताते नहीं, फिर कीड़ा कैसे बता सकेगा ?

बाबा बोला–"वही बतायेगा।"

पोता पूछता–पूछता सही जगह पर पहुँच गया और बड़ में जो

कीड़ा बैठा था, उससे पूछने लगा कि कीड़े महाराज जी, सत्संग का क्या प्रभाव होता है ? इतना पूछते ही कीड़ा मर गया।

पोता बाबा के पास आकर बोला बाबा–''जब मैं कीड़े से पूछने लगा तो कीड़ा मर गया। आप ही क्यों नहीं बता देते ?''

तब बाबा बोला–''अमुक जगह पर एक ब्राह्मण की गाय ब्याही है, उसके बछड़ा हुआ है अभी दो दिन का ही हुआ है। वह सत्संग का प्रभाव बता देगा।''

अब तो पोता पूछता–पूछता वहाँ भी गया और बछड़े से पूछने लगा कि सत्संग का प्रभाव कैसा होता है। इतना पूछते ही वह बछड़ा भी मर गया। अब तो वह डर गया कि ब्राह्मण मुझे मारेगा तो बिना बताये खिसक गया। ब्राह्मण उसे जानता नहीं था कि कहाँ रहता है ?

फिर बाबा के पास आकर पूरी घटना बता दी कि वह बछड़ा तो पूछते ही मर गया तो बाबा बोला कि अबकी बार अमुक राजा के 20 साल बाद पुत्र हुआ है। वह तुझे सत्संग का प्रभाव बता देगा।

पोता बोला–''आप भी कैसी बात करते हो। राजा का बेटा भी मर गया तो मुझे फांसी लग जायेगी। मैं तो वहाँ नहीं जाता।''

बाबा बोला–''तुझे यदि सत्संग का प्रभाव पूछना हो तो वहाँ जाना ही पड़ेगा।''

पोते को सत्संग का प्रभाव पूछना था, उसे पूछे बिना उसका खाना–पीना सोना हराम हो गया था। अतः उसने सोचा–''जैसा भगवान् चाहेगा वैसा ही होगा।''

अब तो वह वहाँ भी पहुँच गया। वहाँ तो पहरेदार ही पहरेदार थे। अतः उसने साधु का भेष बना लिया कि साधु को तो कोई रोकेगा नहीं। पहरेदारों से बोला मैं राजा के पुत्र से मिलना चाहता हूँ। उसे आशीर्वाद देना है कि वह चिरंजीव रहे। पहरेदारों ने सोचा

हमारे राजा के 20 साल बाद बच्चा हुआ है, यह साधु है इससे बुरा तो हो नहीं सकता। अतः इसे जाने देने में ही भलाई है। तो पहरेदारों ने कहा कि तुम जा सकते हो। जब वह महल में गया तो साधु भेष देखकर सबने मिलने की आज्ञा दे दी।

बच्चा शैय्या पर सो रहा था। साधु भेष में पोता डर रहा था कि पूछते ही यह मर जाएगा तो मेरी तो मार–मार कर बुरी हालत कर देंगे। बेहोश कर देंगे। लेकिन हिम्मत करके बच्चे से पूछा कि सत्संग का क्या प्रभाव है अब तो बच्चा बैठ गया और कहने लगा–''सत्संग की वजह से तो मैं राजा का पुत्र हो गया। प्रथम बार तुमने सत्संग के बारे में पूछा तब मैं कीड़ा था तो मैं कीड़े की योनि से विदा हो गया। दुबारा मैं बछड़ा बना। तुमने पूछा तो मैंने बछड़े की योनि से छुट्टी पा ली। अब मैंने राजा का लड़का होकर जन्म लिया है। यही है सत्संग की करामात ! जो मैं इतने बड़े राज्य का मालिक बनूँगा। सत्संग ही सुख का भंडार है। सत्संग बिना सब जीवन बेकार है।'' तब पोते ने अपने बाबा से सारी कहानी बता दी तो बाबा भी खुश हो गया। सत्संग से क्या उपलब्ध नहीं होता ? सत्संग से ऊँचा कुछ नहीं है।

मन एकाग्रता की एक घटिया किस्म की वार्ता है लेकिन सारगर्भित बहुत प्रभावशाली है एवं महत्त्वशील है। ध्यान से सुनो– एक सुंदरी अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी। उसका मन उस तरफ इतना तल्लीन था कि उसको अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। रास्ते में एक मौलवी अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था अर्थात् नमाज पढ़ रहा था। वह सुंदरी भागी–भागी जा रही थी और उस मौलवी पर चढ़ गई और शीघ्रता से चली गई। उस मौलवी ने सोचा–''कैसी अंधी औरत है कि उसे मैं नहीं दिखा ! क्या वह अंधी है ?''

कामान्ध की दशा ऐसी ही होती है। मौलवी ने सोचा कि वह वापस तो इसी रास्ते से आयेगी क्योंकि दूसरा रास्ता है ही नहीं। मौलवी उसकी बाट में बैठा रहा। जब वह सुंदरी वापस आई तो

मौलवी बोला –"तू मेरे ऊपर क्यों चढ़ गई ? क्या तुझे मैं दिखा नहीं ? क्या तू अंधी है ?"

सुंदरी बोली–"जब तू अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था तो तुझे कैसे महसूस हुआ कि मैं तुझ पर चढ़ गई। तेरी इबादत करना ढोंग है। तेरा परवरदिगार तुझे क्या देखेगा ? ध्यानपूर्वक सुन ! मैं अपने प्यार से मिलने जा रही थी। मेरा मन इतना तल्लीन था कि रास्ते में क्या–क्या है, मेरा उस ओर कहीं ध्यान ही नहीं था। पर तेरी इबादत करना धूल में मिल गया।"

अब तो मौलवी के ज्ञान नेत्र खुल गये कि सुंदरी बात तो ठीक ही कह रही है। मेरी इबादत करना फिजूल ही है जबकि मेरा मन तल्लीन ही नहीं हो पाया। अब मैं तल्लीनता से परवरदिगार की इबादत करूँगा। उस मौलवी को एक वेश्या ने ज्ञान नेत्र दे दिये। कहने का भाव है कि शिक्षा तो निम्न श्रेणी से भी मिल जाती है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी गारंटी ले रहे हैं कि जो अनपढ़ हो, गँवार हो, जिसको कोई सहारा न हो, जिसमें कोई गुण भी नहीं हो, जिसको जगत् ने त्याग दिया हो, वह यदि मेरे कहे अनुसार, नित्य ही शरणागति के तीन साधन अपने जीवन में अपनाता रहे तो ऐसे साधक को, ऐसी कोई शक्ति नहीं जो वैकुण्ठ धाम जाने से रोक सके। स्वयं परमात्मा भी रोक नहीं सकते। परमात्मा से बड़ा तो अनन्तकोटि ब्रह्मांडों में कोई है भी नहीं।

इन तीनों साधनों में दो मिनट से अधिक का समय लगने वाला नहीं हैं, फिर से मैं संक्षेप में वर्णन कर देता हूँ।

पहला साधन–"अंतिम सांस में भगवान् का उच्चारण हो जाये"–जब रात में निद्रा आने को हो, तब बोलना है।

दूसरा साधन–जब ब्रह्ममुहूर्त में नींद खुले, तब बोलना है–"इसी क्षण से भगवत् का काम समझ कर, भगवान् के लिये ही संपूर्ण कर्म हो।"

तीसरा साधन– जब आनिक अर्थात् प्रातः की संध्या करने बैठो तब बोलना है–''प्रत्येक कण–कण में, जीवमात्र में, भगवत् दर्शन का भाव बन जावे।''

ऐसा अभ्यास करते रहने से तीन माह में 50 प्रतिशत भावना स्थिर हो जायेगी। बाद में तो पूर्ण शरणागति का भाव बन ही जायेगा। कितने थोड़े समय में पूर्णशरणागति उपलब्ध हो जायेगी। लेकिन उसको ही सफलता उपलब्ध हो सकेगी जो वैकुण्ठ जाने को तैयार होगा।

– हरि बोल –

प्राचीन मन्दिर ठाकुर श्री मदनमोहन देव जी, वृन्दावन

13

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
18.09.2011

प्रेमास्पद भक्तगण समाज,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारंबार हाथ जोड़ कर प्रार्थना स्वीकार हो।

दूषित अन्न पाने का मन पर गहरा प्रभाव निश्चित

गिरिराज आश्रित कृष्णदास बाबा सिद्ध संतों की महिमा में चरम सीमा में गिने जाते हैं। कई लोग शास्त्रार्थ करने हेतु आये और अपना सा मुँह लेकर चले गये। हर समय हरिनाम करना तथा अन्य को हरिनाम करने की प्रेरणा देना उनका सर्वोतम कर्म था। वे सदा ''हा राधा ! हा राधा !'' पुकारा करते थे। दिन में एक बार केवल मात्र, दो घर से मधुकरी लाकर, भगवान् को भोग लगाकर पा लिया करते थे।

न जाने दिन–रात में कितनी बार ''हा राधा ! हा राधा ! हा श्यामसुन्दर ! हा श्यामसुन्दर !'' पुकारा करते थे और रोया करते थे। कोई बोलता आप इतने क्यों रोते हो तो कहते कि तुमको इससे क्या लेना–देना ? जब कोई पीछे पड़ ही जाता तो कहने लगते कि ये दोनों मुझे रुलाते रहते हैं।

''तो आप उनसे क्यों न बोलो कि तुमको मेरे रुलाने में क्या मज़ा आता है ?'' तो बाबा बोलते–''मैं कहता हूँ तो जवाब देते हैं कि हमें भी आपके साथ रोने में मज़ा आता है। हमको रुलाने वाला कोई मिलता ही नहीं है।'' तब ये दोनों बोलते हैं कि बाबा इस रोने में कितना मज़ा है, क्या तुमको पता नहीं है ? तो बाबा बोलते हैं कि पता है।

एक दिन एक वेश्या शाम को उनके पास आई और बोली कि मेरा जीवन तो बेकार ही चला गया। मैं क्या करूँ बाबा ? बाबा बोले–''मेरे पास बैठकर हरिनाम किया कर।''

''बाबा, मैं वेश्या हूँ।''

बाबा बोला–''तू वेश्या है तो मैं क्या करूँ? तुझे यदि अगला जीवन सुधारना हो तो मेरे पास बैठकर हरिनाम किया कर।''

वेश्या बोली–''बाबा तू बदनाम हो जायेगा।''

बाबा बोला–''मैं बदनाम हो जाऊँगा तो मेरा क्या बिगड़ जायेगा। तुझे हरिनाम मेरे साथ बैठकर करना हो तो कर, वरना मेरा माथा मत खा।''

वेश्या ने सोचा ऐसा संत तो मैंने अब तक नहीं देखा, न सुना ! इसको किसी बात की चिन्ता ही नहीं है। इस बाबा से मेरा कल्याण हो सकता है। अब तो वह रोज़ रात–दिन बाबा के पास रहकर हरिनाम करने लगी। दुनिया में चर्चा होने लगी कि बाबा इतना सिद्ध था परन्तु माया ने किसको नहीं कुचला ! अब तो किसी का भी बाबा के पास आना–जाना न हुआ।

एक दिन बाबा वेश्या से बोला कि तुम्हारे आने से मेरा भजन कितनी तरक्की पर चला गया। लोग–बाग आकर मेरा माथा खाते थे और भजन के लिये तो कोई पूछता नहीं था। अपना रोना रोकर मुझे सुनाते थे। इससे तो पिंड छूटा। अब कितने आनंद से हमारा तुम्हारा हरिनाम सुचारु रूप से हो रहा है।

वेश्या बोली–''हाँ बाबा ! मेरा भी उद्धार अब तो निश्चित हो ही जायेगा।''

बाबा बोला–''क्यों नहीं।''

तब वेश्या बोली–''मेरे पास लोगों का लाखों रुपया कमाया हुआ है, आपको देना चाहती हूँ।''

बाबा बोला–"ऐसा कभी मत सोचना ! देना हो तो भगवान् के मन्दिर में चढ़ा सकती हो।"

"गुसाईं जी मेरा पैसा ले लेंगे क्या ?"

"जाकर पूछ लो क्या कहते हैं।"

दूसरे दिन वेश्या मन्दिर में गई और गुसाईं जी से प्रार्थना की कि मेरे पास बहुत पैसा है, आप ठाकुर जी के लिये ले लो।

गुसाईंजी बोले–"तू वेश्या है, तेरा पैसा ठाकुर नहीं ले सकता।" फिर क्या था ! इतना सुनते ही वह ठाकुर जी के सामने चिल्लाने लगी–"आपने मुझे वेश्या का कर्म सौंपा। मेरा इसमें क्या दोष है ? अब मैंने जो कमाई की है, आपको लेनी पड़ेगी। नहीं लोगे तो दस–पांच दिनों में तुम्हारे चरणों में प्राण दे दूँगी।" बोलो, क्या कहते हो ?"

गुसाईं भी उसका उलाहना सुनकर हैरान हो रहा था कि यह कैसी वेश्या है।

"गणिका भी वेश्या ही थी उसको आपने कैसे अपनाया ? और मैं भी वेश्या ही हूँ। यह भेदभाव क्यों ? तुम कैसे भगवान् हो ? तुम तो पत्थर के बने बैठे हो। दर्शकों को धोखा दे रहे हो। इस प्रकार वह ज़ोर–ज़ोर से चिल्ला–चिल्ला कर, दहाड़ मार कर रोने लगी तो गुसाईं क्या देखता है कि ठाकुर जी की, गले की माला खिसक कर सिंहासन पर गिर गई। गुसाईं समझ गया कि वेश्या की प्रार्थना ठाकुर ने सुन ली है लेकिन मैं तो तब समझूँगा ठाकुर ! जब आप मुझे स्वप्न में आदेश दोगे ! तो मैं वेश्या का धन ले सकता हूँ। उस धन से बार–बार सन्तों का भंडारा करता रहूँगा।

अब तो ठाकुर जी भी फँस गये कि वेश्या तो प्राण त्याग देगी ! अब तो गुसाईं जी को स्वप्न देना ही पड़ेगा। रात में ठाकुर जी ने गुसाईं को स्वप्न दिया कि जैसा वेश्या बोले, निःसंकोच होकर उसकी बात मान लेना, यह मेरा आदेश है।

अब तो गुसाईं को चिंता हो गई और वेश्या को बुलाने हेतु पुजारी को भेजा। पुजारी बोला कि मैं वेश्या के दरवाजे पर कैसे जा सकता हूँ ? उसका दरवाजा तो बाज़ार के बीच में है। बाज़ार के बीच में से होकर जाना पड़ेगा। बाज़ार में दोनों ओर सुनारों की दुकानें हैं, वे मेरे रिश्तेदार हैं। वे क्या सोचेंगे ?

गुसाईं जी ने बोला–''जब दुकानें बंद हो जावें तब उसके कमरे पर चले जाना। तुमको जाना तो बहुत ही जरूरी है। बेचारा पुजारी तो उसके आदेश से मजबूर होकर गया और वेश्या को बोला कि गुसाईं जी ने तुमको बुलाया है। लेकिन गुसाईं के घर पर मत जाना, उन्होंने मना किया है। मन्दिर में ही जाना है।''

वेश्या बोली–''क्यों बुलाया है ? कोई खास बात है !'' ठाकुर जी ने ही गुसाईं जी को आदेश दिया है–ऐसा सुनते ही वेश्या ज़ोर–ज़ोर से रोने लगी।

पुजारी ने कहा–''मेरा क्या हाल होगा ? मुझे यहाँ से निकल जाने दो। बाद में जैसा चाहे करना।''

वेश्या के पास जाने से सभी डर जाते हैं। समाज का डर भी लगता है। आँख मिलाना दूभर हो जाता है।

वेश्या गुसाईं के पास जाकर बोली–''क्या बात है?''

गुसाईं बोला–''तुम्हारा जितना धन है, मन्दिर में चढ़ा दो, मैं स्वीकार करता हूँ।''

वेश्या के पास लाखों रुपया था तथा सामान भी बहुत था। स्वयं का मकान तथा दुकान भी थीं, उसने मकान व दुकान बेच दी, वह पैसा भी भगवान् को सौंप दिया और मूड़ मुड़ाकर कृष्णदास बाबा के पास आकर उनकी चेली बन गई। वैराग्य धारण कर, अपना अलग से आश्रम बनाकर, भजन में लीन रहने लगी तथा रात–दिन हरिनाम जपा करती। अब तो उसके पास साधु–महात्मा तक आने लगे और सत्संग का परामर्श करने लगे। वेश्या इतनी बदल गई कि नामी विरहणी संत के पथ पर अग्रसर हो गई।

वृद्धावस्था आने पर हरिद्वार में जाकर अपना अंतिम जीवन विरहावस्था में ही बिताया, अंत में भगवान् को प्राप्त हो गई। यह मेरे श्रीगुरुदेव ने ऐसी मार्मिक वार्ता सुनाकर अंकित करवाई है।

जब गुसाईं जी ने वेश्या के धन से भंडारा करना आरम्भ किया तो संतगण भंडारा पाने लगे तो उनको रात में स्वप्नदोष होने लगा। वो गुसाईं जी को आकर पूछने लगे कि जो आपने भंडारा किया है, वह किसके अन्न से किया है ? तो गुसाईं जी ने कहा–''यह वेश्या के अन्न से भंडारा हुआ है।'' संतगण आकर ठाकुर जी को उलाहना देने लगे कि आपने वेश्या का धन क्यों लिया ? तो ठाकुर जी ने सिद्ध संतों को स्वप्न में कहा कि मुझे वेश्या का धन लेना पड़ा। वेश्या ने मुझे उलाहना दे–देकर परेशान कर दिया कि यदि आप मेरा धन नहीं लोगे तो मैं पाँच–सात दिन में तुम्हारे मन्दिर में आकर ही प्राण त्याग दूँगी। अतः मुझे वेश्या का धन लेना पड़ गया।

संत बोले–''आपने धन तो ले लिया, वह ठीक है परन्तु भंडारा करके हमारा धर्म क्यों बिगाड़ा। हमें तो शादी करने का रोग आक्रांत कर रहा है।''

भगवान् बोले कि मैं तो वेश्या का अन्न पचा सकता हूँ , आप नहीं पचा सकते। आपको तो ऐसे अन्न को सिर से लगाकर कणी मात्र लेकर सेवन करना उचित है। अब तुम सब तीन दिन का उपवास कर लो ताकि वेश्या के अन्न से तुम्हारे आमाशय खाली हो जायें। फिर तुमको कामवासना नहीं सतायेगी। तुमको तो मधुकरी का अन्न ही खाना उचित है। भंडारे में न जाना ही तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है क्योंकि भंडारे में अधिकतर अन्न दूषित ही आता है। वह आपके लिये नुकसानकारक है। मधुकरी भी नित्य एक घर से भी नहीं माँगना चाहिये। नित्य नये–नये घर में जाकर भिक्षा करना उचित है। एक ही घर में जाने से तुम्हें माया पकड़ लेगी। जाओ भी ऐसे समय में जब घरवाले सब खा चुकें क्योंकि कम भोजन होने से कोई न कोई घरवाला भूखा रह जायेगा। इससे वह मधुकरी

अमृत से वंचित रह जायेगी। मधुकरी सेवन अमृत सेवन ही होती है जिससे भजन में मन लगता है, नहीं तो मन में उच्चाट हो जाता है।

अब तो भविष्य में संतों ने भगवान् की शिक्षा ग्रहण कर, मधुकरी से अपना जीवनयापन करना आरम्भ कर दिया तो भजन में मन लगने लग गया। ठाकुर जी ने जब से भंडारे में जाने से मना किया तब से भंडारे में जाना संतों ने बंद कर दिया।

देखो ! कलिकाल में अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं है, केवल हरिनाम पर ही आश्रित रहना उचित है। जितने भी हमारे पिछले गुरुवर्ग हुए हैं, सभी रात–दिन हरिनाम किया करते थे, उनके अनुगत में रहकर ही अपना जीवनयापन करना श्रेयस्कर है।

केवल नामापराध से बचकर रहना परमावश्यक है। नामापराध होने से भजन में गहरा ह्रास हो जाता है। नामापराध स्वयं करने से तथा अन्य से सुनने से भी हो जाता है। मन में सोचने पर भी नामापराध बन जाता है। भगवान् को सब कुछ सहन हो जाता है लेकिन नामापराध सहन नहीं होता। यद्यपि वह ब्रह्मा, शंकर ही क्यों न हो उसको भी दंड का भागी होना पड़ेगा।

जिसने आज ही गुरुदेव से हरिनाम लिया है उसका भी साधक से अपराध बन जाता है क्योंकि श्रीगुरुदेव जी ने नये साधक का हाथ ठाकुर जी के हाथ में सौंप दिया है अतः वह साधक अब ठाकुर जी का हो गया। माया के चंगुल से वह साधक छूट गया है। ब्रह्मा का जन्म समाप्त हो गया और उस जीव का, जिस दिन हरिनाम श्रीगुरुदेव जी से हुआ, उसी दिन से उसका नया जन्म होता है। ऐसा धर्मशास्त्र का वचन है।

एक आश्चर्यजनक घटना है। ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें। किसी गाँव में एक बूढ़ा व्यक्ति था। उसके पाँच पुत्र थे तथा पाँच बहुयें थीं। बूढ़े की पत्नि का स्वर्गवास हो गया था। अतः वह बूढ़ा घर में बहुत परेशान रहता था। उस बूढ़े को पुत्र तथा पुत्रों की

बहुयें झिड़कती रहती थीं। कहती थीं–''बूढ़े ! तुझे शर्म नहीं आती। चाहे जहाँ, थूक देता है, मूत देता है। खैं–खैं करता रहता है। हमें सोने भी नहीं देता। तू मर जावे तो इस घर का सुखी दिन आ जावे। कई बार बोलने पर तो उसे बासी खाद्य पदार्थ खाने को दे देती तो कभी भूखा ही सो जाता। पानी के लिये बोले तो झिड़क दे कि तू मरता भी नहीं, हमें परेशान करता रहता है। तू यहाँ से निकल जा। हमें मुँह मत दिखा। पहनने का कपड़ा भी फटा–पुराना समाज के भय की वजह से देना पड़ता।

अब बूढ़ा बहुत परेशान होकर रात में ही घर से निकल गया और एक साधु के आश्रम में पहुँच गया । सब परेशानी घर वालों की साधु से बताई तो साधु बोला कि घरवाले तेरे अनुकूल नहीं होने का कारण इनके पूर्व जन्म के संस्कार हैं और तेरा भी पूर्व जन्म का संस्कार है। यह दर्पण ले जा। इस दर्पण से, पूर्व जन्म में कौन किस योनि में था, मालूम हो जाता है। अतः तू एक बार फिर तेरे घर पर जाकर देख कि तेरा परिवार पिछले जन्म में किस योनि में था और तू किस योनि में था। उसने वहीं पर, साधु से दर्पण लेकर अपने को देखा तो क्या देखता है कि वह पिछले जन्म में हिरण था। तो साधु बोला, ''तेरे परिवार को देखना, वे पिछले जन्म में कुत्ते होंगे। वे आपस में लड़ते होंगे।''

बूढ़े ने कहा–''हाँ महात्मा जी ! वे रात–दिन आपस में लड़ते ही रहते हैं।''

तो तेरा उनसे मेल कैसे खा सकता है ? हिरण के पीछे कुत्ते तो स्वाभाविक ही भौंकते रहते हैं। अतः तेरी उनसे कभी नहीं बन सकती। तू एक बार घर पर जाकर इस दर्पण से जाँच करके मेरे पास आजा। बूढ़ा घर पर गया तो सब मिलकर उस बूढ़े को पीटने को तैयार हो गये तो उसने दूर से दर्पण में देखा तो सारा परिवार ही कुत्ते–कुत्तियाँ ही नज़र आये। अब तो वह वहाँ से अपनी जान बचाकर साधु के पास आया और आकर सारा हाल बता दिया।

साधु ने कहा कि अब तू कहीं भी जा सकता है क्योंकि मैं तो किसी को अपने पास रखता नहीं हूँ। बूढ़ा भूखा–प्यासा किसी गाँव में जा रहा था तो एक घर पर जाकर पानी पीने को माँगा तो दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। बुढ़िया बोली–''बाबा तुझे क्या चाहिये ? बूढ़ा बोला–''मैं प्यासा हूँ, थोड़ा पानी पिला सकती हो ?''

''हाँ, क्यों नहीं ? पानी पीलो तथा कुछ खा भी लो।''

बुढ़िया का परिवार भी बड़ा था। बेटे, पोते, बेटों की बहुएँ और बूढ़ी का पति भी मौजूद था। इतने में बूढ़ी का पति बाहर आया और बूढ़े से पूछने लगा–

''तू कहाँ का है ? कहाँ जा रहा है ?''

बूढ़े ने अपनी बीती स्वयं बता दी कि मैं तो परिवार से बहुत परेशान हूँ। बूढ़ी का पति बोला–''भैया तुम हमारे घर पर रहो। कुछ करना नहीं, मौज से खावो पीवो और हमें अच्छी–अच्छी शिक्षा दो क्योंकि तुमने संसार को देखा है। हम भी आपकी शिक्षा लेकर खुश रहेंगे।''

बाबा तो चाहता ही था कि कहीं आसरा मिल जाये तो अपना आगे का जीवन खुशी से बसर कर सकूँ अतः हाँ कर दी कि मैं आपके घर में रह जाऊँगा। आपकी बड़ी कृपा होगी। बूढ़ी व बूढ़ी का पति बोला–''आप खुशी से रहो।''

अब बाबा ने सोचा कि साधु ने दर्पण दिया है, देखूँ तो सही, इस परिवार वाले पिछले जन्म में किस योनि में थे। तो बाबा क्या देखता है कि पूरा परिवार ही हिरण हिरणी की योनि में थे। अतः बाबा ने सोचा कि मैं भी पिछले जन्म में हिरण ही था इसलिये मेरा इनका मेल हो गया।

यही है संसार में माया का खेल। आपस में परिवार में क्यों नहीं बनती ? न जाने किस–किस योनि से आपस में जीव इकट्ठे हो जाते हैं तो एक जाति न होने से आपस में बनने का सवाल ही नहीं उठता। इसलिये संसार दुःखालय कहलाता है। पशु–पक्षियों

का भी स्वभाव एक सा नहीं होता। कोई शरीफ होता है तो कोई बदमाश होता है। ऐसा हम देखते ही हैं। पिछले जन्मों के स्वभाव बदलते नहीं हैं। स्वभाव केवल भगवत्–नाम के सत्संग से ही बदल सकता है, इसका अन्य कोई साधन नहीं है।

"जब तक माया के ये तीन गुण–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण पिछले संस्कारवश मौजूद रहेंगे तब तक सूक्ष्म शरीर जो इन्द्रियों का पुँज है, मौजूद रहेगा। यही कर्मानुसार अगला जन्म करवाता रहेगा। जब हरिनाम स्मरण करते–करते यह समाप्त हो जायेगा तब निर्गुणवृत्ति अन्तःकरण में जाग्रत हो जायेगी तथा सूक्ष्म शरीर की जगह दिव्य शरीर भक्त में पदार्पण हो जायेगा। जब दिव्य शरीर भक्त में पदार्पण हो जायेगा तो इसके संग में प्रेमावस्था तथा विरहावस्था अन्तःकरण के भाव में प्रगट हो जायेगी। यही है क्रम भगवत् प्राप्ति का तथा आवागमन हटने का। आवागमन ही जघन्य दुःख का कारण बनता है।

लेकिन यह क्रम फलीभूत सच्चे साधु के संग से ही होगा। साधु संग के अभाव में उक्त क्रम होगा ही नहीं तथा साधु की सेवा इसमें सम्मिलित है। साधु की सेवा से ही साधु की प्रसन्नता प्राप्त कर, साधक पर कृपा होगी। सेवा के अभाव में, साधु के संग से भी कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है।

माया का प्रभाव ब्रह्मलोक तथा शिव लोक तक भी है जब ही तो ब्रह्मा श्रीकृष्ण के बछड़े तथा ग्वाल बाल चुराकर ले गया तथा अपनी पुत्री के पीछे दौड़ पड़ा। इसी प्रकार शिवजी भी मोहिनी के पीछे दौड़ पड़े थे। यदि ब्रह्मलोक तथा शिवलोक में माया नहीं होती तो यह अवगुण वहाँ कैसे आ सकते थे ? माया केवल वैकुण्ठलोक तथा गोलोक में नहीं है। वहाँ भगवान् का ही आधिपत्य है, वहाँ सुख ही सुख है। वहाँ साधक जाकर संसार में वापस नहीं आता।

संबंध–ज्ञान की वजह से, जिसको संबंध–ज्ञान नहीं मिला, उसे वैकुण्ठ से वापस आना पड़ जाता है। उसको किसी उच्च स्थिति वाले भक्त के घर में भगवान् जन्म देते हैं। वहाँ वह आरम्भ

से ही अर्थात् बचपन से ही, मन से भजन करके संबंध–ज्ञान उपलब्ध कर लेता है तब उसे भगवान् गोलोकधाम की प्राप्ति करवा देते हैं।

वहाँ से साधक वापस नहीं आता है। आता भी जब ही है जब भगवान् स्वयं धरातल पर अवतरित होते हैं। उनके संग लीलावर्धन करने हेतु संबंध–ज्ञान वाला साधक धरातल पर अवतरित होता है और साधारण साधक इन लीलाओं का स्मरण कर भक्ति में उन्नत होता रहता है। कलियुग में हरिनाम स्मरण के अलावा दूसरा कोई साधन है ही नहीं। इस साधन से ही साधक गोलोकधाम तक पहुँच जाता है। ऐसा मेरे गुरुदेव जी का कहना है। अतः सभी प्रेमास्पद भक्तगण, कृपा कर हरिनाम की ही शरणागति उपलब्ध करें। अनन्तकोटि ब्रह्मांड हैं । प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा हैं, शिव हैं। वैकुण्ठ तथा गोलोक भी भिन्न–भिन्न हैं, अनंत हैं। इनकी गणना कोई नहीं कर सकता।

– हरि बोल –

श्री रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपालभट्ट, दासरघुनाथ।।
एई छः गोसाईं करौं चरणवन्दन, जाहा हइते विघ्न नाश, अभीष्ट पूरण।।

14

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
23.09.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

प्रेममय विरह किस साधक को होता है ?

जो अपना संपूर्ण कर्म भगवान् के निमित्त ही करता है, जिसकी संसारी आसक्ति मूल सहित समाप्त हो चुकी है, जिसको भगवान् ने गीता में निष्कर्म बोला है।

जिसको कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में भगवत् अनुभव होता रहता है तथा जो दया की मूर्ति होता है। जो प्रत्येक प्राणी के हित में ही अपना जीवनयापन करता रहता है क्योंकि वह समझता है कि भगवान् ने प्रत्येक चर–अचर प्राणी को आत्मा के वास करने हेतु शरीर रूपी मकान बनाकर दिया है। जो केवलमात्र किराये का है क्योंकि सदैव इस मकान में कोई भी चर–अचर प्राणी कब्जा कर ही नहीं सकता। भिन्न–भिन्न समय हेतु उसके कर्मानुसार सौंपा है इसके बाद इसको अर्थात् जीव आत्मा को इसमें से निकलना ही पड़ेगा तथा अपने स्वभावानुसार दूसरे मकान में कर्मानुसार रहना ही पड़ेगा।

यह मकान जीव आत्मा का जब ही छूट पायेगा जब माया का प्रकोप जो सत–रज और तम गुण का है, जो प्रत्येक जीवमात्र तथा चर–अचर के कर्मानुसार सौंपा गया है, वह कर्म जब भगवान् के प्रति बदल जायेगा तब ही इससे छुट्टी मिलेगी। तब ही तीनों गुणों की शक्ति नष्ट हो पायेगी तथा निर्गुण शक्ति उपलब्ध हो जायेगी।

जब साधक अपने लिये कोई कर्म नहीं करेगा केवल भगवान् का काम समझ कर करता रहेगा तो उसके फल में आसक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जो अपना कर्म समझता ही नहीं है, भगवान् का ही समझता है तो कर्म उसको कैसे बांधेगा ? जो कर्म भगवान् के लिये होता है तो उस कर्म में उसे पाप कैसे लग सकता है ? यह प्रत्यक्ष उदाहरण सभी भक्तगण देखते ही हैं कि हनुमान जी ने पूरी लंका जला कर राख कर दी। जिस आग में अनंतकोटि जीव–जन्तु जल कर भस्म हो गये तो क्या हनुमान जी को पाप छुआ ? पाप कैसे छूता क्योंकि हनुमान जी ने अपने स्वार्थ हेतु जलाने का कर्म थोड़े ही किया ! यह कर्म तो श्रीराम के लिये किया है अतः पाप लगेगा तो श्रीराम को लगेगा। हनुमान जी को क्यों लगेगा ?

इसीलिये सभी भक्तगणों को मेरे गुरुदेव जी बोल रहे हैं कि प्रातः जागते ही भगवान् से यही प्रार्थना करनी है कि जो भी आज मेरे से बने वह कर्म आपके निमित ही हो। अब तो साधक बिल्कुल निश्चिंत हो गया। स्वतंत्र हो गया। परतंत्रता का तो सवाल ही नहीं है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म करने का अर्जुन को आदेश दिया है ताकि अर्जुन कर्म में बंधे नहीं वरना दुःख को मोल ले लेगा। यदि कर्म करने पर असफल हो गये तो दुःख तो होना अवश्यम्भावी है ही। जब कर्म भगवान् के लिये होगा तो असफलता भी हो, तो दुःख क्यों होगा ? नुकसान हुआ तो भगवान् का हुआ।

जैसे सेठ का मुनीम सेठ की मुनीमाई करता है लेकिन व्यापार में नुकसान हो गया तो क्या मुनीम को दुःख होगा ? दुःख होगा तो सेठ को होगा। मुनीम तो दुःख से अछूता ही रहेगा।

एक बात बड़ी गौर से समझने की है कि साधक, शास्त्र जो कर्म करने को बता रहा है उसी कर्म को भगवान् के निमित्त करे। जो शास्त्र के विरुद्ध कर्म है वह भगवान् के निमित्त न करे। जिस प्रकार शराब का ठेका भगवान् के निमित्त खोले तो यह कर्म शास्त्र के विरुद्ध है। ऐसा करके भगवान् को बेवकूफ नहीं बनावे।

एक आकर्षक मनमोहक वार्ता है, सुनने की कृपा करें। किसी गाँव में एक संत आश्रम था। उसमें श्रीगुरुदेव के 5–10 शिष्य भी थे इनमें एक शिष्य तो ऐसा था कि कभी स्नान करता, कभी नहीं करता। एकांत में पड़ा रहता, किसी से बातचीत भी नहीं करता, उसे सभी शिष्यगण तथा गुरुदेव निठल्ला तथा बेकार स्वभाव का शिष्य बताते थे।

एक दिन गुरुदेव ने उसे बुलाकर कहा कि हम सब तीर्थ यात्रा करके आते हैं हमें लगभग एक माह लग जायेगा तू ठाकुर जी की सेवा कर लेना।

शिष्य ने कहा–''क्या–क्या सेवा करनी है, बता दो।''

गुरुदेव ने कहा,–''प्रातः उठकर स्नान करना, संध्या वन्दन करना, फिर रोटी बनाकर भगवान् को भोजन कराना, पानी पिलाना तथा दोपहर में सुला देना। इसीप्रकार शाम को भी भोजन कराना है।''

शिष्य बोला–''शाम को भी मुझे नहाना होगा क्या ?

गुरुदेव बोले–''स्नान तो करके ही भोजन बनाना होगा। भगवान् तो बड़ी शुद्धि से तैयार करने पर ही भोजन करते हैं।''

शिष्य ने मन में सोचा कि हाँ, कई बार पेशाब करना ही पड़ता है अतः नहाना जरूरी है।

शिष्य बोला–''भगवान् कितना खाते है ? मुझे बता दो।''

गुरुदेव बोले–''जितना तुम खिलाओगे, उतना ही खा लेंगे।''

शिष्य बोला–''ठीक है, मैं भगवान् की पूरी सेवा कर लूँगा। आप जा सकते हो।''

आश्रम से सभी चले गये। अब तो शिष्य को चिंता हो गई कि सुबह–सुबह जल्दी नहा लूँगा भगवान् को जल्दी ही भूख लग जाती होगी। भोजन बनाने में भी समय लगेगा तो भगवान् चिल्लाना शुरु कर देंगे। शिष्य भोला–भाला तथा सरल हृदय का था। अतः भगवान् के लिये चिंता हो गई कि देर न हो जावे।

दूसरे दिन जल्दी स्नान कर संध्यावंदन कर भोजन बनाना शुरु कर दिया तो उसे दस बज गये तो भगवान् के लिये दो रोटी तथा अपने लिये भी दो रोटी बनाई और देर होने की वजह से सब्जी बनाई नहीं। अतः दही व रोटी रख दी। आश्रम में गाय रहती थी उसके दूध का दही जमा हुआ था। भगवान् के लिये भोजन रखा। पर्दा करके पास में बैठ गया और विचार करने लगा भगवान् तो धीरे–धीरे खाते होंगे, अतः आधा घंटा तो इंतजार करूँ। जल्दी पर्दा खोलने से भगवान् भूखा रह जायेगा। जब आधे घंटे में पर्दा खोला तो देखा कि भगवान् ने न रोटी खाई, न दही। वैसे की वैसे भोजन रखा है। तब बोला–" गुरुजी के सामने तो भोजन कर लेते थे। मेरे से भोजन नहीं करते हो। शायद मैं अच्छी तरह नहाया नहीं। अब रगड़–रगड़ कर नहाऊँगा।" तब खूब अच्छी तरह से स्नान किया। पहले उसने सब्जी भी नहीं बनाई थी। एक दही से भगवान् कैसे खावें ? उसने सोचा कि मैं भी भूखा मर रहा हूँ। भगवान् भी भूखे मर रहे हैं। एक माह तक नहीं खावेंगे तो ये भी मर जावेंगे और मैं भी मर जाऊँगा। इसलिये जल्दी–जल्दी सब्जी बनाई, चार रोटी बनाई, घी रखा और बोला–" भगवान् अबकी बार मैं रगड़–रगड़ कर खूब नहाया हूँ तथा अबकी बार सब्जी भी रख दी है अतः आप चार रोटी ही खा लेना। कल से भूखे हो। मैं तो पड़ोस से लेकर दो रोटी खा लूँगा या और बनाकर खा लूँगा।"

द्वार पर पर्दा कर दिया और आधे घंटे इंतजार में बैठा रहा। जब पर्दा खोला तो देखा भगवान् ने कुछ नहीं खाया। तब बोला–"क्या बात है, क्यों नहीं खाते ? मैं भी भूखा मर रहा हूँ और तुम भी भूखे मर रहे हो ! कोई कमी हो तो बता दो वरना अभी डंडे से तुम्हारी खबर लूँगा।" फिर पर्दा लगा दिया और आधे घंटे तक इंतजार करने लगा तो अंदर खाने की चुपचुप आवाज़ आने लगी तो मन में सोचा कि अब की बार तो भगवान् मेरे डर की वजह से खा रहे हैं। बातों से कोई नहीं मानता। डर से तो भूत भी काँपता है। जब पर्दा खोल कर देखा तो पूरा भोजन भगवान् चट कर गये

थे। तो बोला–''इस प्रकार से दोनों समय राजी–राजी खा लिया करो वरना डंडे से खबर लेनी पड़ेगी।'' अब तो भगवान् दोनों समय नित्य ही खा लिया करते। यह है अटूट श्रद्धा विश्वास की बात!

एक महीने बाद जब गुरुदेव व दूसरे शिष्य आश्रम पर आये तो श्रीगुरुदेव जी ने पूछा कि भगवान् की सेवा ठीक तरह से की है।

''हाँ, ठीक तरह से की है। दो दिन तक तो भगवान् ने नखरे किये, खाया नहीं। तीसरे दिन जब डंडा दिखाया तो डर की वजह से दोनों समय ही खाना शुरु कर दिया।''

गुरु बोला–''तूने भगवान् को भूखा रखा है, झूठ बोलता है। मेरे सामने 5–5 दिनों तक नहाता नहीं था। मुझे विश्वास नहीं है कि भगवान् को तूने खिलाया होगा। ठीक है अब खिला के बताओ।''

शिष्य बोला–''आपके सामने खिला कर दिखाता हूँ।''

गुरुदेव के सामने भोजन रखा और पर्दा करके आधा घंटा बैठ गया और बोला भोजन करो, मेरे गुरुदेव देखना चाहते हैं। यदि नखरे किये तो डंडे से खबर लूँगा।''

अब तो भगवान् ने भोजन कर लिया और गुरु अपने शिष्य के चरणों में पड़ गया कि आज तक 70 साल में, मैं नहीं खिला सका और शिष्य ने खिला दिया । वास्तव में तो यह मेरा गुरु है। मैं ही इसका शिष्य हूँ।''

इसमें था भोलापन, पूर्णविश्वास, साक्षात् भगवत् भाव व दर्शन, मन की निर्मलता, कपटहीनता। तब भगवान् भक्त के बन जाते हैं। यही है शुद्ध भक्ति।

अनंतकोटि ब्रह्मांड हैं। प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मनु आदि अपने–अपने कार्य में नियुक्त हैं। लेकिन भगवान् केवलमात्र एक ही है। ऐसा कोई ब्रह्मांड नहीं है जहाँ कण–कण में तथा प्रत्येक प्राणी में भगवान् न हो। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ भगवान्

न हो। ऐसी वृत्ति जिस साधक की होती है उसे भगवान् हर क्षण मिला हुआ है वह किसी को दुःख–कष्ट नहीं देगा। ईर्ष्या, द्वेष नहीं करेगा। हर क्षण अहिंसा वृत्ति से रहेगा। दया की मूर्ति होगा। सभी दैवी गुणों का खज़ाना होगा। उसका संग जो भी साधक करेगा उसका दुःखालय संसार से उद्धार होना निश्चित है। भगवान् इससे एक क्षण दूर नहीं रह सकते। भगवान् उसका खरीदा हुआ गुलाम है जैसा कि श्री भागवत पुराण घोषणा कर रहा है। जैसा भक्त चाहता है, वैसा भगवान् को उसका आदेश मानना पड़ता है। लेकिन शास्त्र का वचन है कि इस संसार की आबादी को देखते हुये, अरबों–खरबों में से कोई एक ही भगवान् का प्यारा भक्त होता है और सभी नकली भक्त होते हैं। कपट से भजन करते हैं। भगवान् को कोई नहीं चाहता। सभी वर्तमान की सुख–सुविधा चाहते हैं। सत–रज और तम गुणों के तहत सूक्ष्म शरीर मौजूद रहता है।

पिछले अनंतकोटि जन्मों के स्वभावानुसार प्रेरित होकर जीव शुभ–अशुभ कर्म में लिप्त रहता है। यह स्वभाव किसी सच्चे संत से ही बदल सकता है। तब ही तो सत्संग को सबसे अधिक महत्वशील बताया गया है। साधु के द्वारा संसार की नश्वरता तथा भक्ति की सुख–सुविधा सुनकर उसका स्वभाव धीरे–धीरे बदलता हुआ चला जाता है तथा एक दिन उसे संसार से वैराग्य उदय हो जाता है।

इस कलिकाल में केवलमात्र हरिनाम ही एक ऐसा सरल सुगम साधन है जो भगवान् को प्राप्त करा सकता है। श्रीगुरुदेव की भविष्यवाणी है कि एक दिन ऐसा आवेगा जब मठ मन्दिर सरकार के हाथ में चले जावेंगे। वहाँ तनख्वाह पर पुजारी रखे जायेंगे तब श्रद्धावानों का जो मन्दिर में पैसा आवेगा, वह सरकार के खज़ाने में जमा होगा। ऐसा भी जमाना आवेगा जो कि यदि कोई भक्त भजन करेगा वह दंड का भागी होगा। कलियुग में ही क्या? यह तो सतयुग में, त्रेतायुग में तथा द्वापर युग में भी भक्तों को दुःख दिया गया है।

रामजी के जमाने में जब त्रेतायुग था, तब राम जी ने देखा कि संतों की हड्डियों के ढेर से पहाड़ जैसा बना हुआ है। तब रामजी ने किसी महान् पुरुष से पूछा कि यह हड्डियों का ढेर किसका है? तब उसने बोला कि राक्षसों ने संतों को मारकर हड्डियों का ढेर बना दिया है। तब राम ने प्रण किया कि भविष्य में मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा। इसी प्रकार हिरण्यकश्यपु ने भक्तों को सताया है। भक्तों को रहने की जगह नहीं मिली, बेचारों ने पहाड़ों में जाकर अपना जीवन बिताया। द्वापर में श्रीकृष्ण के ज़माने में कंस ने भी भक्तों को बेहद सताया है।

वर्तमान में कलियुग तो चांडाल का रूप ही है। अब भविष्य में जो कुछ होने वाला है उसका वर्णन करना अकथनीय है। जो हरिनाम की शरण में रहेगा, वही बच पायेगा। उसका तो बाल भी बांका होने वाला नहीं है। अतः कम से कम एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है। श्रीगौरहरि की कृपा उस पर अटूट रहेगी। ऐसे भक्त को जो सतायेगा, वह मारा जायेगा।

यह समय अभी दूर है। अब कलियुग केवल पाँच–छः हज़ार वर्ष का ही आया है। इसकी अवधि चार लाख बत्तीस हज़ार वर्ष की है लेकिन अभी से, न होने वाले बुरे काम हो रहे हैं। आगे जो होगा, वह कैसा होगा, अकथनीय है !

जब गहरा कलि महाराज, जो कुस्वभाव का है, आयेगा तो देखना गायों का दर्शन होना असंभव हो जायेगा। घी का दर्शन नहीं होगा। बंदरों का नाम निशान चला जायेगा। गिद्धों, चीलों, जंगली सूअर, बारहसींगा, हिरण, खरगोश, चीता, बाघ आदि की पीढ़ी (जनरेशन) ही समाप्त हो जायेगी। जंगल उजाड़ में बदल जायेंगे। पेड़–पौधों का नामो निशान नहीं रहेगा। लंगूर समाप्त हो जायेंगे। बार–बार अकाल पड़ेगा। पानी के लिये मानव, पशु–पक्षी तरसेंगे। गर्मी इतनी भयानक पड़ेगी कि हर प्राणी झुलस कर प्राण त्याग देगा। सर्दी का इतना प्रकोप होगा कि जहाँ बर्फ नहीं पड़ती, वहां बेशुमार बर्फ गिरेगी। उससे भी जीव मारे जायेंगे। सूर्य व

चंद्रमा में बार–बार ग्रहण होंगे तथा इनके चारों तरफ मंडल पड़ेंगे। ज़हरीली बरसात होगी तथा पेड़–पौधे जल जायेंगे। बार–बार भूकम्प होंगे। जहाँ कभी नहीं हुये थे, वहाँ पर भूकम्प से धरातल में उथल–पुथल होता रहेगा। कहीं पर सुनामी का प्रकोप होगा जिससे बड़े–बड़े शहर डूब जायेंगे। जमा धन का नाश हो जायेगा। कोई भगवान् को मानेगा ही नहीं। सभी प्रकृति को मानकर चलेंगे। भजन करने वालों को निठल्ला समझेंगे। ऐसे–ऐसे अविष्कार हो जायेंगे कि जिनसे भगवान् का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

यह सब करिश्मा करेगा भगवान् ही क्योंकि जैसा काल होगा, वैसा हाल होगा। इसमें किसी का दोष नहीं। यह महाकाल का ही तमाशा है। अतः अभी से प्रेम से हरिनाम करो ताकि आगे आपदाकाल में जन्म न हो। वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जावे। वरना यह दुःख–कष्ट देखना व सहना पड़ेगा।

– हरिबोल –

15

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
28.09.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का आपके चरण युगल में दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि उत्तरोत्तर जाग्रत होने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

विरक्त महापुरुष–वैष्णवजन का संग ही सर्वोत्तम है

भगवत् माया की शक्ति विशेषकर रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण है। इन्हीं के द्वारा मानव का अगला जन्म होता है। पूरी जिन्दगी भर मानव कर्म में आसक्त रहता है। इस कर्म से ही जब अंतिम समय में मौत आती है तो पूरी जिन्दगी में, जो कर्म किया है उसी कर्म की याद आने से अगला जन्म, किसी भी चर–अचर प्राणी की योनि में लेगा।

मानव का जैसा संग होता है वैसा ही रंग होगा अर्थात् इसके अनुसार ही उसके जीवन का स्वभाव बनेगा। अशुभ संग रहेगा तो बुरी आदतें बन जायेंगी और शुभ संग रहेगा तो अच्छी आदतें बन जायेंगी। जैसा बीज डालोगे, वैसा ही जन्म होगा। बीज दूषित डाला तो अच्छा जन्म होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह गुरुदेव जी की अमृतवाणी नवयुवकों के लिये अमृत समान है और जिनके संतान हो चुकी है उनके काम की यह है नहीं। अब पछताये क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत।

इसी कारण सत्संग को सबसे अच्छा माना गया है। आजकल कलियुग का समय चल रहा है। प्रत्येक ओर कुसंग ही उपलब्ध हो रहा है। खाना–पीना, पहरावा, कोऐजुकेशन, दूषित उपन्यास, ब्लू फिल्म, दूषित चित्र, दूषित गान, दूषित हवा। कितना बताया जाये, कोई सीमा नहीं तो दूषित आबादी होना स्वाभाविक है ही।

जगह–जगह से शिकायत आती है हमारा बच्चा बिगड़ गया है। शराब पीता है, गुंडों के संग रहता है, गुटका खाता है, होटलों में जाकर मांस सेवन करता है, पढ़ने हेतु पैसा भी खूब खर्च कर रहे हैं, फिर भी पढ़ता नहीं है। घर पर भी कम ही रहता है। दोस्तों के संग न जाने कहां–कहां जाता है। सुना है गलत–गलत काम करता है। आप आशीर्वाद करें हमारा बच्चा ठीक हो जाये।

तो मुझे कहना पड़ जाता है कि इसमें बच्चे का कोई दोष नहीं है। यह तुम्हारा ही दोष है। तुमने शुभ संतान करने हेतु शादी थोड़े ही की है तुमने तो इन्द्रियां तर्पण हेतु शादी की है तो जैसा बीज डालोगे वैसा ही तो पौधा उत्पन्न होगा। इसमें बच्चे का क्या दोष है? इसमें पौधे का क्या दोष है ? यह तो पौधा लगाने वाले का दोष है। मैं गृहस्थी हूँ , मैं खुलकर बात कर सकता हूँ। संन्यासी वर्ग खुलकर बात नहीं कर सकते। भविष्य का जमाना ठीक न होने के लिये मुझे लिखना पड़ रहा है वरना मुझे क्या मतलब है। मेरा अपना समय खराब क्यों करूँ?

आत्मा, परमात्मा की जाति की है, सजातीय है। इसी प्रकार मेरे गुरुदेव के आदेश से लिखना पड़ता है क्योंकि श्रीगुरुदेव जी ने नवयुवकों को मेरी पुस्तक **"इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति" (भाग–दो)** में शिक्षा दी है कि भविष्य में जीवन ऐसे चलाना होगा। कोई भी जीव अपनी जाति में ही रह कर सुख अनुभव करता है। अतः सजातीय से ही उसकी बात बनती है क्योंकि स्वभाव इनका समान ही रहता है। जैसे गाय, गायों के झुंड में जाकर ही सम्मिलित होगी, भैंसों के झुंड में नहीं सम्मिलित होगी। क्योंकि भैंस गाय की विजातीय है। इसकी जाति इससे मेल नहीं खाती। इस प्रकार कबूतर भी कबूतरों के झुंड में जाकर बैठेगा क्योंकि यह उसकी सजातीय है। यह अपनी जाति में है। कौवों के झुंड में कबूतर सम्मिलित नहीं होगा क्योंकि कौवों की जाति विजातीय है अर्थात् अपनी जाति की नहीं है।

श्रीगुरुदेव जी सभी भक्तगणों को सावधान कर रहे हैं, सभी बड़े ध्यानपूर्वक सुनें तथा हृदय में इस बात को गहराई से बैठा लें कि सजातीय ही जीव को सुख प्रदान कर सकता है, विजातीय दुःख का कारण बनेगा।

जीवात्मा, परमात्मा का सजातीय संबंधी है। माया जीवात्मा की विजातीय है अर्थात् माया इसकी जाति की नहीं है अतः दुःख का कारण बनती है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि जब तक जीव आत्मा–परमात्मा से संबंध स्थापित नहीं करेगा, कभी भी सुखी नहीं रह सकता। संसार में इसी कारण दुःख ही दुःख है। संसार दुःखालय इसलिये कहलाता है कि जीव आत्मा, विजातीय माया से संबंध रखता है।

अमृत और ज़हर एक जगह कैसे रह सकते हैं? अँधेरा और उजाला एक जगह कैसे रह सकता है? सुख–दुःख एक जगह कैसे रह सकता है? इसी कारण माया और जीव आत्मा एक जगह कैसे रह सकता है? यदि एक जगह कोई भी रहेगा तो उत्पात होके ही रहेगा। यह सब मौलिक सिद्धांत हैं। भगवान् की रची हुई यह चौरासी लाख योनियाँ हैं, जिसमें मानव ही बुद्धिमान है। इसको तो अपने सुख का साधन करना ही चाहिये। लेकिन इसने विजातीय से नाता जोड़ रखा है अर्थात् माया को इसने अपना रखा है। तब बुद्धिमान मानव सुखी कैसे रह सकता है? यह तो पशु–पक्षी से भी गया बीता, अज्ञानी, बेशर्म, मूर्ख है। इसने तो भगवत् द्वारा बनाई मर्यादाओं को ही नष्ट कर दिया। अतः दुःख–सागर में गोते खा रहा है। समझाने से भी समझता नहीं है। यही तो इसका दुर्भाग्य है!

मृत्यु का कोई समय नहीं, वह कभी भी अचानक आ सकती है। तो यह मनुष्य जन्म बेकार ही चला गया। आगे अब मानव का जन्म होने वाला नहीं है क्योंकि इसने कोई शुभ कर्म किया ही नहीं है, सदैव अशुभ कर्म ही करता रहा है। इसका भोग तो चौरासी लाख योनियों में दुःख भोग कर करेगा ही इसके अलावा अट्ठाईस प्रकार के नरकों में, कई युगों तक भोग करता रहेगा। अरबों–खरबों

युग तक इसे मानव जन्म उपलब्ध होगा ही नहीं। तब भी यह समझता ही नहीं है कि भविष्य में मेरा क्या होने वाला है।

भगवत्–संबंध के बिना गोलोक धाम में कोई भी साधक जा नहीं सकता। एक लाख हरिनाम जपने वाले को वैकुण्ठधाम अवश्य उपलब्ध हो जायेगा। वहाँ से भगवत्–संबंध के लिये कई युगों के बाद इस धरातल पर किसी भक्त घर में जन्म लेना पड़ेगा। तब बचपन से ही माँ–बाप का भगवत्–सत्संग मिलता रहेगा तब इसे भगवान् का कोई भी नाता अर्थात् संबंध–पुत्र का, सखा का, भाई का, बाप का, मंजरी का मिलेगा तब इसे गोलोकधाम उपलब्ध हो जायेगा। वहाँ से फिर वह इस धरातल पर नहीं आवेगा। जब भगवान् का इस पृथ्वी पर अवतार होगा तब उनके संग में इसी धरातल पर वह भी जन्म ले लेगा और भगवत् लीलाओं में वह भी सम्मिलित हो जायेगा।

उक्त उपलब्धि केवल हरिनाम से ही उपलब्ध हो सकेगी। जब संसारी आसक्ति मूल सहित समाप्त हो जायेगी तब ही भगवत् के मिलन के लिये छटपट शुरु हो जायेगी। तब भगवान् ही जीव को अपना संबंध करवा देगें।

जिस प्रकार कन्या का पिता, कन्या का किसी पति से संबंध करवा देंगे तब ही कन्या ससुराल में, जो पति का निवास है, जाकर जीवन भर रह सकेगी। जब तक इसका नाता नहीं जुड़ेगा तब तक वह पीहर, जो पिता का निवास है, में अपना जीवन बसर करती रहेगी। यही दृष्टांत गोलोकधाम तथा वैकुण्ठधाम से मेल खाता है। इसी को साधकगण समझने की कोशिश करें।

इस प्रसंग का सारांश यही है कि साधकगण किसी सच्चे महापुरुष, सच्चे संत, जो आचरणशील हों, के सम्पर्क में रहें तो साधक का जीवन बहुत शीघ्र बदल कर शुभ मार्ग में आ सकता है क्योंकि संसार का वातावरण बहुत दूषित हो चुका है। सभी बेईमान हो चुके हैं। ईमानदारी की बेला (समय) तो जड़ सहित समाप्त हो

चुकी है। जो बात हृदय गम्य नहीं होती अर्थात् जो बात मन से मनन नहीं होती, वह स्थिर नहीं होती। जिस प्रकार पशु चारा एक साथ चर लेता है, बाद में बैठकर जुगाली करता है। इसी प्रकार साधक भक्ति की वार्ता ध्यान से सुने और फिर मन से इसका मनन करे तो वह भक्ति मन में अंकित हो जाती है। जैसे विद्यार्थी अपने मन में किसी विषय को ध्यान से पढ़ता है, फिर उसका मनन करता है तो परीक्षा में उतीर्ण हो जाता है। इस संसार में जिसका मन अपने काबू में है, वही खुशी के साम्राज्य में रह सकता है एवं जिसका मन अपने काबू में नहीं है, वह अकथनीय दुःख भोग करता है।

माँ–बाप को अपने बच्चे पर गहरी निगरानी रखनी चाहिये क्योंकि इस समय में दूषित वातावरण हर जगह फैला हुआ है। साथी भी सभी गन्दे विचारों के हैं, उसको भी गन्दा बना देंगे। अच्छा संग तो मिलता नहीं है। बच्चा कुछ समझता नहीं है अतः बुरे रंग में रंगता हुआ चला जाता है। जो माँ–बाप के लिये मुसीबत का वातावरण बना देता है।

हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है। श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्ण कान के छिद्रों के द्वारा अपने भक्तों के भावमय हृदय कमल पर जाकर बैठ जाते हैं और जैसे शरद ऋतु जल का गंदलापन मिटा देती है, वैसे ही वे भक्तों के मनोमल का नाश कर देते हैं।

प्रविष्टः कर्णरंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्।।

श्रीगुरुदेव जी ने प्रमुख साधन बताया कि प्रत्येक प्राणी में भगवान् का दर्शन करे। यही बात भागवत पुराण में तीसरे स्कंध में 24 वें अध्याय के 46 श्लोक में अंकित है। प्रजापति कर्दम संपूर्ण भूतों में अपने आत्मा श्री भगवान् को और संपूर्ण भूतों को आत्मस्वरूप श्रीहरि में स्थित देखने लगे। भूतों का मतलब है प्रत्येक जीव में। श्रीमद्भागवत के अनुसार विवेकीजन, संग या आसक्ति को ही

आत्मा का बंधन मानते हैं किन्तु वही संग या आसक्ति संत–महात्माओं के प्रति हो जाये तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है। भगवान् बोल रहे हैं जो मेरे लिये सारे कर्म करते रहते हैं, उनको कभी पाप लगता ही नहीं है। जैसे हनुमान जी ने राम के लिये लंका जला दी तो उनको पाप लगा ही नहीं।

भगवान् बोल रहे हैं कि जीव को बंधन व मोक्ष का कारण केवल मन ही है। विषयों में आसक्त होने पर बंधन और परमात्मा में तथा सन्तों में अनुरक्त होने पर मोक्ष का कारण बन जाता है।

भगवान् कपिल कह रहे हैं कि जीव की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वही मेरी अहैतुकी भक्ति है। संसार में सबसे बड़ा कल्याण इसी में है कि जीव अपना चित्त भक्तियोग द्वारा मुझ में लगाकर स्थिरता प्राप्त कर ले। यह हरिनाम स्मरण करने से ही होगा। मेरे नाम में असीम शक्ति है। जो भी श्रीगुरुदेव मुझ से प्रेरणा कर लिखाते हैं, वह सब शास्त्रीय ही होता है जो श्रीभागवत शास्त्र में लिखा मिलता है।

गीता के अनुसार काल की अवधि बताई गई है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में चारों युग जब हज़ार बार निकल जाते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे ही हज़ार चौकड़ी वाली रात्रि होती है। यह चर–अचर प्राणी, जिनको भूत समुदाय के नाम से बोला जाता है, ब्रह्मा के शरीर से दिन में प्रगट होते हैं और रात को ब्रह्मा के शरीर में ही समा जाते हैं। जब ब्रह्मा के सौ वर्ष समाप्त हो जाते हैं तब ब्रह्मा भी अपने लोक सहित काल में समा जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। लेकिन भगवान् का गोलोकधाम सदैव ही रहता है। यह कालातीत है अर्थात् काल इस पर आधिपत्य नहीं जमा सकता। अन्य सभी अनंतकोटि ब्रह्मांड, काल के आधिपत्य में हैं। यह काल सभी को खा जाता है। भगवान् के भक्त को काल नहीं खा सकता।

यह जगत् सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन तीनों गुणों से भरा पड़ा है। यही माया की शक्ति में आता है। जब साधक मन से

हरिनाम कान से सुनकर करता रहता है तो इन तीनों गुण, जो माया के प्रतीक हैं, मूल सहित नष्ट होकर निर्गुण की वृत्ति में उदय हो जाते हैं। तब यह सूक्ष्म देह समाप्त हो जाती है तथा दिव्य देह प्राप्त हो जाती है, जो परमानंद का स्रोत है। साधक का जन्म–मरण अर्थात् आवागमन सदा के लिये समाप्त हो जाता है। परमानंद को उपलब्ध कर दुःखों की मूल सहित समाप्ति हो जाती है। यह उपलब्धि साधु संग से ही हो सकती है। अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है। लेकिन भगवत् कृपा के अभाव से यह संग भी मिलता नहीं है। यह कृपा भी तब ही उपलब्ध होती है जब साधक जीव को किसी महापुरुष–सन्तजन की सेवा का अवसर उपलब्ध हो जावे तो भगवत् कृपा का स्रोत उस साधक जीव पर आ जावे। शास्त्र बोल रहा है–

पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मन, क्रम, वचन साधुपद पूजा।
सानुकूल तिन पे मुनि देवा। जो तजि कपट करे साधु सेवा।

भगवान् का मन साधु के अभाव में लगता नहीं है। अतः साधु को भगवान् तलाश करते रहते हैं। जो जीव साधु को दुःख देता है, उस पर भगवान् अत्यन्त नाराज़ हो जाते हैं। उसका अमंगल होके ही रहता है। इसे कोई प्राणी भी बचा नहीं सकता। उसे कष्ट भोग करना ही होता है।

गुण व अवगुण सभी ब्रह्मा जी से ही अवतीर्ण होते हैं। पूरी सृष्टि ही भगवान् ब्रह्मा से प्रगट होती है। कोई भी सृष्टि में ऐसा पदार्थ नहीं है जो भगवान् ब्रह्मा से नहीं उत्पन्न हुआ हो। ब्रह्मा का हज़ार चौकड़ी का दिन होता है जिससे यह सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। जब ब्रह्मा के सौ वर्ष समाप्त हो जाते हैं तब ब्रह्मा भी मृत्यु का ग्रास बन जाता है तो यह उत्पन्न की हुई सारी चर–अचर की पूरी सृष्टि भी ब्रह्मा के शरीर में ही विलीन हो जाती है। यही है भगवत् माया का जंजाल। भगवत् कृपा के अभाव में यह जंजाल समाप्त नहीं होता है। यह कृपा केवल जिह्वा से हरिनाम करने पर तथा कान से इसे सुनने पर ही हो सकता है अन्य दूसरा कोई

उपाय नहीं है। इस कलिकाल के युग में साधकगण इसपर पूर्ण श्रद्धा विश्वास करके अपना जीवनयापन करता रहे तो इसी जन्म में भगवत्–प्राप्ति बन जावे।

यह संसारी आसक्ति ही मन से हरिनाम नहीं होने देती। श्रीगुरुदेव जी ने जो तीन इंजैक्शन (बातें) साधकगण को कृपा कर दिये हैं, यदि साधकगण इनको अपनाते रहें तो बहुत शीघ्र ही मंगलविधान उपलब्ध कर लेवे वरना मंगल होना असंभव ही जान पड़ता है। यह अमूल्य मानव जन्म व्यर्थ में चला जायेगा। मृत्यु का भरोसा न कर, इस साधन में जुट जाना ही श्रेयस्कर होगा। समय निकल जाने पर पछतावा ही हाथ में आवेगा। मेरे श्रीगुरुदेव जी समझाते–समझाते थक गये, इतना समय निकल गया फिर भी लोग असमंजस में, संदेह में पड़े–पड़े अपना जीवन बर्बाद करते जा रहे हैं। सुलटी सोचते नहीं हैं, उल्टी ही उल्टी सोचते रहते हैं।

मैं सत्य–सत्य बोल रहा हूँ कि भगवान् को प्राप्त करने का यह सब प्रसंग श्रीगुरुदेव ही अंकित कराते रहते हैं। इसमें मेरा रति भर भी प्रयास नहीं है। इसके विपरीत सोचने वाले को घोर अपराध लगता रहेगा तथा हरिनाम मन से होने का तो सवाल ही नहीं है। श्रीगुरुदेव की वाणी में दोष निकालना बहुत बड़ी मूर्खता है, अज्ञान है। लेकिन महामाया सबपर छाई रहकर भगवान् की ओर आने नहीं देती।

शास्त्र बोल रहा है–

कृष्ण यदि छुटे भक्ते मुक्ति युक्ति दिया।
कभू प्रेम भक्ति ना देय राखे लुकाइया।।

प्रबल प्रेम के पाले पड़कर हरि का नियम बदलते देखा,
स्वयं का नियम भले टल जाये भक्त का नियम न टलते देखा।
काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता। निज व्रत कर्म भोग सबु भ्राता।।
तबहि होय सब संसय भंगा। जब बहु काम करिये सतसंगा।।

– हरिबोल –

16

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

पांचूडाला (छींड)
10.11.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारंबार, हाथ जोड़ कर प्रार्थना स्वीकार हो।

समस्त धर्मग्रंथों का निचोड़ तथा बीज अर्थात् सार का विवेचन

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने पिछले इतवारों में प्रातः 7 बजे से 8.30 बजे तक समस्त धर्मग्रंथों का सार तत्त्व मुझ से वर्णन करवाया था। उक्त सार कार्तिक मास में अष्टयाम कीर्तन में स्पष्ट रूप में वर्णित किया गया है। जो नीचे अंकित किया जा रहा है। केवलमात्र दो क्षण की प्रार्थना से ही भगवत्–प्राप्ति हो जाती है यदि कोई भी भक्त साधक इन तीनों प्रार्थनाओं को नित्य ही, बिना भूल से करता रहे, तो तीन माह की प्रार्थना से उक्त तीनों भाव हृदय में पक्के हो जायेंगे। दो–ढाई घड़ी में राजा खट्वांग को भगवत् प्राप्ति हुई है। श्रीगुरुदेव जी ने दो मिनट में भगवान् के चरण में पहुँचा दिया क्योंकि इन तीनों प्रार्थनाओं को करने में दो मिनट से अधिक समय नहीं लगता।

इन तीनों प्रार्थनाओं से कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। घर में ही भगवान् की उपलब्धि बन जा सकती है। दो मिनट की प्रार्थना से भगवान् मिल जाते हैं। कहीं तीर्थाटन करने की आवश्यकता नहीं। घर बैठे सत्संग की उपलब्धि हो जाती है। केवल नामापराध से बचना परमावश्यक है। सारे धर्मग्रंथ भी इन तीनों प्रार्थनाओं का उल्लेख ही करते हैं ताकि यह तीनों प्रार्थनाएं भक्त–साधक के हृदय में पूरी तरह से बैठ जावें, जम जावें। 3 माह में जम जायेंगी।

जब ये तीन भाव भक्त–साधक के हृदय में बैठ जावेंगे तो अंत समय में जब मौत आवेगी तो स्वयं भगवान् उस भक्त–साधक को लेने आवेंगे। वैसे साधारण भक्त को तीन पार्षद वैकुण्ठ धाम से लेने हेतु आते हैं।

प्रत्येक दिन एक लाख हरिनाम तो करना ही पड़ेगा। हरिनाम के अभाव में ये तीनों प्रार्थनाएँ जम नहीं सकती। हृदयगम्य हो नहीं सकतीं। भगवान् इस भक्त–साधक का वैकुण्ठधाम में भव्य स्वागत करवाते हैं। वैकुण्ठधाम एक ऐसा स्वच्छ स्थान है जिसका इस जड़ जिह्वा से वर्णन हो ही नहीं सकता। वहाँ दुःखों की तो हवा ही नहीं है। सुख ही सुख का साम्राज्य फैला हुआ है।

यदि श्रीगुरुदेव प्रदत्त माला मैया का सम्मान तथा आदर नहीं हुआ तो बना बनाया महल धराशायी हो जायेगा। श्रीगुरुदेव जी ने माला का रख रखाव पिछले इतवारों में मेरे से अंकित करवा दिया था। जो मैंने बोलकर सभी भक्तगणों को सावधान भी कर दिया था। प्रेम प्राप्ति का मूल स्रोत हमारी माला मैया ही है। श्रीगुरुदेव जी ने हमें अमोघ हथियार सौंपा है ताकि हम माया को परास्त कर सकें।

भगवान् के हम सब बच्चे ही तो हैं अतः भगवान् गुरु रूप में आकर हमें माया से रक्षा पालन हेतु माला मैया की गोद में सौंप देते हैं तो माला मैया हमें हरिनाम रूपी अमृत सुधा का दूध पिलाकर, विषय विष को Overlap करती रहती है अर्थात् विषयों के ज़हर को अपने अमृत सुधा के दूध में डुबोती रहती है। ज़हर को तन से बाहर निकालती रहती है। कुछ काल बाद में हमें अमृतमयी प्रेम की उपलब्धि हो जाती है तथा हमारा माया रूपी बंधन टूट जाता है और सदा के लिये परम पुरुषार्थ प्रेम, भगवान् से जुड़ जाता है। अनंत जन्मों से हम जिस दुःख की घाणी में पिल रहे थे, वह दुःख हमारे से सदा के लिये विदा हो गया। अष्टयाम कीर्तन में उक्त सभी वर्णन अंकित हैं।

साधक से नामापराध बन जाने पर हरिनाम ही इस अपराध को नष्ट कर देता है जैसा कि भजन गीति गारंटी दे रही है। एक लाख नित्य हरिनाम होते रहने से अपराध होने का अंदेशा रहता है। 64 माला से 4 माला अधिक होने पर ये 4 माला अपराध को खंडित करता रहता है। भजनगीति में स्पष्ट अंकित है।

अविश्रान्त नामे, नाम–अपराध जाय,
ताहे अपराध कभु स्थान नाहि पाय।।

"हर वक्त नाम जपते रहने से सारे नामापराध समाप्त हो जाते हैं क्योंकि निरंतर हरिनाम करते रहने से अपराध करने का अवसर ही नहीं मिलता।"

पानी पीते रहने से पेशाब तो आवेगा ही। इसी प्रकार स्वादिष्ट भोजन खाने से काम वेग आना भी बहुत जरूरी है ही। यही शरीर का धर्म है। इसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती। जब ही तो हमारे पिछले गुरुवर्ग पेट की ज्वाला को शांत करने हेतु यमुना रेत फांक लिया करते थे।

हरिनाम बिना कलिकाले, नाहि आर धर्म।
सर्वमंत्र सार नाम, एइ शास्त्र मर्म।।

दूसरे याम कीर्तन में अंकित है कि हरिनाम में शुद्धि–अशुद्धि का ध्यान नहीं रखना पड़ता।

खाइते–शुइते यथा–तथा नाम लय
देश–काल–नियम नाहिं, सर्वसिद्धि हय।

तीसरे याम कीर्तन में अंकित है–

उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण अधिष्ठान।।

यही चर्चा मेरे गुरुदेव जी ने की है कि जब संध्या वंदन करें तो भगवान् से प्रार्थना करें कि मैं हर जीव मात्र में तथा कण–कण में आपको ही देखूँ। आपको ही अनुभव करूँ, ऐसी भावना मेरी बना दीजिये। फिर सावधान किया है–

प्रतिष्ठाशा छाड़ि कर अमानी हृदय।
कृष्ण–अधिष्ठान सर्वजीवे जानि सदा।।
करबि सम्मान सबे आदरे सर्वदा
दैन्य दया, अन्ये मान प्रतिष्ठा–वर्जन।।

छठे याम कीर्तन में प्रार्थना की गई है कि मनुष्य जन्म पाकर भी यदि भगवान् से प्रेम नहीं हुआ तो सारा जीवन बेकार ही चला गया। नामापराध बनने से मेरा चित्त पत्थर जैसा हो गया। इस कारण अश्रु–पुलक आदि मेरे शरीर पर नहीं हो रहे हैं। तो यह सात्विक गुण कैसे हो सकते हैं? केवल हरिनाम अधिक होने पर ही हो सकते हैं। अतः पश्चाताप से दिल जल रहा है तो ज़ोर–ज़ोर से हरिनाम करके ही भगवत्–शरण में अपना तन–मन नियोजित कर लिया एवं भगवत् से प्रार्थना करने लगा कि कब मुझे अश्रुपात होगा? कब कंठ गदगद होगा? कब शरीर पुलकायमान होगा? कब शरीर का रंग बदरंग बनेगा? जब विरहाग्नि बड़े ज़ोर से प्रज्ज्वलित होगी तब ही उक्त विकार आ सकेंगे।

तब मुझे निमेष मात्र युग के समान महसूस होगा। यह जगत् मुझे सूना–सूना लगेगा। यह संसार मुझे अच्छा नहीं लगेगा। मैं कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे मेरे प्राणनाथ से मिलावे? यही दुःख मेरे कलेजे को खाता रहता है। मेरी सहनशक्ति समाप्त हो चुकी है। अब तो मेरे प्राण पखेरु इस शरीर रूपी वृक्ष से उड़ने वाले हैं। अब तो केवल मात्र सहारा हरिनाम का ही है। कभी प्राणनाथ दर्शन देकर मुझे तरसाते रहते हैं। दयानिधि होकर भी मुझ जैसे दीन–हीन पर दया नहीं करते। यही अवस्था मुझे सताती रहती है। मेरा कलेजा चिंता से चूर–चूर हो गया। कौन मुझे इस दुःख से छुड़ावे? सभी मार्ग बंद हो चुके। दिन जावे न रात, कब होगी प्रभात? जब सभी रास्ते बंद हो जाते हैं तो हरिनाम करने से ही कुछ शांति अन्तःकरण में महसूस होने लगती है लेकिन फिर वही दुःख, दुःखी करता रहता है। उस निर्दयी के नाम के अलावा, मुझे शांति देने वाला कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। वह मुझे मारे या जिवावे, मैं

तो उसका ही रहूँगा। वह मेरे प्राणनाथ हैं। वह मेरा बाप है मैं उनका जन्म–जन्म का पुत्र हूँ।

मैं रोऊँगा तो उनके लिये,

मैं सोऊँगा तो उनके लिये,

मैं खाऊँगा तो उनके लिये,

मैं गीत गाऊँगा तो उनके लिये,

वे ही मेरे सब कुछ हैं, दूसरा मेरा कोई नहीं है।
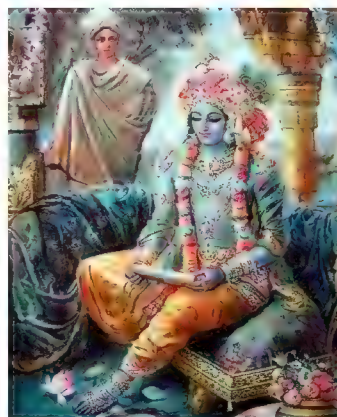
अब गीता के कथनानुसार भी श्रीगुरुदेव जी ने साधकों को बोला है कि ब्रह्ममुहूर्त में, जब भी नींद खुले तो बोलो–**"हे मेरे प्राणनाथ ! आज जो भी कर्म मेरे से बने, वह कर्म आपके निमित्त ही हो। जब मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना। यही कृपा मुझ पर आकर कर देना।"**

साधक, गुणों के कारण कर्म करने में बाध्य है। जैसा उसका स्वभाव होगा–सतोगुण, रजोगुण या तमोगुण का, वैसा ही बाध्य होकर कर्म करना पड़ेगा। अतः जब भगवत् कृपा साधक पर हो जायेगी तो उक्त गुण उसे बाध्य नहीं कर सकेंगे। अतः गुरुदेव ने साधकों को सतर्क किया है।

शास्त्र, समस्त कर्म भगवान् से ही प्रगट हुआ है अतः कर्म भगवान् के निमित्त ही करना उत्तम है। अतः साधक कर्म स्वयं के लिये न करने पर बंधेगा नहीं। इसका कर्म ही नरक में ले जाता है एवं कर्म ही वैकुण्ठ में ले जाता है। जब कर्म भगवान् के निमित्त होता रहता है तो पाप लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। जिस प्रकार हनुमान जी ने पूरी लंका को जला कर भस्म कर दिया जिसमें अनंतकोटि जीव स्वाहा हो गये तो हनुमान जी को पाप छुआ तक नहीं क्योंकि हनुमान जी का कर्म श्रीराम जी के निमित्त था।

भगवान् ने जीवमात्र के कर्मानुसार सभी को शरीर रूपी धर्मशाला दी है इन धर्मशालाओं में रहने हेतु समय निश्चित किया है। जब समय पूरा हो जाता है तो इस धर्मशाला से जीव को जाना पड़ता है। कब्जा नहीं कर सकता। श्रीगुरुदेव ने साधकगणों को सतर्क किया है कि किसी भी धर्मशाला को नष्ट करने का तुम्हें अधिकार नहीं है। मक्खी, मच्छर से लेकर हाथी तक सबको शरीर रूपी धर्मशाला समय गुजारने हेतु भगवान् ने इनके कर्मानुसार दी है। यदि साधक इन धर्मशालाओं को नष्ट करता है तो स्वयं को नई धर्मशालाओं में रहना पड़ेगा। यह शरीर रूपी धर्मशाला तो जड़ पदार्थ से बनाई गई है। इसमें आत्मा रूप में भगवान् वास करते हैं तो जो साधक इनका नुकसान करता है, वह नुकसान आत्मा रूपी भगवान् को ही होता है। धर्मशाला जड़ पदार्थ होने से इनको नुकसान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तब ही शास्त्र घोषणा करता है कि करोड़ों अरबों में कोई जीव ही मुझे उपलब्ध करता है। अन्यथा सभी माया की चक्की में पिसते रहते हैं।

रात में कौन जागता है एक तो चोर दूसरा तो भगवान् का प्यारा संत। जो रात में कमाई करते हैं वे भी चोर ही हैं क्योंकि रात तो केवल विश्राम के लिए ही है। दिन कर्म करने हेतु है अतः सभी चोर ही हैं जो रात में कमाई करते हैं ।

यह महत्वपूर्ण बात साधक को ध्यान देकर सुनने की है। श्रीगुरुदेव जी सबको सतर्क कर रहे हैं। यदि आपको भगवान् के धाम में जाना हो तो किसी भी जीव को सतावो नहीं। भले ही वह मच्छर ही क्यों न हो। जिसको आप सतावोगे वह सताना आत्मा रूपी परमात्मा को होगा क्योंकि शरीर तो पाँच तत्वों से बना जड़ शरीर है। जड़ शरीर को सताने से क्या कोई दुःख होगा। संसार में देख रहे हैं कि एक मानव दूसरे मानव से शत्रुवत् व्यवहार, द्वेष करता रहता है। वह मानव से नहीं करता, वह तो परमात्मा से शत्रुवत् व्यवहार कर रहा है तो उसे भगवत् धाम उपलब्ध होने का सवाल ही नहीं उठता। मानव दूसरे मानव से राग–द्वेष करता

रहता है। उदाहरण देकर समझाया जा रहा है। जैसे मेरे मकान में कोई खिड़की तोड़े तो क्या मकान को दर्द होगा ? मैं इसमें रहता हूँ अतः दर्द मुझे होगा। निष्कर्ष यह निकला कि किसी भी जीव को सतावो नहीं वरना भगवान् नहीं मिलेगा, संसार मिलेगा और दुःख सागर में गोते खाते रहोगे। माया की असहाय चक्की में पिसते रहोगे। अतः अभी से सावधान हो जावो। बाद में यह मानव जन्म नहीं उपलब्ध हो सकेगा। अरबों–खरबों युग बीत जायेंगे, तो संभव है, मिल जाये।

श्रीगुरु महाराज समझाते–समझाते हार गये। परंतु अभी भी समझ नहीं आई। ये सभी गूढ़ बातें अन्य ठौर में नहीं मिलेंगी जो साधारण सरल व सुगम हैं। जिनको साधक आसानी से अपना सकता है। गूढ़ बातें धर्मग्रंथों में नहीं मिलेंगी।

मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि कंचन, कामिनी तथा प्रतिष्ठा साक्षात् माया का रूप है। जिस साधक ने इनको त्यागा है वही भगवत् चरण में पहुँच पाया है। ये इतने प्रबल तथा झीनी अवस्था के हैं कि कोई विरला ही इन्हें छोड़ पाया है। जिस पर सच्चे संत की कृपा हो जाती है वही इन्हें दूर करवा सकता है अन्य किसी उपाय से, ये तीनों अन्तःकरण से हट नहीं सकते।

श्रीगुरुदेव जी ने पिछले इतवारों को, भगवान् को प्राप्त करने के गूढ़ उपाय–सोते समय, प्रातः जगते समय तथा प्रातः संध्या करते समय–इतने सरल, सुगम सभी साधकों को बताये हैं। इतने कम समय में प्रार्थना करने पर भगवत् चरण उपलब्ध हो सकते हैं जो समस्त धर्मग्रंथों का निचोड़ तथा बीज है। प्रयास करने पर इस दुःखदायी जन्म–मरण से पिंड छूट सकता है। जो अमूल्य भगवत् प्राप्ति का उपाय है। बारंबार श्रीगुरुदेव जी साधको को सावधान करने हेतु लिखते रहते हैं क्योंकि साधकों को नहीं चेतावें तो साधक भूल जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी प्रह्लाद तथा ध्रुव चरित्र सौ–सौ बार सुना करते थे क्योंकि बार–बार बताने से बात ह्रदय में बैठ जाती है। माया के इतने बेशुमार झंझट साधक के नजदीक

रहते हैं कि साधक इन झंझटों में फँसकर भगवत् प्राप्ति के उपायों को भूल जाता है। अतः बार–बार बताना पड़ जाता है।

भगवान् तो इतने दयालु हैं अर्थात् वात्सल्य रस के समुद्र हैं कि एक बार भी साधक उन्हें पुकार लेता है तो वे तुरन्त ही उसे अपनी गोद में लेने को तैयार रहते हैं। जिस प्रकार कोई दूध पीता शिशु जागकर माँ को पुकारता है तो माया की माँ ही तुरन्त अपना काम छोड़कर शिशु को अपनी गोद में लेकर, अपना स्तन अपने शिशु को पिलाने में अग्रसर हो जाती है। भगवान् जो अनंतकोटि ब्रह्मांडों को सृजन करने की माँ है, इनका वात्सल्य भाव, इस जड़ जिह्वा से बताया नहीं जा सकता। लेकिन कोई भाग्यवान् जीव इसे पुकार के तो देखे !

भगवत् गीता के कथनानुसार काम ही जीव का महान् शत्रु है। काम का आशय है–इच्छाएँ। इन इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। इन इच्छाओं से ज्ञान ढका रहता है। यदि जीव का इन इच्छाओं पर आधिपत्य हो जाये तो भगवत् प्राप्ति का सच्चा ज्ञान उसके अन्तःकरण में प्रगट हो जाये। सभी इच्छायें अंत में दुःख का कारण बन जाती हैं। दुःख को मोल लेना क्या जीव की समझदारी है ? जो कुछ जीव को उपलब्ध हो रहा है, उसी में संतोष करके अपना भजन स्तर बढ़ाता रहे तो अंत में सुख ही सुख हस्तगत हो जायेगा।

मठ–मंदिर में रहना साधक की प्रारंभिक स्थिति है जब वह उच्च स्थिति पर पहुँच जाता है तो उसका हृदय–मन्दिर ही भगवान् के बैठने का पक्का स्थान बन जाता है। इसके उदाहरण हैं–रूप, सनातन तथा माधवेन्द्र पुरी आदि। तीन गुणों के कारण ही संसार का बंधन रहता है। जब तीन गुण विलीन हो जाते हैं तो निर्गुणवृत्ति प्रगट हो जाती है। भक्तगण ध्यान देकर सुनें कि जब निर्गुणवृत्ति अन्तःकरण में प्रगट हो जायेगी तो स्वतः ही विरहाग्नि निश्चित रूप से प्रगट हो जायेगी। संसार का अस्तित्व ही समाप्त

हो जायेगा। भगवान् के प्रति विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने पर एक अकथनीय, अलौकिक आनंद की हृदय में अनुभूति होने लगेगी। यही है पंचम पुरुषार्थ की उपलब्धि। इसी के लिये भक्तगण सदैव लालायित रहते हैं।

भक्तगण ध्यानपूर्वक श्रीगुरु की अमृतवाणी सुनने की कृपा करें। भगवान् से जीव का कोई भी संबंध बन जाये तो भगवान् उसी संबंध से जीव पर प्रसन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार पूतना ने तो कृष्ण को मारने की इच्छा से अपना विष लगे स्तन का दूध पिलाया तो क्या भगवान् ने उसे शत्रु माना ? नहीं ! भगवान् ने पूतना को माँ की गति प्रदान की।

राक्षसों ने भगवान् से बैर किया तो भगवान् ने उन्हें वैरी नहीं माना, उनको सद्गति ही दी। निष्कर्ष यह ही निकलता है कि भगवान् को किसी भाव से याद करते रहो। भगवान् का स्वभाव ही ऐसा है कि किसी भी भाव से उन्हें याद करे तो भगवान् उसका मंगल ही करते हैं। सभी भाव भगवान् से ही तो उदय हुये हैं। भाव अच्छा हो या भाव बुरा हो, भगवान् के लिये समान ही है। संसारी मानव के लिये इनका भेद महसूस होता है। पिछले जन्मों के संस्कार ही मानव को कर्म करने हेतु बाध्य करते हैं लेकिन भगवत् नाम ही पिछले संस्कारों को जला कर राख कर देते हैं।

भागवत में लिखा है कि भगवान् से कोई भी संबंध से नाता जुड़ना चाहिये फिर उद्धार होना निश्चित है। नाता काम का हो, क्रोध का हो, भय का हो, स्नेह का हो, किसी भी भाव का हो उसका उद्धार का कारण बन जाता है। जैसे भगवान् को बेटा शिशुपाल ने सौ गाली दी तो क्या भगवान् उससे नाराज़ हुये ? भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया। पूतना ने भगवान् को ज़हर भरा स्तन पिलाया तो उसे माँ का दर्जा दिया। राक्षस वर्ग ने भगवान् से दुश्मनी की तो क्या भगवान् ने उन्हें दुश्मन माना ? सभी का उद्धार किया। कहने का मतलब यही है कि भगवान् में मन किसी प्रकार से लगे तो उसका उद्धार निश्चित है जैसा कि शास्त्र बोल रहा है–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिशि दसहुँ।।

किसी भी तरह से भगवान् से मन जुड़ना चाहिये। भगवान् के लिये सभी भाव आदर के पात्र हैं। भगवान् के अतिरिक्त अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में कुछ है ही नहीं। न शब्द है, न भाव है। सभी भगवान् के सानिध्य में हैं। भगवान् से चर–अचर भाव, कुभाव, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुवत् व्यवहार श्रीकृष्ण से ही है। शब्द, स्वर, व्यंजन वर्ण आदि भगवान् से ही निकले हैं। माया ने इन्हें अंगीकार कर मानव को संसार में फँसा दिया। माया यदि न हो तो यह भगवत् सृष्टि का सृजन हो ही नहीं सकता। भगवान् ऐसी माया को अंगीकार कर, अनेक प्रकार की लीलाओं का विस्तार इस कारण करते हैं कि साधकगण इन्हें अन्तःकरण में रख कर अपना उद्धार कर सके। माया के चंगुल से छूट सके।

श्रीगुरुदेव प्रदत्त माला का सत्कारपूर्वक रख–रखाव का साधक यदि ध्यान नहीं रखता तो हरिनाम में रुचि होना बिल्कुल असंभव है। **साधक टी.वी. देख रहा है और माला भी जप रहा है तो यह माला का जघन्य अपराध है। माला को कहीं भी रखना, जहाँ स्वच्छ स्थान नहीं है, माला का निरादर है।** माला हमारी माँ है जो हमें हरिनाम रूपी अमृत दूध हमें अपने स्तन से पिलाती है जिससे विषयों का ज़हर साधक के तन से बाहर निकलता रहता है। यदि माला जपते समय मन इधर–उधर भटकता है तो माला उलझती रहेगी। यदि बुरा भाव मन में आता है तो माला टूट जायेगी। यदि भगवत् चिंतन में माला से जप होता है तो माला झोली में हाथ डालते ही सुमेरु ही हाथ में आवेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती कोई भी साधक आजमा कर देख सकता है। **कोई भी चर्चा बार–बार इसलिये करनी पड़ती है कि साधक सावधान होकर भजन में मन नियोजित करता रहे।** श्रीगुरुदेव जी गूढ़ से गूढ़ प्रसंग भी साधकों को बताते रहते हैं फिर भी यदि साधक ध्यान न देवे तो इसके बराबर कोई निर्भागा नहीं है, मूर्ख नहीं है, बेपरवाह नहीं है।

माला मैया का प्रेम से आदर सत्कार होगा तो जब माला से हरिनाम जपना आरंभ करोगे तो सुमेरु ही हाथ में आवेगा। यदि विश्वास न हो तो आज़मा कर देख सकते हो। माला मैया का आदर न होने से नाम में रुचि हो ही नहीं सकती। यह मेरे गुरुदेव गारंटी से बोल रहे हैं जो बात सारगर्भित होती है उसे बार–बार बोलना पड़ता है। अतः साधकगण श्रद्धा को बनाये रखें।

– हरि बोल –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

17

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20.11.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की हाथ जोड़कर प्रार्थना स्वीकार हो।

माया शक्ति क्या बला है ? क्या मुसीबत है ? क्या आफत है ? तथा योगमाया क्या बला है ? क्या शक्ति है ?

माया शक्ति है जो जीव आत्मा को संसार में फँसाने वाली है, योगमाया है जिसका अवलंबन करके भगवान् अनंतकोटि ब्रह्मांडों में जीवों के उद्धार हेतु, लीलाओं का विस्तार करने हेतु, अनंत अलौकिक लीलाओं का सृजन करते हैं। जिनका चिंतन करके जीव भवसागर से पार हो जाता है। भगवान् से सभी चर–अचर प्राणी प्रगट होते रहते हैं। भगवान् के अभाव में किंचित मात्र भी धरातल पर कुछ नहीं है। यदि यह दृष्टि किसी भाग्यवान् जीव की हो जाती है वह भगवान् का अलौकिक धाम उपलब्ध कर लेता है। यही प्रसंग मेरे गुरुदेव ने पिछले इतवारों को भक्त साधकों को मुझ से अंकित करवाया है। भगवान् योगमाया का अवलंबन करके ही लीलाओं का सृजन किया करते हैं।

लेकिन मायाशक्ति इतनी प्रबल है कि कोई करोड़ों, अरबों युगों में विरला ही इस माया से पार होता है। जिस पर सच्चे आचरणशील भक्त संत की कृपा हो जाती है, वही इस शक्तिशाली माया से पार हो जाता है। जिसको उक्त संत की सेवा का अवसर उपलब्ध हो जाता है। बिना संत की सेवा से भगवत् कृपा नहीं होती।

यह माया उसे दुःख देती है जो भगवान् को नहीं मानता। जो सच्चे दिल से भगवान् की शरण में रहता है उसे माया सहायक होकर सच्चे मार्ग पर चलाती रहती है। मायाशक्ति सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण का साक्षात् स्वरूप है। जीव के कर्मानुसार सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण से जीव का जीवनयापन होता रहता है। यही गुण प्रेरित करके जीव को कर्म करने में बाध्य करते रहते हैं।

ये तीनों गुण ही आत्मा को दुःखी करते रहते हैं अर्थात् जीव आत्मा इनसे दुःखी होती रहती है। जैसे ईर्ष्या, द्वेष करना, किसी को दुःखी देखकर खुश होना, शत्रुवत् व्यवहार करना–इनका तन पर अर्थात् शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रभाव पड़ता है जीव आत्मा पर। क्योंकि शरीर तो जड़ पदार्थ से निर्मित्त होता है अर्थात् निर्जीव है।

भगवान् स्वयं बोलते हैं कि–"हे मानव ! तू मन्दिर में जाकर लंबे–लंबे हाथ जोड़ता है कि सुख प्रदान करो एवं मन्दिर के बाहर जाकर मेरे सिर पर लाठी मारता है अर्थात् अपने समान ही मानव पर शत्रुवत् व्यवहार करता रहता है तो मैं तुमसे कैसे खुश रह सकता हूँ? मानव के ढांचे पर क्या असर होगा क्योंकि यह शरीर तो जड़ पदार्थ से बना है ? जो इसमें रहता है आत्मा, उसको तेरा व्यवहार प्रभाव करेगा। क्योंकि आत्मा सजीव है। परमात्मा की सजातीय है। परमात्मा से प्रगट हुई है।"

भगवान् से जब आत्मा प्रेम संबंध कर लेता है तो माया के सत्–रज और तम गुण समाप्त हो जाते हैं तथा निर्गुणवृत्ति जागृत हो जाती है। यह प्रेम संबंध हरिनाम में रुचि होने पर स्वतः ही उदय हो जाता है।

निर्गुणवृत्ति ही परमहंस अवस्था कहलाती है। जिसे तुरीय अवस्था भी कहते हैं यह अलौकिक अवस्था होती है। इसमें साधक का मन भगवान् से एकीभूत हो जाता है। भगवान् एवं

साधक का एक मेल हो जाता है अर्थात् दोनों में किंचित् मात्र भी अंतर नहीं रहता। जैसे सूर्य और सूर्य की किरण। फूल और फूल की सुगंध।

यह बहुत ऊँची अवस्था होती है इसको कोई उच्च कोटि का साधक ही समझ सकता है। साधारण साधक की बुद्धि के बाहर है। जीव को हरिनाम से ही शांति उपलब्ध होती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। **विरहाग्नि में जलता रहेगा तब अंत में हरिनाम का ही सहारा लेना पड़ेगा, तब थोड़ा जलना कम होगा।**

आप भक्तगण गलत न समझें। भगवान् का अर्चन–पूजन वैसे द्वापर युग का भक्ति करने का धर्म है। मैं अर्चन–पूजन का विरोध नहीं कर रहा हूँ। यह अर्चन–पूजन हरिनाम करने में सहायक रहता है। मठों में भजन–साधन साधारण भक्त के लिये सर्वोत्तम है। यहाँ भगवत्–अर्चन–पूजन से वातावरण शुद्ध रहता है तो हरिनाम में मन लग जाता है।

भजन गीति में तथा अष्टयाम कीर्तन में अर्चन–पूजन का कहीं उल्लेख नहीं है। केवलमात्र हरिनाम का ही उल्लेख हुआ है। भक्तगण, सभी का उद्देश्य यहीं रहा है कि कब हरिनाम करने से, मुझे सात्विक विचार उदय होकर, मेरे शरीर पर अश्रुपुलक होगा, कंठ गद्गद् होगा। भजनगीति में उल्लेख हुआ है।

गृहे थाक, वने थाक, सदा 'हरि' ब'ले डाक,
सुखे–दुःखे भुल ना'क, वदने हरिनाम कर रे।।

कि वन में रहो, चाहे घर में रहो, हरिनाम करते रहो। कहीं भी रहो, कोई आपत्ति नहीं है। हरिनाम में रुचि होनी चाहिये। हरिनाम में मन लगना परमावश्यक है। यदि मठ में हरिनाम करने में लाभ नहीं है तो घर ही सर्वोतम है।

हमारे गुरुवर्ग ने मठ इसलिये निर्माण किये हैं कि यहाँ पर शुद्ध वातावरण होने से हरिनाम कीर्तन में मन लग सकेगा। बस यही मुख्य कारण है। अन्य दूसरा कोई कारण नहीं है।

मन को हरिनाम में नियोजित करना ही सर्वोत्तम है क्योंकि यही कलियुग में भगवत् प्राप्ति का श्रेष्ठतम धर्म है। हरिनाम मन से होने से भगवत्–अर्चन–पूजन स्वतः ही हो जाता है। अर्चन–पूजन भी तो मन को लगाने हेतु ही तो है। अर्चन–पूजन में अपराध होने का भय है परंतु हरिनाम में किंचित् मात्र भी भय का प्रश्न नहीं उठता। इससे अपराध होता ही नहीं। कैसे भी हरिनाम की शरणागति लेते रहो।

पुराने समय में राजा तथा राजपूत मंदिरों को ज़मीन दिया करते थे। ज़मीन की आय से मंदिरों के खर्चे के काम सुचारु रूप से चलते रहते थे। हरिनाम में रुचि हेतु सभी मठ–मंदिरों के निर्माण की आवश्यकता रहती है। यदि हरिनाम में रुचि रहती है तो हृदय मंदिर ही सर्वोत्तम मठ मंदिर है। कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है।

मठ निर्माण करने का एक कारण यह भी है कि विग्रह के समक्ष संकीर्तन करने से आनंदानुभूति होती है तथा मठ को चलाने हेतु पैसे की भी आवश्यकता रहती है। तो भक्तगण जो गृहस्थी हैं भगवान् के लिये पैसा भी देते रहते हैं जिससे मठ का सुचारु रूप से बिजली पानी से निर्वाह होता रहता है तथा कमरे बनने से विस्तार होता रहता है।

लेकिन जहाँ मठ की सेवा हेतु प्रेमी संन्यासियों का अभाव होता है वहाँ मठ निर्माण करना उचित नहीं है। वहाँ पर अपराध होने का अंदेशा रहता है। मेरे श्रीगुरुदेव जी को जयपुर–महाराज मठ बनाने हेतु बहुत सुंदर, अनुकूल स्थल दे रहे थे परंतु मेरे श्रीगुरुदेव जी ने यह कहकर मना कर दिया कि मेरे पास मठ की सेवा हेतु विरक्त संन्यासी नहीं हैं। अतः मैं यह स्थल लेकर क्या करुँगा ? इससे तो अपराध का भागी बन जाऊँगा।

श्रीगुरुदेव जी ने प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जगने पर बोला है कि–**"हे मेरे प्राणनाथ! आज जो भी कर्म करूँ, वह आपके निमित्त ही हो। मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना। ऐसी मुझ पर कृपा करते**

रहना।" यह गीता का निष्काम कर्मयोग हो गया। जो गीता के नौवें अध्याय में सत्ताईसवें श्लोक में अर्जुन को भगवान् ने बोला है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता 9.27)

"हे अर्जुन। तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरण रूप तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर। इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप संन्यास योग से युक्त हुए मन वाला, तू अशुभ फलरूप कर्म बंधन से मुक्त हो जायेगा और मुझे ही प्राप्त होगा।"

मेरे श्रीगुरुदेव ने प्रातःसंध्या करते समय बोला है कि–**"हे प्राणनाथ! मेरी हस्ती ऐसी बना दीजिये कि मैं कण–कण में, प्रत्येक जीवमात्र में आपको ही देखूँ।"** यही प्रसंग गीता के बारहवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में भगवान् ने बोला है कि जो साधक सब भूतों में अर्थात् सभी जीवमात्र में द्वेष भाव से रहित है एवं स्वार्थ रहित, सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित दयावान् है वह मुझे ही प्राप्त होता है।

त्रिगुणात्मक माया का संग ही जीव आत्मा को अच्छी बुरी योनियों में भ्रमण कराता रहता है क्योंकि यह त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता रहता है। केवलमात्र हरिनाम मन से जपने पर त्रिगुणात्मक संग दूर हो जाता है और निर्गुण संग उपलब्ध हो जाता है। निर्गुण संग ही भगवान् से मिला देता है क्योंकि इस संग से साधक के हृदय में सात्विक विकार उदय हो जाते हैं। भगवान् के लिए छटपट शुरु हो जाती है।

गीता के तेरहवें अध्याय में पच्चीसवें श्लोक में भगवान् ने बोला है कि मन्द उपासना करने वाले साधक भी सच्चे संत से सुनकर मृत्युरूप संसार सागर से निःसंदेह तर जाते हैं।

गीता के सोलहवें अध्याय में अठारहवें श्लोक में भगवान् बोल रहे हैं कि अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादिक के परायण दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीरों में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले हैं। इनको मैं माया द्वारा दुःखी करता रहता हूँ तथा जन्म–मरण योनियों में भ्रमण कराता रहता हूँ।

गीता के सत्रहवें अध्याय के छठे श्लोक में भगवान् ने बोला है कि जो शरीर रूप से स्थित भूत समुदाय की अर्थात् जीवमात्र को और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को भी द्वेष करने वाले हैं उन अज्ञानियों को हे अर्जुन ! तू आसुरी स्वभाव वाला ही जान।

मनुष्य का शरीर तो एक धर्मशाला है जो उनके कर्मानुसार रच कर दिया है। इसमें मैं आत्मा रूप से वास करता हूँ। तो दुःख धर्मशाला को नहीं होता क्योंकि धर्मशाला निर्जीव है। कष्ट तथा दुःख तो जीव आत्मा को महसूस होता है। जो मुझे दुःख देता है वह सुखी कैसे रह सकता है। उनको मैं नीच योनियों में गिराता रहता हूँ।

अठारहवें अध्याय के चालीसवें श्लोक में गीता में अर्जुन को भगवान् ने बोला है कि पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुये तीनों गुणों से रहित हो क्योंकि यह सर्वजगत् त्रिर्गुणमाया का ही विकार है।

कहने का तात्पर्य यही है कि सभी कर्मों को मेरे अर्पण कर फिर तुझे पाप–पुण्य कुछ नहीं लगेगा। अर्थात् मेरी शरण में ही अपना जीवन–यापन करता रह।

ध्यान से सुनिये–

नामापराध का प्रायश्चित्त– हम जिसका अपराध करते हैं उसी से क्षमा मांगना पड़ता है। वही क्षमा कर सकता है। जिस प्रकार दुर्वासा का अपराध अम्बरीष से ही क्षमा हुआ है।

नामापराध का दूसरा उपाय है क्षमा। क्षमा भी नाम से ही होती है। शास्त्र में लिखा है–

नामापराध युक्तानां नामन्येव हरत्यधम्।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि हि।।

इसका मतलब है नामापराध युक्त पुरुषों के पापों को नाम ही हर लेता है जब निरंतर नाम स्मरण करते जाओगे तो नामापराध का निवारण स्वतः ही हो जाता है। नाम ही क्षमा कर देता है। हरिभक्तिविलास में 713 पेज पर अंकित है कि नाम खंडित हो तो कोई नुकसान नहीं है। अतः एक लाख नाम गौरहरि के कहने अनुसार करना परमावश्यक है चाहे मन लगे या न लगे। नाम तो मंगल करेगा ही। जिस प्रकार जाने अथवा अनजाने आग छुओ तो जलाएगी ही। इसी प्रकार हरिनाम जीभ पर आना चाहिये, मंगल करेगा ही। आरंभ में किसी का हरिनाम ध्यान से कैसे हो सकता है? बाद में स्वतः ही ध्यान से होने लग जाता है। शास्त्र बोल रहा है, ध्यान दें–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

दसों दिशाओं में मंगल क्यों लिखा है ? हरिनाम से भ्रमित करने वाले बहुत हैं। वे कहते हैं 16 माला ही श्रीगुरुदेव ने करने का आदेश दिया है। श्रीगुरुदेव जी ने 16 माला करने का आदेश इसलिये दिया है कि आज ही मैं 64 माला जपने को कहूँगा तो नया दीक्षित साधक इसे कर नहीं सकेगा तो इसे गुरु अपराध लग जायेगा। अतः इसे 16 माला ही करने के लिये आदेश देना उचित है।

जो कहते हैं कि शुद्ध नाम जपना चाहिये तो उनसे पूछा जाये कि आप तो 16 माला शुद्धि से कर रहे हो तो क्या आपको भगवान् के लिये छटपट हो रही है? आँख से एक अश्रु भी आया है कभी? तो उत्तर मिलेगा, ऐसा तो नहीं है। तो फिर गौरहरि ने 64 माला जपने को क्यों बोला? उन्होंने यह तो नहीं बोला कि माला शुद्ध

जपना। केवल इतना बोला कि जो एक लाख नित्य जप करेगा मैं उसके घर पर प्रसाद पाया करुँगा। जो 64 माला नहीं जपेगा उसके घर पर मैं प्रसाद नहीं पाऊँगा। आरंभ में शुद्ध नाम नहीं होगा। बाद में धीरे–धीरे शुद्ध भी होने लगेगा। 64 माला में कभी तो शुद्ध नाम जप भी होगा ही।

मेरे श्रीगुरुदेव जैसा बोलें, उस पर विश्वास रखने में ही कल्याण है। जो मन बुद्धि को भ्रमित कर रहे हैं उनसे दूर रहो क्योंकि उनसे तो एक लाख होता नहीं अतः जो करते हैं उनको भी अपने साथ मिलाना चाहते हैं। अंग्रेजों के गुरुदेव जी ने तथा भक्तिसिद्धांत सरस्वती जी ने सौ करोड़ हरिनाम जप क्यों किया है? मन, बुद्धि भ्रमित करने वालों से इसका जवाब लो ! बहुत संन्यासियों ने तीन–तीन लाख हरिनाम नित्य किया है। श्रीगुरुदेव के आदेश से मैं भी 3 लाख तथा अधिक भी करता रहता हूँ।

जो भगवान् को पाने में रोड़े अटकाता है उसे त्याग देना उचित है। शास्त्र बोल रहा है–

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परमसनेही।।

मेरे गुरुदेव जी ने लगभग एक साल पहले ही बता दिया था कि श्रीश्रीराधामाधव जी भूखे रहते हैं। पुजारी ने ठाकुर की रात–दिन सेवा की, फिर पुजारी को क्या मिला ? माया में फँसा कहता था कि सेवा बड़ी है, नाम नहीं है।

गुरुदेव जी ने सतर्क कर दिया था परंतु मठरक्षक अनसुनी करते रहे तभी तो यह नौबत आ गई। इसमें मठ की बदनामी हो गई। कईयों के भाव मठ के प्रति समाप्त हो गये। दिन प्रतिदिन मठ से भक्तगण दूर होते जा रहे हैं। जहाँ नाम नहीं, वहाँ भगवान् नहीं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी का आदेश है कि जहाँ मठ मंदिर में ठाकुर जी भूखा रहता है वहाँ बहुत बड़ा जघन्य अपराध होता

रहता है। वहाँ जो भी ब्रह्मचारी, गृहस्थी संन्यासी अन्न–भोजन का सेवन करेगा, वह हरिनाम कर ही नहीं सकता क्योंकि हरिनाम स्वयं ठाकुर जी का साक्षात् रूप है। जब भगवान् भूखा रहता है तो हरिनाम कैसे जिह्वा पर आ सकता है ? सभी के मन में हरिनाम से अरुचि होती रहेगी क्योंकि स्वयं मन भी भगवान् ही है। जैसा गीता बोल रही है भूख से मन भी दुखी है। ऐसे स्थान में कलि महाराज का पदार्पण हो जायेगा। कलि महाराज का स्वभाव ही कलहकारिणी स्थिति बनाने का है। वहाँ पर चोरी, झगड़ा, पिशाच होना परमावश्यक है। जिस स्थान में मन सहित भजन होता है, वहाँ कलि महाराज का पदार्पण हो नहीं सकता क्योंकि कलि को ठाकुर जी का डर लगता है।

अतः ठाकुर जी सेवाकारी को एक लाख हरिनाम होना बहुत परमावश्यक है। एक को समय न मिल सके तो प्रातः शाम सेवा करने हेतु दो सेवाकारी रखना बहुत जरूरी है। अंग्रेजों के मंदिरों में तीन पुजारी रखे जाते हैं ताकि समय मिलने पर तीनों एक–एक लाख हरिनाम नित्य कर सकें। एक पुजारी अपनी मनमानी कर सकता है, अधिक पुजारी रखने पर मनमानी करना संभव नहीं क्योंकि स्वभाव भिन्न–भिन्न होता है। एक पुजारी गलत सलत काम में फँसता रहेगा। पैसे का लोभी हो जायेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने अष्टयाम कीर्तन केवल नाम की शरण हेतु बोला है।

– हरिबोल –

बोल हरि बोल हरि हरि हरि बोल
केशव माधव गोविन्द बोल

जय शचीनन्दन जय गौरहरि
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी

18

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
27.11.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो।

पंचम पुरुषार्थ – प्रेम की पराकाष्ठा का मार्मिक कथन

केवलमात्र गोपियों में भगवान् कृष्ण के प्रति चरमसीमा का प्रेम था। वे तो स्वयं सिद्ध जीवात्मा थीं। उन्होंने न कभी बैठकर माला जपी, न ही किसी मठ मंदिर में जाकर दर्शन किया, न तीर्थ करने हेतु कहीं पर गईं। न किसी से गुरु दीक्षा ली। न कहीं सत्संग में गई। न शास्त्रों का पठन–पाठन किया। फिर भी गोपियों का मन और बुद्धि हर क्षण भगवान् की याद में विलीन रहा करती थी।

भगवान् के प्रति याद ही सर्वोपरि है। यह याद ही भगवान् का जीवात्मा के नज़दीक आकर्षण कर लेती है। अक्सर जीव आत्मा की याद संसारी वस्तुओं के प्रति रहती है। इसके पीछे मायिक गुण जीवात्मा के पीछे लगे रहते हैं जिनसे बाध्य होकर जीवात्मा संसार की फंसावट में फंसा रहता है एवं अपने पिता को, जो जन्म दाता है, भूला रहता है। अतः जन्म पर जन्म के चक्कर में चक्कर लगाता रहता है जिनमें दुःख के सिवाय सुख का नामो निशान नहीं है। केवल सुख का अनुभव करता रहता है। जिस प्रकार सूकर विष्टा खाने में आनंद का अनुभव करता रहता है जो कि संसार की अभक्ष्य से भी अभक्ष्य घृणित वस्तु है उसी प्रकार जीवात्मा जिस योनि में अपना जीवन बसर करता है उसमें ही स्वर्गीय सुख अनुभव करता है। यही सबसे बड़ा अज्ञान है। उद्धव ज्ञानवान था लेकिन गोपियों के सत्संग से अपना ज्ञान सब भूल गया और

सोचने लगा **"गोपियों का जन्म ही सफल है, मैं तो गोपियों के पग धूल की भी बराबरी नहीं कर सकता। इनका जो श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम है, यही प्रेम की पराकाष्ठा है। त्रिलोकी में इनके प्रेम की तुलना कहीं पर भी नहीं हो सकती। इनका जीवन ही कृष्ण के लिये है।"** श्रीकृष्ण का जीवन भी गोपियों के लिये ही था। गोपियों का पारिवारिक बंधन तो न के बराबर ही था। रात–दिन जो भी काम करती थीं केवलमात्र कृष्ण के प्रति ही किया करती थीं।

श्री उद्धवजी ब्रजदेवियों की चरणरेणु की वंदना करते हुये एवं श्रीमुख से निःसृत श्रीहरिकथा को त्रिभुवनपावनी बताते हुये कहते हैं–

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीनां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।

"नंदबाबा के ब्रज में रहने वाली गोपांगनाओं की चरणधूलि को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ, उसे सिर पर चढ़ाता हूँ। अहा ! इन गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की लीला–कथा के संबंध में जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सर्वदा पवित्र करता रहेगा।"

गोपियों का सोना–जागना भी श्रीकृष्ण के लिये ही था। खाना–पीना भी श्रीकृष्ण के लिये ही था । पारिवारिक काम धंधा भी श्रीकृष्ण के लिये ही था। गोपियों की तरह श्रीकृष्ण को याद रखने की यह अवस्था केवलमात्र हरिनाम से ही उदय हो सकती है अन्य कोई दूसरा साधन है ही नहीं। केवल हरिनाम, केवल हरिनाम ही–**हरेर्नामैव केवलम्।**

भगवान् को याद करने का बड़ा महत्व है। भगवान् का स्मरण अन्तःकरण में रहना चाहिये। बस ! यही याद भगवान् से प्रेम का संबंध करा देता है एवं संसार से अनंतकोटि जन्मों का नाता अर्थात् फँसावट छुड़वा देता है। गोपियों का भगवान् गोविंद से अटूट संबंध था। भगवान् गोपियों के ऋणी बन गये थे। जैसा चाहती थीं

भगवान् श्रीकृष्ण उनके आदेशानुसार कठपुतली की भांति नाचा करते थे क्योंकि गोपियों ने श्रीकृष्ण को अपने अन्तःकरण में प्रेम–डोरी से बांध रखा था।

भगवान् को किसी भी भाव से संबंध तथा स्मरण किया जाये, भगवान् उसी भाव से भक्त के गुलाम बन जाते हैं। भगवान् चाहें तो भी उनसे अलग होने में असमर्थ रहते हैं। तब ही शास्त्र घोषणा कर रहा है–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।
जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरीसम यद्यपि परमस्नेही।।

जो भगवान् से दूर करता है, भक्ति में बाधा डालता है वह चाहे परम स्नेह रखता हो, उसे घोर दुश्मन समझकर त्याग देना चाहिये।

इसके अनेकों उदाहरण हैं। गोपियों ने अपने पतियों को त्याग दिया था। भीलनी ने अपने कुटुंब को त्याग दिया था। बलि महाराज ने अपने गुरु महाराज को त्याग दिया था। विभीषण ने अपने भाई रावण को त्याग दिया था। राम के भाई भरत ने अपनी मां को त्यागा। बेटे प्रहलाद ने अपने पिता हिरण्यकश्यपु को त्याग दिया था। इस प्रकार से मानव इस मृत्युलोक में अपने ही शरीर से ईर्ष्या, द्वेष करता रहता है वह चाहे चर–अचर प्राणी ही क्यों न हो। इसी कारण मानव दुःख को स्वयं बुलाता रहता है। देखा जाये तो सभी चर–अचर प्राणियों में एक जैसा खून होता है, सभी के खून का रंग लाल होता है। खून एक जैसा होने से सभी अपने हैं। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत हुआ। दूसरा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे अपने हाथ की पाँच उंगलियों में से एक उंगली को चोट पहुँचाओ तो पूरे शरीर में दुःखदायी वातावरण फैल जायेगा।

सुख पाने का एक ही उपाय है कि किसी भी चर–अचर प्राणी को दुःख मत पहुंचाओ। तो सदा ही सुख का जीवन चलाते रहोगे। अतः भूल कर भी किसी को कष्ट मत दो। मन, वचन और कर्म से

दुःख दिया जाता है। मन, वचन और कर्म से ही सुख दिया जाता है। देखा जाता है कि मानव को अपने कर्म से असफलता होती रहती है। इसका खास कारण है कि मानव ने दूसरे के कर्म में रोड़ा अटकाया है। दूसरे के कर्म में बाधा डाली है। कहावत है जैसा करोगे वैसा भरोगे। जो दूसरों को दुःख देता है, वह अपने लिये दुःख मोल लेता है।

यदि कोई भी मानव, किसी के शरीर की आकृति को देखकर, उसे दुःखी करता है तो यह उसका अज्ञान है। शरीर तो एक धर्मशाला है। जड़ पदार्थ से बना है। जड़ को क्या दुःख होगा? दुःख होगा उसे, जो इसमें बैठा है। तो सभी चर–अचर प्राणियों में आत्मा रूपी परमात्मा बैठा है। दुःख किसको होगा जो इस धर्मशाला में बैठा है अर्थात् आत्मारूपी परमात्मा को होगा। यही बात गहरे दिमाग से समझने की है। निर्जीव अर्थात् जड़ पदार्थ को दुःख होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो मानव का अज्ञान है। जब भगवान् किसी से दुःख पायेंगे तो वह कैसे सुखी रह सकता है। इसको उसका बदला चुकाना ही पड़ेगा। जो खड्डा खोदेगा वही तो गिरेगा। जैसे अचर प्राणी पेड़ है जो इसको काटता है उसे पेड़ की योनि में जाना पड़ेगा। क्योंकि पेड़ के अंदर भी भगवान् का वास है, जब ही तो पेड़ हरा रहता है जब भगवान् नहीं होगा तो पेड़ सूख जायेगा। जो पेड़ की योनि में आया है वह भी अपने कर्मानुसार ही पेड़ बना है। जो इसको काटेगा उसको भी पेड़ की योनि में आना पड़ेगा।

भगवान् के विधान को कोई भी शक्ति बदल नहीं सकती। कर्म भी भगवान् का ही स्वरूप है। कर्म से ही नरक में जाना पड़ता है। कर्म से ही गोलोकधाम उपलब्ध हो जाता है। इसका मतलब यही हुआ कि कर्म ही प्रधान है।

कर्मप्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।।
क्योंकर तर्क बढ़ावहिं साखा।

बहस करने से कोई मतलब नहीं है। कर्म ही सुख–दुःख का बीज है। अतः शुभ कर्म करना उचित है ताकि सुखी रहने का अवसर उपलब्ध होता रहे।

कर्म स्वयं के लिये करने पर, कर्म भोग स्वयं को भोगना पड़ता है जब कर्म भगवान् के लिये होता है तो उस कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता। जिस प्रकार हनुमान जी ने राम का कर्म समझ कर लंका को जलाकर भस्म कर दिया जिसमें अनंत जीव स्वाहा हो गये लेकिन हनुमान जी को कर्म का फल भोगना नहीं पड़ा अर्थात् पाप नहीं लगा। श्री हनुमान जी का कर्म निष्काम हो गया।

जैसा गीता बता रही है। मानव दुःखी क्यों है ? इसका खास कारण है कि चर–अचर प्राणियों को इसने दुःख दिया है। यदि यह किसी को दुःख न देवे तो वह सदैव सुख का जीवन जीता रहेगा। हम कहते हैं कि उसने मुझे दुःखी किया है, मुझे सताया है। याद रखो कोई किसी को दुःख नहीं देता। मानव दुःखी केवल अपने कर्म से ही होता है। मक्खी, मच्छर, कीट पतंग को भी मारना नहीं चाहिये। इनमें भी आत्मा रूपी परमात्मा बैठा है। इनकी रक्षा, पालन करना मानव का धर्म है। जिस मानव का ऐसा स्वभाव है, उसके पास भगवान् स्वयं खिंचकर आते हैं। कैसा सरल, सुगम तरीका है सुखी रहने का। फिर भी मानव समझता नहीं। समझे भी कैसे ? क्योंकि इसके पीछे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रूपी मायाशक्ति लगी रहती है। जो इसके स्वभावानुसार कर्म में प्रेरित करती रहती है। इसका नाश केवल हरिनाम स्मरण से ही होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

लेकिन हरिनाम भी मानव करता नहीं है। क्योंकि सुकृति नहीं है। सुकृति साधु सेवा से ही बनती है, आत्म–साधन से नहीं। सेवा तन, मन, वचन तथा धन से ही बनती है। यदि मानव साधक, भगवत्–धाम में जाना चाहता है तो उसे विरहमयी स्थिति अन्तःकरण में प्रगट करनी पड़ेगी। यह स्थिति श्रीगुरुदेव जी की तीन प्रार्थना नित्य करने से ही प्रगट हो सकती है। लेकिन एक सूरत यह भी

है कि साधक सच्चे मन से, तन से भगवान् को उपलब्ध करना चाहें। जब भगवान् को चाहेगा तो स्वतः ही संसार की आसक्ति धीरे–धीरे दूर होती चली जायेगी। जो अन्तःकरण में संसारी खिंचावट अर्थात् टेंशन है, वह निर्मूल होता चला जायेगा। जब टेंशन अन्तःकरण में नहीं रहेगी तो सरलता व सुगमता से मन भगवत् चरणों में आसक्त हो जायेगा तो भगवत् मिलन की कामना होने से विरह स्थिति शत–प्रतिशत उदय हो पड़ेगी। बस साधक को चरम सीमा का पंचम–पुरुषार्थ प्रेम उपलब्ध हो जायेगा। यही है मानव साधक का अमृत सुधा का क्षण पान। इसमें है एक अलौकिक मस्ती, एक अलौकिक खुशी जिसे प्राप्त कर साधक के मन में संसारी कामनाओं की निर्मूलता उपलब्ध हो जायेगी। केवल मात्र एक ही कामना हृदय में रहेगी केवल भगवत् मिलन, भगवत् स्मरण। साधारण साधक उक्त भावों को समझ नहीं सकता। जिस साधक पर भगवत् कृपा होगी वही इन आंतरिक गहरे भावों को समझने में सक्षम होगा।

इस प्रकार की मनोवृत्ति जिस साधक की होगी वह सबसे प्रेम का बर्ताव करेगा। शत्रु का भी भला चाहेगा। दयानिधि होगा। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि जो भी अशुभ भाव होंगे, सब निर्मूल हो जायेंगे। दूसरों को दुःखी देखकर स्वयं दुःखी हो जायेगा और दुःख को हटाने में प्रयत्नशील हो जायेगा। उक्त लक्षण, जिस साधक के आचरण में होंगे, वही सच्चा संत है। सरलता की वह साक्षात् मूर्ति होगा। शरीर के बंधन से वह दूर रहेगा। खाने–पीने में अरुचिवान होगा। जो कुछ मिल गया, उसी में खुशी महसूस करेगा। सदैव प्रेम का बर्ताव करेगा। अनजान से भी तन, मन से सेवा में रत रहेगा।

जो इस प्रकार के संत से दुष्टता का बर्ताव करेगा उसका भगवान् नाश कर देगा अर्थात् वह कभी सुख से रह नहीं सकेगा। सदैव उसका अन्तःकरण अग्नि की तरह उबलता रहेगा। कहीं भी उसे चैन नहीं पड़ेगा। वह सुखी होने के लिये तड़पता

रहेगा। इसका उदाहरण है जड़ भरत। मनुष्य योनी ही एक ऐसी योनी है जिस योनी से चौरासी लाख योनियाँ समाप्त हो सकती हैं। मनुष्य योनि में यदि संत समागम का सुअवसर उपलब्ध हो जाता है तो यह अज्ञान का पर्दा हट जाता है और ज्ञान का दीपक जल जाता है। सच्चाई का जीवन प्रत्यक्ष सामने आ जाता है।

लेकिन मनुष्य योनि मिलना बहुत ही मुश्किल है अर्थात् सुदुर्लभ बताई गई है। इसको बर्बाद करना बहुत बड़ा अकथनीय नुकसान है। इस दुस्तर माया से मानव की आंखे बंद रहती हैं। इन आंखों को खोलने वाला केवलमात्र परमहंस संत ही है जो सुकृतिशाली मानव को ही उपलब्ध होता है।

इसका एक उदाहरण है। जब मैं कॉलेज में पढ़ता था, तब मैंने कल्याण (एक धार्मिक मासिक पत्रिका) में पढ़ा था। किसी जंगल में एक पेड़ पर कबूतर का जोड़ा रहता था। कहीं से एक अयाचक वृत्ति का भूखा प्यासा संत आकर पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा। कबूतर–कबूतरी को भी मानव पालता रहता है। मानव को इसका शौक रहता है। कबूतर मानव की बात समझता भी है। किसी समय में ये कबूतर चिट्ठियां ले जाते थे। कबूतर–कबूतरी ने सोचा ''संत भूखा प्यासा है। इसकी सेवा करना हमारा धर्म है क्योंकि यह हमारे दरवाजे पर आया है। भूखा प्यासा यहाँ से नहीं जाना चाहिये।''

अचानचक वृत्ति होने से किसी ने उसे कुछ खिलाया नहीं था। कबूतर–कबूतरी दोनों अपने पालने वाले आदमी के पास गये। आदमी–पानी के पास जाकर अपने सिर हिलाने लगे तथा गेहूं जो धूप में सूख रहा था, वहां जाकर बैठ गये लेकिन चुगना बंद रखा। तब पालने वाले ने सोचा कि जब मैं कबूतरों व मोरों को, अनाज का दाना छत पर बैठाकर डालता हूं तो कबूतर मेरी गोदी में या कंधे पर आकर बैठ जाता है, मोर छतरी पर आकर नाचते हैं। पशु–पक्षी भी मानव की मन वृत्ति को जानते हैं कि यह हमें मारेगा नहीं।

पालने वाले आदमी ने देखा कि कबूतर–कबूतरी कुछ कहना चाहते हैं और वह समझ गया कि कोई भूखा प्यासा है, इसीलिए यह मेरे पास आये हैं। पालने वाला आदमी जानता था कि कबूतर–कबूतरी का घोंसला किस पेड़ पर है। वह भोजन–पानी साथ लेकर गया तो जाकर देखा एक साधु पेड़ के नीचे पड़ा पुकार रहा है। "हे भगवान् ! हे राम !" जब पालने वाला आदमी वहाँ पहुँचा तो कबूतर–कबूतरी पेड़ से नीचे उतर आये, थोड़ी दूरपर जाकर जमीन पर बैठकर, गुटरगूँ शब्द करने लग गये। पालने वाला आदमी उनकी बोली समझ गया कि साधु को खिलावो–पिलावो।

पालने वाला आदमी साधु से बोला कि महात्मा जी कुछ खा लो, पी लो। महात्मा जी बोले कि आपको कैसे मालूम कि मैं तीन दिन से भूखा प्यासा हूँ। उसने कहा कि वे दूर बैठे कबूतर गुटरगूँ कर रहे हैं, उन्होंने ही मुझे आपका परिचय दिया है। परमहंस साधु ने जब कबूतर–कबूतरी की ओर देखा तो कबूतर–कबूतरी की योनि बदल कर एक अलौकिक सुंदर रूप में स्त्री–पुरुष का जोड़ा बन गया।

यही है साधु। सेवा की सुकृति का फल। पक्षी योनि बदलकर मानव की योनि उपलब्ध हो गई। पशु पक्षियों में भी बुद्धि ज्ञान रहता है। पशु–पक्षियों की तो बात ही क्या है ? पेड़ों में भी बुद्धिज्ञान रहता है। श्री राधा कुंड, श्री श्याम कुंड पर पांचों पांडव पेड़ के रूप में रहते थे जब श्याम कुंड को चौकोर (चौरस) बनाने लगे तो पेड़ों को काटना पड़ गया। तो पेड़ बोले कि हम पांडव हैं, हमें काटो मत। इसलिये श्याम कुंड चौकोर नहीं बन सका।

प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि एक कीड़ी (चींटी) के पीछे सारी कीड़ियाँ (चींटियाँ) एक कतार में चलती रहती हैं। यदि बुद्धिमान न हों तो ऐसा कैसे हो सकता है ? एक कबूतर के पीछे, सभी कबूतर, आकाश में, एक ही दिशा में, उसके पीछे उड़ान भरते रहते हैं। एक बकरी के पीछे सौ बकरियाँ जंगल में चरती रहती हैं। शाम को एक

साथ मिलकर चरावे (चरवाहे) के घर पर आ जाती हैं। गाय पहाड़ों में चरकर सीधी अपने पालने वाले के घर पर आ जाती है। निष्कर्ष यह निकलता है कि सभी चर–अचर प्राणियों में भगवान् ने सूक्ष्म बुद्धि प्रदान की है। केवल इनकी भाषा मानव समझता नहीं है। आपस में पशु–पक्षी अपनी भाषा समझते रहते हैं। बोलकर मानव को समझा नहीं सकते। हाव भाव से मालिक की हरकत समझ जाते हैं।

हमारे गुरुवर्ग में श्रीमान् माधवेन्द्रपुरी जी भी अयाचक वृत्ति के परमहंस संत हुये हैं। राजस्थान में श्रीनाथ जी इनकी ही देन है। गोविंदकुंड श्री गिरिराज की तलहटी में है, यहीं पर श्रीनाथ जी प्रगट हुये हैं। अयाचक वृत्ति का मतलब है कि यदि कोई खिलादे तो खाले, वरना दस दिन तक या अधिक दिन तक बिना मांगे ही भजन में रत रहते हैं। लेकिन भगवान् को यह सहन नहीं होता। भगवान् किसी को प्रेरणा कर, इस प्रकार के भक्त शिरोमणि को भूखा नहीं रखते। कभी–कभी दो–तीन दिन भूखा भी रहना पड़ जाता है। जब कोई नई जगह साधु का जाना हो जाये तब किसी को मालूम ही नहीं होता कि कोई भूखा–प्यासा साधु ने यहाँ पर पदार्पण किया है।

मेरे श्रीगुरुदेव बार–बार साधकों की आँखे खोल रहे हैं कि यदि तुमने अपनी माला मैया का आदर सत्कार नहीं किया तो स्वप्न में भी तुम्हारा मन हरिनाम में नहीं लग सकेगा। जिस प्रकार मानव कभी भी वस्त्रहीन अर्थात् नंगा नहीं रहता इसी प्रकार तुम्हारी माला मैया वस्त्रहीन अर्थात् नंगी कैसे रह सकती है ? यह माला झोली ही तुम्हारी माला मैया की पोशाक है, इसे मैली होते ही धोना परमावश्यक है।

माला मैया का सुमेरु साक्षात् श्रीकृष्ण है और 108 मनके साक्षात् गोपियाँ हैं। जब साधकगण माला मैया का आदर सत्कार करेंगे तो माला झोली में हाथ डालते ही सुमेरु, जोकि साक्षात्

श्रीकृष्ण स्वरूप हैं, हाथ में आ जावेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आज़माकर देखलेना। धर्मग्रंथों में माला मैया का रख रखाव कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलेगा। यही श्रीगुरुदेव जी की अनुभवशील, अलौकिक चर्चाएं हैं। श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि मैंने माला मैया का रख रखाव पिछले इतवारों में सभी साधकगणों को बता दिया था। उसको ध्यान में रखकर माला मैया का रख–रखाव करना सर्वोतम होगा।

जो माला मैया तुमको हरिनाम रूपी अमृतसुधा का पान कराती रहती है। उससे अधिक लाभप्रद उपलब्धि क्या हो सकती है ? जिससे जन्म–जन्म की संसारी वासनाएं निर्मूल हो जाती हैं। अब भी सावधानी से अपने भक्ति मार्ग पर अग्रसर होते रहो तो इसी जन्म में पंचम पुरुषार्थ–प्रेम की उपलब्धि हो जायेगी तथा आवागमन रूपी दारुण कष्ट का निवारण हो जायेगा। सदा के लिये वैकुंठ में वास बन जायेगा। अपने माँ–बाप की गोद में पहुँच जाओगे। मैं तो तुम्हें समझाते–समझाते थक गया लेकिन तुम्हारे तन–मन पर एक चींटी भी नहीं रेंगी। शर्म की बात है।

माला मैया की शरणागति तो सभी धार्मिक संस्थाओं में है। मुस्लिम वर्ग माला से खुदा को याद करते हैं। जैनी माला से महावीर स्वामी को याद करते हैं। साक्षात् भगवान् शिवजी, पार्वती को संग में बिठाकर माला से अपने मालिक को याद करते हैं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु जी अष्टप्रहर, रात–दिन माला पर हरिनाम का जप करते रहते हैं। माला ही, द्रुतगति से दौड़कर अपने आदिकाल के माँ–बाप की गोद में पहुँचा देती है। जहाँ दुःख की हवा तक नहीं है। आनंद सागर लहराता रहता है। यहीं पर मैं मेरे श्रीगुरुदेवजी की अमृतवाणी को विश्राम देता हूँ।

– *हरिबोल* –

19

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः
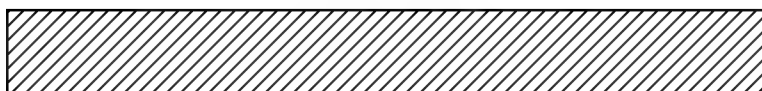
छींड की ढाणी
04.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने का आशीर्वाद करने की कृपा करें।

मानव माया के गुणों से परेशान है।

मानव में तीन शरीर रहते हैं पहला स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म शरीर और तीसरा कारण शरीर। यह कारण शरीर ही अगला जन्म होने का कारण है। इस शरीर में ही पिछले जन्मों के कर्म होने के संस्कार मौजूद रहते हैं। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण–माया के इन गुणों से मानव परतंत्रता को प्राप्त होता है। यह परतंत्रता भगवत् नाम से स्वतंत्रता में बदल सकती है। भगवत्–प्रेम ही स्वतंत्रता के नाम से जानी जाती है।

माया के इन गुणों के कारण ही मानव में कामनाओं का जाल फैला रहता है। भगवान् ने गीता में अर्जुन को बोला है कि अर्जुन इस काम वैरी को मार। इसके कारण ही मानव जन्म पर जन्म उपलब्ध करता रहता है एवं कभी शांति लाभ नहीं कर सकता। इन कामनाओं में दुःख ही दुःख भरा रहता है। एक कामना पूरी हो भी नहीं पाई कि दूसरी कामना सामने खड़ी हो जाती है। अतः मानव हरिनाम स्मरण से दूर रहता है। हरिनाम ही सुख का उद्‌गम स्थान है।

कामनाओं से निपटने हेतु केवल साधु संग ही है। साधु संग चिंतन द्वारा भी होता है तथा असलियत में भी हो जाता है। असलियत में साधु का प्रभाव प्रत्यक्ष पड़ता रहता है क्योंकि साधु

की वाइब्रेशन (तरंगें) सीधी सत्संग करने वाले पर पड़ती रहती हैं। लेकिन साधु संग भी बिना भगवत् कृपा के उपलब्ध नहीं हो सकता है। मानव पर भगवत् कृपा भी जब ही होती है जब उसने कभी साधु की सेवा का अवसर प्राप्त किया होगा। सेवा तन, मन, वचन तथा धन से की जाती है।

हरिनाम में मन तब ही लग सकेगा जब कंचन, कामिनी व प्रतिष्ठा से दूर रहेगा। अंहकार ही इसका मूल कारण है। अहंकार जब ह्रदय में नहीं रहेगा तो **"तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन, कीर्तनीय सदा हरिः**–का भाव स्वतः ही उदय हो जायेगा।

साधक, मानव जन्म का मूल अर्थात् महत्व नहीं समझ रहा है इसी कारण से संसार में इधर–उधर भटक रहा है। इसको मालूम नहीं कि किस क्षण में सांस निकल कर मौत आ जावे। दोबारा मानव जन्म होगा भी नहीं। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना होगा जिनमें अरबों–खरबों युग बीत जायेंगे। जिनमें सुख का नामो–निशान नहीं रहेगा। जब भवसागर का पानी सूख जायेगा तो अंदर से प्रज्ज्वलित अग्नि प्रगट होकर, जगत के माया के गुणों को भस्मीभूत कर देगी। भगवान् की निर्गुण अग्नि प्रज्ज्वलित होकर जीव आत्मा की ओर फैलती जायेगी तो जागतिक गुण का नामो निशान ही नहीं रहेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने भक्त का चोला पहन कर इस अलौकिक प्रज्ज्वलित अग्नि का सभी साधकों को दर्शन कराया है। यह चुंबक की भांति, लोहे की तरह, भगवान् को आकर्षण कर, साधक–विरही भक्त को, आंसुओं की बाढ़ में सराबोर कर देती है। जो ऐसी दृष्टि प्रदान कर देती है कि साधक को प्रेमास्पद के सिवाय कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वह एक पागलपन के आवेश में डूबा रहता है, संसारी भाव इसे छूता भी नहीं है।

यह उक्त अवस्था साधक में तब ही उदय होती है जब उसका

हरिनाम तल्लीनता से होने लगता है। यही पूर्ण शरणागति का द्योतक है। पूर्ण शरणागति भी जब उदय होती है जब सभी साधकों को श्रीगुरुदेव जी द्वारा बताई गई तीन प्रार्थनाएँ–सोते समय रात में, प्रातः जागते समय ब्रह्ममुहूर्त में तथा संध्या करते समय करनी होती है। यही तीन प्रार्थनाएँ समस्त धर्मग्रंथों का सार तथा बीज हैं। इस बीज से ही भगवान् के मुखारविंद से धर्मग्रथों का उद्‌गम हुआ है।

राजा खट्वांग ने दो घड़ी में भगवत् उपलब्धि की है। श्रीगुरुदेव जी ने सभी साधकों को दो मिनट में भगवत् उपलब्धि करवा दी है। तीनों प्रार्थनाओं में दो मिनट से अधिक का समय लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसा सरल, सुगम साधन आज तक किसी ने नहीं बताया, न धर्मग्रंथों से दृष्टिगोचर हो सका लेकिन धर्मग्रंथों में अंकित अवश्य है। जिस प्रकार दूध में से माखन निकालने की विधि जिसको आती है, वही दूध से माखन निकाल सकता है। जौहरी ही असली नग को पहचान सकता है। अनुभवी वैद्य ही नाड़ी पकड़ कर रोग का निदान कर सकता है। इसी प्रकार मेरे श्रीगुरुदेव जी ने जो भगवत् उपलब्धि की प्रार्थनामयी विधि, सभी साधकों को बताई है कि दो मिनट में भगवान् से मिलन हो सकता है लेकिन नित्य ही साधन करना परमावश्यक है। एक दिन का भी नागा नहीं होना चाहिये।

जो साधक तीन माह निरंतर उक्त प्रार्थनाएँ करता रहेगा वह अन्तःकरण से इनको अपना कर रहेगा। उसका इसी जन्म में उद्धार होना शत–प्रतिशत निश्चित है।

भगवान् तो सभी चर–अचर प्राणियों के पिता हैं। पिता कभी अपनी संतान की प्रार्थनाएँ सुने बिना रह नहीं सकता। भगवान् तो दयानिधि हैं। एक साधारण संसारी पिता भी पुत्र की प्रार्थना सुने बिना रह नहीं सकता तो भगवान् की तो बात ही अकथनीय है। श्रद्धा विश्वास होना बहुत जरूरी है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं

चाहिये। कोई भी साधक आजमा कर देख सकता है। साधक का जीवन ही बदल कर रहेगा। यह गुरुदेव की गारंटी है। इतना सस्ता माल कहीं नहीं मिल सकता। इसमें गीता का सार छिपा पड़ा है जो साक्षात् भगवत् की वाणी है।

पहला–अंतिम भाव में जो प्राणी मरेगा वह उसी गति को प्राप्त होगा। **दूसरा**–निष्काम कर्म योग है ही। **तीसरा**–प्रत्येक प्राणी चर–अचर में मेरा वास है ही।

इसके अतिरिक्त धर्मग्रंथों में है ही क्या ? यदि साधक फिर भी सोता रहता है तो इसके बराबर कर्महीन, कर्मफटा कौन हो सकता है ? उक्त साधन से परम पुरुषार्थ भगवत्–प्रेम बड़ी सरलता तथा सुगमता से उपलब्ध हो जाता है। मानव जन्म को व्यर्थ में गँवाना कितना बड़ा नुकसान होगा जिसका अंदाजा नहीं हो सकता।

श्रीगुरु प्रदत्त माला का रख–रखाव, यदि श्रीगुरुदेव के बताये अनुसार नहीं किया गया तो हरिनाम में मन नहीं लगेगा। माला बराबर उलझती रहेगी तथा टूटती रहेगी। इसी कारण मुझे बार–बार बोलना पड़ जाता है। माला झोली, माला का पहनने का चोला है, इसे पर्व पर धोकर माला को पहनाना आवश्यक है। माला की पोशाक गंदी हो जाती है और उसे जपते रहना उचित नहीं है। जैसे हम पर्व पर नये कपड़े पहनते हैं इसी प्रकार माला को भी नई झोली पहनाना उचित है। इसका ध्यान न रखने से हरिनाम नाराज़ हो जाता है और जापक को हरिनाम में रुचि होने से दूर कर देता है। तब ही तो भगवत् प्रेम उदय होने में समय लग जाता है। श्रीगुरुदेव छोटी से छोटी चर्चा भी करते रहते हैं लेकिन ऐसी चर्चा बहुत मूल्यवान है। जिसके न होने से भगवत् प्रेम होने में देर हो जाती है। ऐसी चर्चाएँ पुस्तकों में भी बहुत कम पढ़ने को मिलती हैं। मृत्युलोक के भगवान् की सेवा में और गोलोकधाम की सेवा में, जो आनंद अनुभव होता है उसमें हज़ार गुणा अंतर है। इसको उदाहरण द्वारा श्रीगुरुदेव भक्तगणों को समझाने का प्रयास कर रहे हैं।

जिस प्रकार माँ अपने इकलौते शिशु की देखभाल तथा सेवा में, जो मन का आनंद अनुभव करती है उस सेवा से तथा गोलोक धाम की भगवत् सेवा के आनंद अनुभव में करोड़ गुणा अंतर है।

इसी प्रकार सती स्त्री अपने पति की देखभाल तथा सेवा में, जिस मन का आनंद अनुभव करती है, उस सेवाभाव में तथा गोलोकधाम की भगवत् सेवा के आनंद अनुभव में करोड़ गुणा अंतर रहता है। गोलोक का आनंद अलौकिक भाव में ओत–प्रोत रहता है जिसका वर्णन इस जड़ जिह्वा से बखान नहीं किया जा सकता। उक्त संसार का आनंद, माया से ऊपर का आनंद, अनुभवशील है। माया में आनंद है ही नहीं, केवल दीखता है।

मेरे गुरुदेव ने बताया है कि हरिनाम लेने का क्या तरीका है यही भगवान् अर्जुन को सुझा रहे हैं कि हरिनाम स्मरण करने का क्या तरीका है। श्रीगुरुदेव जी ने बताया:–

Chanting Harinam sweetly and listen by ear.

ऐसा भगवान् अर्जुन को बता रहे हैं, भक्तगण ध्यान देकर सुनने की कृपा करें:–

जो साधक ॐ इस एक अक्षर रुप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और इसके अर्थ स्वरूप मेरे को चिंतन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह साधक परमगति को प्राप्त होता है। यह गीता के आठवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने बोला है, कोई भी साधक देख सकता है ।

हे अर्जुन! जो साधक मेरे में अनन्य चित्त से स्थित हुआ, सदा ही निरंतर मेरे को स्मरण करता है उस, निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज में ही प्राप्त हो जाता हूँ। यह गीता के अठाहरवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में बोला गया है। इसी प्रकार से हरिनाम को सुनते हुये और भगवान् का चिंतन करते हुये अपने साधन में जुट जाना चाहिये।

जो साधक उक्त बोले अनुसार साधन करेगा उसे इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष उपलब्ध हो जायेगा तथा अष्ट–सिद्धि, नवनिधि उसके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहेगी और प्रार्थना करेगी कि हमें अपना लो परंतु भगवत् प्रेमी भक्त उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं देगा और अपने प्रेम भक्ति मार्ग पर अग्रसर होता रहेगा। अन्त में भगवान् ऐसे भक्त को, स्वयं गोलोकधाम तथा वैकुण्ठधाम लेकर जायेंगे। वहाँ उसका भव्य स्वागत करवायेंगे। ऐसा धर्म शास्त्र का वचन है।

जो ऐसा भजन करेगा, उस पर सभी कृपा करते रहेंगे शास्त्र बोल रहा है–**जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करे सब कोई।** हिंसक जानवर भी उसे नुकसान नहीं करेगा क्योंकि इसमें भी वही प्राणनाथ विराजित हैं। उसके आदेश बिना कोई कुछ भी कर नहीं सकता। भरत जी भी गीता के आदेशानुसार ही भगवत् नाम लिया करते थे।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरु।
जीह नाम जप लोचन नीरु।।

सीता जी भी इसी प्रकार हरिनाम लिया करती थीं –

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्री राम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहति हरि नाम।।

यह हरिनाम लेने के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। फिर साधक को क्या परेशानी है ? घर में बैठकर, एकांत में हरिनाम स्मरण कर सकता है। न इसमें पैसा लगता है, न कोई मौसम की परेशानी है। सर्दी, गर्मी, बरसात का प्रबन्ध हो सकता है। परिवार वाले सहायक बन सकते हैं। आसानी से अपना मानव जन्म सार्थक कर सकता है।

भजन में (नंदी) स्थान का महत्त्व बहुत बड़ा है। एक बार शिवजी व पार्वती नादिया पर बैठकर कहीं जा रहे थे तो रास्ते में एक जगह शिवजी ने नादिया से उतरकर, पृथ्वी पर लेटकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की तो पार्वती ने पूछा कि यहाँ तो कुछ है

ही नहीं, फिर आपने किसे दण्डवत् की है ? तो शिवजी बोले कि इस टीले पर दस हज़ार वर्ष पहले एक संत ने भगवत् नाम जप किया है इसलिये इस स्थान को मैंने दण्डवत् की है। फिर शिवजी नादिया पर चढ़कर जाने लगे। बहुत दूर जाने पर फिर शिवजी ने नादिया से उतरकर, पहले की तरह पृथ्वी पर लेटकर, प्रणाम कर साष्टांग दण्डवत् की तो पार्वती ने पूछा ''हे मेरे पति परमेश्वर ! अब किसे प्रणाम् कर रहे हो ?'' तो शिवजी बोले–''पार्वती इस टीले पर दस हज़ार वर्ष बाद, एक संत भगवत् नाम स्मरण करेंगे। अतः इस स्थान का महत्व है। अतः इसे प्रणाम कर रहा हूँ।'' पार्वती बोली कि इस प्रणाम से क्या लाभ होगा ? शिवजी बोले–''मुझे हरिनाम में रुचि होगी।'' इसका खास महत्व यह है कि **भगवत् भजन से प्रत्येक वस्तु विशेष आदर की पात्र हो जाती है। भगवत् नाम से संसार की कोई भी वस्तु क्यों न हो, वह चिन्मय स्थिति में परिणत हो जाती है।**

जिस प्रकार एक हरिनामनिष्ठ से, एक नामी वेश्या ने हरिनाम सुनकर, तीन दिन में अपने मन को संसार की आसक्ति से निर्मूल कर दिया था। घोर पापी रत्नाकर जिसे वाल्मीकि भी बोला जाता है, भगवत् नाम 'मरा–मरा' जप कर ही त्रिकालदर्शी हो गया। जिसने हज़ारों साल पहले ही रामायण रच दी थी और रामावतार हज़ारों साल बाद में हुआ। रामजी ने वही संसार में लीलाएँ की जो वाल्मीकि जी ने रामायण में रची थीं, लिखी थीं।

हमारे गौरकिशोर बाबा जी, बिलकुल अनपढ़ थे। जिनको अपना नाम लिखना नहीं आता था। सारे शास्त्र उनके हृदय में प्रगट हो गये क्योंकि बाबा ने भगवत् नाम का ही आसरा लिया था। एकांत में रहकर नाम स्मरण किया था ताकि कोई नामापराध न बन सके। जब संसारी लोग संसारी दुःख हटवाने आते तो बाबा जी, भजन बाधा होने के कारण, बाथरूम में जाकर नाम स्मरण किया करते थे। तो निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम का कितना अकथनीय महत्व है। चारों युगों में ही नाम का महत्व है।

कलिकाल में तो विशेष महत्व है ही। जिस किसी ने भी हरिनाम की शरण ग्रहण की है, वही इस दुःखदायी जन्म–मरण से छूट पाया है। तब ही तो शास्त्र घोषणा कर रहा है कि अरबों–खरबों साधकों में से कोई एक ही मेरे को उपलब्ध करता है। सभी माया के चंगुल में फँस जाते हैं। चरम सीमा पर पहुँच कर भी नीचे आ गिरते हैं।

माया बड़ी दुस्तर है। इससे पिंडा छुड़ान बहुत मुश्किल है। इससे तो पिंड वही छुड़ा सकता है जिसने भगवत् रसिक की शरण ग्रहण की है। इसके शास्त्रों में अनंत उदाहरण मौजूद हैं। ऊपर से दिखाई देंगे भक्त, अंदर से संपर्क में आने पर मालूम पड़ेगा–बड़े दुष्ट आचरण वाले। जिसने कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा को त्यागा है, वही भक्त है। संपर्क में आने पर हृदय के आचरण का सब कुछ मालूम पड़ जाता है। जब तक सूर्य उदय नहीं होता तब तक ही अंधेरा रहता है। सूर्य उगने पर अंधेरा रह ही नहीं सकता। संसार कपटपूर्ण वातावरण से भरा पड़ा है। अतः भक्ति तो बहुत दूर की बात है। ऊपर से सोने का घड़ा चमक रहा है और अंदर में ज़हर भरा है। बातों से कुछ नहीं होता। व्यवहार में सच्चाई होना परमावश्यक है। तब ही कुछ शुभ सुकृति उपलब्ध हो सकती है।

हरिनाम तो कोई करता नहीं और मठ–मंदिर के निर्माण करने में फँस रहे हैं। सारी ज़िंदगी योहीं इन्हीं कामों में गुजार देंगे। जो उत्तम कर्म है, उसे तो करते नहीं। हरिनाम है कलिकाल का सच्चा कर्म।

एक बार कौरवों का बड़ा भाई दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्ण से बोला–''कृष्ण मेरे घर पर अनेक प्रकार की मिठाईयाँ, कई प्रकार की चटनी आदि बनाई गई हैं। आप मेरे यहाँ चलकर भोजन करो तो श्रीकृष्ण बोले कि दुर्योधन न तो तुम मुझसे प्यार करते हो, न मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और मुझे भूख भी नहीं है अतः मैं तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकता। मुझे तो वहीं भूख लगती है जहाँ पर प्रेम होता है। प्रेम वहाँ है, जहाँ कृष्ण की याद है। दुर्योधन, मैं तो केवलमात्र प्रेम खाता हूँ। तुम्हारे पास प्रेम है ही नहीं। जहाँ प्रेम

होगा वहाँ जाकर भोजन करुँगा।'' यह कहकर उसी समय श्रीकृष्ण विदुरानी के घर चले गये और बोले–''माता जी, मैं तो भूख के मारे मर रहा हूँ। जो कुछ घर में है, वही खिला दो।'' घर में तो कुछ था नहीं। केवल छींके पर एक केले का गुच्छा पड़ा था तो विदुरानी हड़बड़ाकर केले ले आई और पीढा बैठने के लिये डाल दिया और बोली कि पीढे पर बैठ जाओ, अभी कुछ लाती हूँ। अब तो प्रेम में अंधी होकर केले का गुद्दा नीचे डालती जा रही है और केले के छिलके खिला रही है। श्रीकृष्ण बहुत आनंद से खा रहे हैं। इतने में विदुर जी आ गये और माथा पीटा, कहा कि तू क्या कर रही है। भगवान् बोले कि आज जो मुझे खाने में स्वाद आया, वह स्वाद, मेरी मैया यशोदा के पास खाने में भी नहीं आया।

पिछले इतवारों को श्रीगुरुदेव जी ने तीन प्रार्थनाएं नित्य करने का आदेश दिया था कि इन तीन प्रार्थनाओं को, जिनमें दो ही मिनट लगते हैं, नित्य करने से भगवान् मिल जाता है जबकि खट्वांग राजा को दो–ढाई घड़ी में भगवान् मिले थे।

तीन प्रार्थनाएँ कौन सी हैं। एक तो सोते समय, जब नींद आने लगे तब करनी है। दूसरी, प्रातः जागते समय, जब नींद खुले, तब करनी है। तीसरी प्रार्थना–जब प्रातः संध्या करने बैठो तो, तब करनी है। इन तीनों प्रार्थनाओं में केवलमात्र दो ही मिनट का समय खर्च होता है। श्रीगुरुदेव बोलते हैं कि इन तीनों प्रार्थनाओं से 2 मिनट में भगवान् मिल जाते हैं।

बहुत से साधकगणों को शंका हो सकती है कि हम तो ये तीनों प्रार्थनायें कई दिन से करते आ रहे हैं, लेकिन हमें तो भगवान् नहीं मिले। यह शंका साधारण साधकगणों को हो सकती है। जिस पर भगवत् कृपा होती है, वह सभी विषयों को अन्तःकरण में समझ लेता है। कोई भी कर्म शीघ्र फल नहीं देता। खड्डे में कोई बीज बोते हैं तो 10–15 दिन में पानी देते–देते अंकुरित होता है उसी दिन अंकुरित नहीं होता है। एक पाठक इंजीनियर बनना चाहते हैं तो क्या एक दिन में, कॉलेज में जाकर लैक्चरार की बात सुनकर

इंजीनियर बन जायेगा ? उसको भी चार साल तक पढ़ना पड़ेगा, तब इंजीनियर बन सकेगा। जो भी मन से पठन करेगा, वही इंजीनियर बन सकेगा। किसी भी कर्म में समय लगता ही है, तब ही सफल परिणाम उपलब्ध होता है।

इसी प्रकार साधक समझने का प्रयास करें कि जो श्रीगुरुदेव जी ने तीन प्रार्थनाएँ नित्य करने का आदेश दिया है, उसमें समय तो 2 मिनट का ही लगेगा परंतु जब साधक की मौत आवेगी तब ही तो भगवत् दर्शन का लाभ होगा अर्थात् ये तीन प्रार्थनाओं का परिणाम निकलेगा अर्थात् भगवान् इन तीन प्रार्थनाएँ करने वाले को अपने धाम वैकुण्ठ में ले जायेंगे। साधकगण समझते हैं कि 2 मिनट में भगवान् तो मिले नहीं। यह श्रीगुरुदेव जी ने कैसे कह दिया। अतः साधकों में समझने की कमी है।

भगवान् की संसारी सृष्टि आश्चर्यजनक है। सभी चर–अचर प्राणियों में सूक्ष्म बुद्धिमत्ता अर्थात् सैन्स होता है, जिससे अपना जीवन सुखपूर्वक चलाते रहते हैं। शहद की मक्खियों में एक रानी मक्खी होती है। वह कुछ हरे रंग की चमकदार होती है। वह जहाँ जाकर रहने के हेतु अपना छत्ता बनाती है, वहीं पर समस्त मक्खियां उसके आदेशानुसार अपना जीवनयापन करती रहती हैं। मानव उनको पालता भी है। अपना व्यापारिक धंधा कर, अपना जीवनयापन करता है। बड़ी मक्खियों में एका (एकता) रहती है। इनमें एक मक्खी को सताने पर समस्त मक्खी उस पर धावा बोल देती हैं। सभी उस पर टूट पड़ती हैं तथा उसकी जान ले लेती हैं। छोटी–बड़ी समस्त मक्खियाँ बड़ी खतरनाक होती हैं। मानव का जीवन समाप्त कर देती हैं।

पशु नाक से सूंघ कर पदार्थ को पहचान जाता है। सर्प आँख से ही सुनता तथा देखता है। शेर की गर्दन अगल–बगल में मुड़ती नहीं है, वह केवल सामने ही देख सकता है। भगवान् ने उसका शरीर ऐसा ही बनाया है वरना शेर अगल–बगल में देख लेवे तो जीवों का भक्षण कर सकता है। बागल पक्षी तथा उल्लू रात में ही

देख सकता है। दिन में नहीं देख सकते। मछलियाँ पानी में ही सांस लेती हैं इनको बाहर की हवा उपलब्ध ही नहीं होती। रेंगने वाले जन्तु जमीन में ही बिल बनाकर रहते हैं ये बिना हवा लिये ही जीते रहते हैं जैसे सर्प, कीड़ियाँ आदि। मेंढक हमेशा समाधि लगाए रहते हैं। पहली बरसात होते ही टर–टर करने लगते हैं। गिजाइयाँ तथा वीर बहूटी जो मखमल जैसी मनमोहक लाल रंग की होती है, पहली बरसात में कहाँ से आ जाती हैं ? इसी प्रकार भगवान् की अनंत प्रकार की सृष्टि है जिसका अवलोकन कर बुद्धिमान मानव आश्चर्य रूपी सिंधु में डूब जाता है।

कहने का निष्कर्ष यह है कि मानव की योनि मिलना बहुत सुदुर्लभ है। इन सब चराचर जीवों की रक्षा पालन करना, इसका मुख्य धर्म है। मानव ही इनका माँ–बाप है। यदि मानव में भावना है तो भगवान् इससे दूर नहीं तथा वह भगवान् से दूर नहीं। जैसा कि मेरे गुरुदेव जी ने बोला है कि कण–कण में तथा सभी जीवमात्र में, मैं आपको ही विराजमान देखूं। आप ही मुझे इन चर–अचर प्राणियों में दर्शन देते रहें। यही है दूर दृष्टि के भाव का अवलोकन। ऐसा मानव कभी स्वप्न में भी दुःख व कष्ट का दर्शन नहीं कर सकेगा। इसका स्वतः ही संसार से वैराग्य हो जायेगा तथा इसका मन भगवान् की ओर आकर्षित हो जायेगा। पंचम पुरुषार्थ एवं प्रेम की विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो पड़ेगी। इसका अनंतकोटि जन्मों का जीवन सार्थक हो जायेगा। भगवत् चरणों में पहुँच जायेगा।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

20

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
08.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तशिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

मैया तुलसी महारानी की महिमा का अकथनीय वर्णन

तुलसी मैया भगवान् को अतिशय प्यारी है जबही भगवान् तुलसी माँ को अपने गले से अलग नहीं करते। तुलसी माँ आदि काल से अमर है। तुलसी माँ के बिना भगवान् साधकगण का कुछ भी ग्रहण नहीं करते। जब भगवान् ही तुलसी माँ को गले से एक क्षण भी अलग नहीं करते तो श्रीगुरुदेव, जब जीव को भगवत्–चरण में अर्पण करते हैं तो प्रथम में जीवात्मा के गले में तुलसी मैया को पहनाते हैं अर्थात् इस जीवात्मा को भगवान् अपने चरण में स्वीकार कर लेते हैं।

श्रीगुरुदेव जी शिष्य को आदेश प्रदान करते हैं कि गले की तुलसी माला को एक क्षण भी गले से अलग मत करना। गुरुदेव शिक्षा प्रदान करते हैं कि सब कुछ जो तुम्हें प्रारब्धवश प्राप्त हुआ है, यह भगवान् ने ही दिया है। इसलिये जो भी वस्तु अपने काम में लो उसमें तुलसी दल डालकर भगवान् की वस्तु भगवान् को ही सौंप दो। जिस प्रकार भगवान् के हेतु अमनियां तैयार करो तो तुलसी दल डालकर भगवान् को अर्पण करो ताकि भगवत् प्रसाद आपको उपलब्ध हो सके। इसी प्रकार अपने तन आदि के लिये कपड़ा खरीद कर लावो तो प्रथम में तुलसी दल डालकर भगवत्–चरण में अर्पण करो। इसके बाद अपने काम में लावो।

जो माला श्रीगुरुदेव आपको जपकर (माला पर जप करने के बाद) सौंप रहे हैं, वह भी तुलसी की मणियों की हुआ करती है। अतः यह माला भी सजीव है। निर्जीव कभी स्वप्न में भी न समझें। **तुलसी मैया की शरणागति लेकर हरिनाम जाप करना है। जिसकी साधक शरण लेता है उसका आदर–सत्कार करना एक साधारण सी बात है। यदि आदर–सत्कार में कमी रही तो हरिनाम जपने से अपराध बनता रहेगा।** तो मन भगवान् है। एकाग्र होगा ही नहीं। केवल जाप होगा भार बनकर। अक्सर साधकगण गुरु प्रदत (द्वारा दी गई) माला को एक साधारण सी निर्जीव वस्तु समझते हैं। अतः आदर–सत्कार तो बहुत दूर की बात है। अज्ञान की भी हद हो गई।

श्रीगुरुदेव जी ने बहुत बार माला की आदर–सत्कार की चर्चा की है क्योंकि माला भक्ति प्राप्ति की प्रथम व अन्तिम अमोघ शक्ति है। इसपर साधकगण ध्यानपूर्वक गौर करें। माला को सिर से प्रणाम करें, चरणों का चुंबन करें, छाती से लगावें। तुलसी माला आदिकाल से ही साधकगण की माँ है जो साधकगण को अपनी गोद में लिटाकर अमृतसुधा का हरिनाम रूपी दूध अपने स्तन से पिलाती है जिससे विषय रूपी विष तन–मन से बाहर निकलता रहता है।

माला जपने का विधान सभी धर्मों में सर्वप्रिय है। जपने हेतु माला उठाते ही सुमेरु जापक के हाथ में आवेगा। माला की थैली ही माला माँ की पहनने की पोशाक है। इसको थोड़ी मैली होने पर धोते रहना चाहिये। शुद्ध जगह पर माला को रखना परमावश्यक है। अशुद्ध जगह पर रखने से माला माँ का निरादर होता है। माला मैया जब नाराज़ होती है तो नीचे लिखा लक्षण जापक के सामने प्रकट हो जाता है। माला उलझती रहेगी। हाथ से गिर जायेगी। दुर्भावना होने से माला टूट जायेगी।

यह वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध नहीं होगा। यह श्रीगुरुदेव जी का अपना अनुभव है। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं होता। कोई भी परीक्षा

कर देख सकता है। यह एक साधारण सी बात है कि जिसका साधक से निरादर होगा वह उसे चाहेगा क्या ? स्वप्न में भी नहीं। यही कारण है कि साधकगण की शिकायत रहती है कि हमारा हरिनाम में मन नहीं लगता, क्या करें ? तो गुरुदेव जी ने कई बार सोते हुओं को जगा दिया परन्तु उत्साह की कमी से, फिर सो जाते हैं। इसमें श्रीगुरुदेव भी क्या कर सकते हैं ? कमी साधकगणों की ही है।

भक्ति प्राप्ति की खास चीज़ तो जपने की माला ही है। यदि इसे संभाल लिया जाये तो भविष्य का भक्ति का रास्ता स्वतः ही खुल जावे। जब पौधे में पानी ही नहीं पहुँचा तो पौधा सूख जावेगा। इसमें पौधे का क्या दोष है ? दोष तो है पानी देने वाले का।

भगवान् को कौन चाहता है ? अरबों–खरबों में कोई एक भाग्यशाली ही चाहता है। सभी अपनी वर्तमान स्थिति का सुख चाहते हैं क्योंकि इनमें अभी सच्चा ज्ञान है नहीं। सच्चा ज्ञान होने पर तो यह सब मिट्टी समान है। यह सच्चा ज्ञान परमहंस संत ही दे सकता है क्योंकि ज्ञान का बैंक तो निर्लिप्त साधु के पास ही है। पर भगवान् की असीम कृपा के बिना ऐसा साधु उपलब्ध होता नहीं।

भगवान् अन्तर्यामी हैं। सबके अन्तःकरण का भाव इनसे छुपा नहीं है। जो सच्चे रूप से भगवान् को चाहता है उसके पास भगवान् ऐसा साधु भेज देते हैं। जैसे विभीषण के पास हनुमान जी को भेज दिया था। जबकि विभीषण राक्षसों के बीच अपना जीवनयापन ऐसे कर रहा था जिस प्रकार 32 दांतों के बीच बेचारी जीभ का रहना होता है।

उपरोक्त संकटों का निवारण केवलमात्र हरिनाम से ही हो सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस कलियुग में नामापराध से बचना ही एकमात्र उपाय है वरना तो बना बनाया महल ढहकर मिट्टी में मिल जायेगा। अपराध जीव की धर्मशाला का नहीं

होता। यह अपराध स्वयं जीव आत्मा का होता है। धर्मशाला तो निर्जीव पदार्थों से निर्मित हुई है। इसे कष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। चींटी से लेकर हाथी तक के लिये, भगवान् ने इनके पिछले कर्मानुसार धर्मशालाएँ बनाकर दी हैं। मानव भगवान् से ही द्वेष करता रहता है तब इसे सुख कैसे मिल सकता है ? यही इसका खास अज्ञान है।

श्रीकृष्ण का रास रचने का प्रबन्ध केवल तुलसी माँ ही करती है। भगवान् की योग माया को साथ लेकर तुलसी मैया रास स्थल का वातावरण अलौकिक रचना से रचित करती है। उस स्थल पर कानों को आकर्षित करने वाली अलौकिक ध्वनि गूँजती रहती है। इसका वर्णन इस जड़ जिह्वा से नहीं किया जा सकता। इस स्थल पर एक अलौकिक सुगंध की, आकर्षित समीर बहती रहती है जिससे एक मस्ती की लहर में सभी डूबे रहते हैं। जड़ वस्तु भी सजीवता का रूप वरण कर लेती है। सभी वर्णन जड़ जिह्वा से बाहर हैं। यह सभी तुलसी महारानी की कृपा वर्षण से ही होता है। केवल भगवत् योग–माया को संग में लेकर करती है। योगमाया से अनंतकोटि ब्रह्मांडों में क्या नहीं हो सकता! लेकिन यह तुलसी की कृपा बिना सक्षम नहीं है।

तुलसी के अभाव में भगवान् भी किसी लीला के प्रादुर्भाव में असमर्थ रहते हैं। तुलसी महिमा को कोई भी वर्णन कर नहीं सकता। यह अपने में ही महिमावृत है।

तुलसी आराधना तो भगवान् से भी बढ़कर है। तुलसी कृपा बिना तो भगवान् भी अदृश्य रहते हैं। तुलसी कृपा जिस साधक पर हो गई तो भगवान् उस पर कृपा करने में मजबूर हो गये। तुलसी महारानी से ही भगवान् का अन्तःकरण अग्रसर होता है अपनी समर्थ से भगवान् कुछ कर नहीं सकते, असमर्थ रहते हैं। पंचपात्र का जल पीना उचित नहीं है। तुलसी जड़ में डालना उत्तम है। जल डालकर तुलसी को प्रणाम करें। यह शास्त्र का विधान है।

कोई–कोई साधकगण बोलते हैं कि माला में हरिनाम जपने की क्या जरूरत है बिना माला से भी हरिनाम स्मरण हो सकता है। यह कहना बिल्कुल गलत है। बिना माला स्मरण होना असंभव है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी स्वयं माला में, हरिनाम संख्या रखकर करते रहते हैं। शिवजी अपनी धर्मपत्नि को संग में बिठाकर हरिनाम स्मरण करते हैं। संकीर्तन भी झांझ, करताल तथा मृदंग का सहारा लेकर मन को एकाग्र करते हैं। बिना किसी सहारे से संसार का कोई काम स्वप्न में भी नहीं हो सकता।

बिना कागज़ पैन से कोई लेखन हो नहीं सकता। बिना खुरपा किसी भी क्यारी का निर्माण बन नहीं सकता। शास्त्र का कथन है–

माला मन से लड़ पड़ी तू क्या समझे मोय ।
बड़े–बड़े जो सूरमा, बिन हथियार न जीते कोय ।।

अपने देश के लिये, बिना हथियार दुश्मन को जीतना असंभव है। इसी प्रकार बिना माला के मन को जीतना भी असंभव है। मन तो क्षण–क्षण में न जाने कहाँ–कहाँ भटकता रहता है। एक क्षण तो शुभ कर्म करने में संलग्न हो जाता है दूसरे क्षण अशुभ से अशुभ कर्म करने को तैयार हो जाता है। अतः माला हरिनाम स्मरण करने में परमावश्यक है।

माला मैया आदिकाल से अमर है, सजीव है। इसका थोड़ा सा भी निरादर होने से माला स्मरण करते समय उलझ जाती है तथा टूट जाती है। जिस प्रकार मानव पैसे को कितना प्यार करता हुआ सुरक्षित रखता है वैसे ही माला माँ को इससे भी अधिक प्यार से रखना चाहिये। यदि बेपरवाही से माला का सत्कार नहीं हुआ तो स्वप्न में भी मन का टिकाव होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कहते हैं कि हमने तो नामापराध कभी किया भी नहीं, फिर भी हमारा मन हरिनाम में लगता ही नहीं। इसका खास कारण यही है कि माला का आदर सत्कार होता ही नहीं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की

आवश्यकता नहीं है। कोई भी साधक आजमा कर देख ले कि माला माँ के भविष्य में क्या–क्या लक्षण सामने आते हैं। जब माला जपने को माला की झोली में हाथ डालोगे तो सुमेरु हाथ में आ जायेगा। सुमेरु को ढूंढना नहीं पड़ेगा। सुमेरु साक्षात् कृष्ण का स्वरूप है और दोनों ओर माला की मणियाँ साक्षात् गोपियाँ हैं। सुमेरु भगवान् बीच में हैं और गोपियां भगवान् को घेरे हुये रास क्रीड़ा में मस्त हैं।

श्रीगुरुदेव गारंटी से बोल रहे हैं कि कोई भी जापक आजमाकर देख सकता है। क्या–क्या गुल भविष्य में खिलता है। न हो, तो मुझसे बोलो ! कमी होगी जापक की। न कि श्रीगुरुदेव के वचनों की।

धर्मशास्त्रों में कुछ–कुछ मार्मिक चर्चाएँ उपलब्ध नहीं होती। यह स्वयं का अनुभवी लेख है जो शत–प्रतिशत सत्य होता है। किसी–किसी विषय को बार–बार बोलना पड़ता है ताकि यह साधकगण के ह्रदय में बैठ जाये ताकि भक्ति मार्ग निष्कंटक बनता जाये। हमारे तीर्थ महाराज जी बहुत से विषय बारबार बोलते रहते हैं। यज्ञ–पत्नियों की बार–बार चर्चा करते हैं। ध्रुव, प्रहलाद के चरित्र की चर्चा बहुत बार बोलते रहते हैं। अतः श्रवणकारी इन विषयों में दोषारोपण न करें। तब ही उनका भला है। किसी की निंदा स्तुति में तो आनंद महसूस करते हैं और भगवत् संबंधी चर्चा में दुःखी हो जाते हैं। इसका खास कारण सामने ही है कि अभी ऐसे साधक भगवान् को नहीं चाहते। केवल इसलिये श्रवण करते हैं कि हमारा घर सुखमय बन जाये। कोई संकट न आवे। सभी वातावरण हमारे अनुकूल हो जावे।

करोड़ों साधकों में कोई ही भाग्यशाली भगवान् को चाहता है। सभी कपटमय भजन में लीन रहते हैं। फिर शिकायत करते रहते हैं कि हम माला भी एक लाख से अधिक करते हैं परंतु हमारा मन कभी शांति में नहीं रहता। जहाँ शांति है वहाँ पर जाते ही नहीं तो मन शांत कैसे रह सकता है ? जहाँ अग्नि जल रही है वहाँ जाते

ही नहीं, तो ठिठुरता सर्दी की कैसे दूर हो सकती है? यही तो खास अज्ञान है। ज्ञानी के पास बैठो तो अज्ञान दूर हो सकता है। कहते हैं, हमें समय ही नहीं। अरे ! जब मौत का पैगाम आवेगा तब भी कह देना कि अभी समय नहीं है, बाद में आ जाना तो मौत आपका कहना मान जावेगी मूर्खता की भी हद हो गई ! श्रीगुरुदेव जी समझाते–समझाते थक गये लेकिन एक भी मार्ग पर नहीं चल सका।

– हरि बोल –
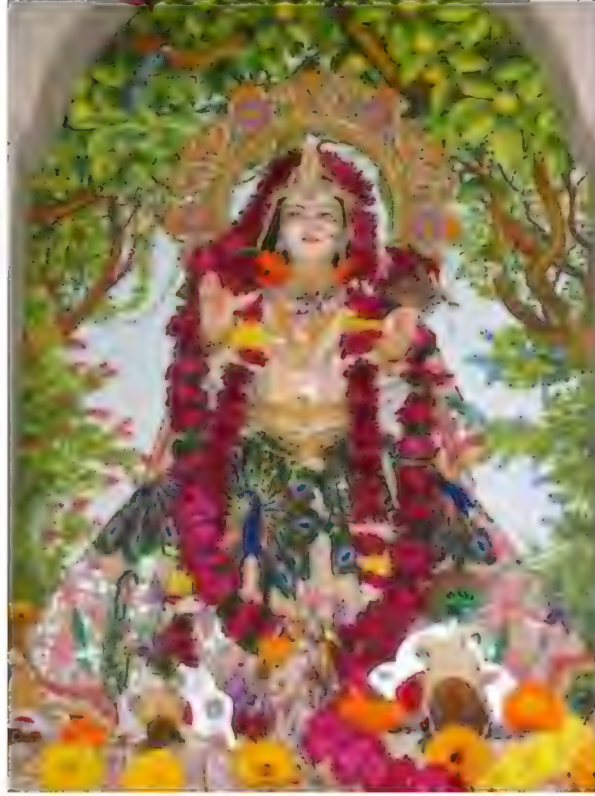
श्री वृन्दादेवी (श्री तुलसी महारानी)

21

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
21.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना।

धर्मग्रंथों का निरंतर हरिनाम करने का लगातार आग्रह

गृहस्थी साधक को घर गृहस्थ में अनेक काम–धन्धे हुआ करते हैं। अतः हरिनाम की संख्या जितनी इसने ले रखी है हरिनाम की उतनी संख्या करने में असमर्थ रहता है अतः उसे किसी संत की सत्–संगत में बैठने पर, हरिनाम हेतु माला जपनी पड़ जाती है। समय कम होने के कारण ऐसे समय में हरिनाम की माला जपने पर दुगना लाभ उपलब्ध होता रहता है। एक तो जिह्वा से नाम भगवान् का स्पर्श होता रहता है तथा नाम भगवान् का ही सत्संग सुनता रहता है। दोनों साथ–साथ में होते रहते हैं। सत्संग सुनना तथा नाम जप होना। संसार का स्मरण तो होता नहीं है। अतः इस समय में माला जपना श्रेयस्कर है। माला निर्जीव अर्थात् जड़ नहीं है, सजीव है तब ही तो माया से छुड़ा सकती है। शास्त्र इस अवस्था के हेतु बोल भी रहा है–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

यहाँ पर कुभाव शब्द आया है अर्थात् बिना मन से हरिनाम जपने से है तो संत के सत्संग में बैठने से तो कुभाव भी नहीं है, भाव से है क्योंकि नाम भगवान् के संबंध में ही संत की चर्चा हो रही है। इसमें हरिनाम जपने में क्या नुकसान हो सकता है?

बहुत से संत अपने सत्संग में माला जपने पर नाराजगी प्रकट करते हैं। कई संत मना नहीं करते। देखा जाये तो संत का सत्संग तो सुनते ही हैं, फिर मना करना व्यर्थ है। नाम जप भी हो रहा है और सत्संग सुनना भी हो रहा है। दोगुना लाभ बन रहा है। मेरे श्रीगुरुदेव तथा भारती महाराज तो कभी–कभी सत्संग सुनने पर माला बंद नहीं करवाते हैं। **माला भी जपो, सत्संग भी सुनो।** इसमें नुकसान होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

तुलसी माला चिन्मय वस्तु है तब ही तो भगवान् से मिला देती है। यदि अलौकिक न हो तो माया से कैसे छुड़ा सकती है? साधक में यह बड़ी कमी है कि गुरु प्रदत माला को एक साधारण सी तुच्छ वस्तु समझता है। अतः इससे माला का अपमान निरादर करता रहता है तो माला इसको हरिनाम में मन लगाने नहीं देती। कितनी ही माला जाप करो केवल भार स्वरूप ही जप होता रहेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी भी हर समय नाम जप पर जोर दिया करते थे। सभी को आदेश देते रहते थे कि खाते–पीते, सोते–जागते, चलते–फिरते, काम–काज करते कभी भी हरिनाम जाप बंद मत करो। सदैव हरिनाम जपते रहो।

शौच करते समय श्रीगौरहरि तो अपनी जीभ को पकड़ कर रखते थे। श्रीगौरहरि की आदत ही ऐसी पड़ गई थी कि इनकी जिह्वा कभी नाम लिये बिना रुकती ही नहीं थी। श्रीगौरहरि के सेवक ने ऐसा बोला है कि शौच के समय मौत आ जावे तो मानव जन्म बेकार हो जावे तो उसे गौरहरि ने गुरु की पदवी दी है। हरि भक्ति विलास में लिखा है केवलमात्र भगवान् का एक नाम, वह यदि शुद्ध वर्ण, अशुद्ध वर्ण अथवा खंडित या अधूरा भी हो तो भी वह नाम ग्रहणकारी का उद्धार करता है। भगवान् तो भावग्राही हैं। अन्तर्यामी हैं। नाम कैसे भी उच्चारण हो, लाभ ही लाभ है। नाम भार स्वरूप भी कल्याणप्रद है। नाम जिह्वा से छूना ही काफी है। अजामिल इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

जीभ से नाम का स्पर्श होना परमावश्यक है। इसका लाभ अकथनीय है। श्रीगौरहरि स्वयं भगवान् हैं। भक्त बनकर साधक को स्वयं शिक्षा दे रहे हैं।

भाव–कुभाव अनख आलसहुँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

नाम का, जीभ का स्पर्श दसों दिशाओं में मंगल विधान कर देता है। दिशाएँ भी दस ही होती हैं। फिर अमंगल होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दस से अधिक दिशायें कहीं पर होती ही नहीं हैं। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो गया है कि सत्संग जहाँ भी होता है वहाँ पर जापक अपनी माला बैठकर जप कर सकता है। इसमें कोई नुकसान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। मना करना एक प्रकार से अपराध ही है क्योंकि मना करने वालों ने हरिनाम पर रोक लगा दी। हरिनाम पर रोक लगाना अपराध ही है। यह एक साधारण सी बात है।

इस रोक में छुपी हुई प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर हो रही है। उसी कारण माला जपने वालों पर रोक लगाई जाती है। लेकिन यह उचित जान नहीं पड़ती। धर्मशास्त्र हरिनाम पर किसी भी दशा में रोक नहीं लगाते। हर क्षण करने का आदेश देते रहते हैं। यहाँ तक कह दिया–

विवसहुँ जासु नाम नर कहहिं, जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।

यदि किसी को जबरदस्ती भी नाम उच्चारण करवा दें तो उसके जन्मों के रचे–पचे पाप भी जल कर भस्म हो जाते हैं। रचे–पचे पाप कैसे होते हैं ? जब कोई निर्दयी किसी जानवर को अधमरा करके तड़पाता है तो कोई दयालु उसे कहता है कि इसको क्यों तड़पा रहा है तो वह कहता है इसे तड़पाने में मुझे आनंद आता है। ऐसे निर्दयी को एक बार नाम उच्चारण करवा दें तो उसके भी अनेक जन्मों के पाप जल कर भस्म हो जाते हैं। तो नाम जपने से रोकना कितना खतरनाक है ? कई लोग कहते हैं मन तो एक है, सत्संग सुनते समय नामजप कैसे हो सकता है ? बात तो

ठीक है मन तो एक तरफ ही होगा लेकिन हरिनाम पर यह बात सिद्ध नहीं होती क्योंकि हरिनाम, बिना मन भी, लाभप्रद होता है। नाम का जीभ से स्पर्श होना ही काफी है। जैसे अग्नि का बेमन से स्पर्श भी अग्नि का प्रभाव बन जाता है अर्थात् उसका जलाने का स्वभाव है। इसी प्रकार जीभ का, बिना मन हरिनाम स्पर्श भी, मंगलकारी हो जाता है क्योंकि नाम का स्वभाव ही कल्याणप्रद है। नाम और नामी क्या अलग–अलग है ? दोनों एक ही हैं अर्थात् जीव आत्मा का स्पर्श भगवान् से होगा तो स्वतः ही मंगल विधान बन ही गया।

नाम जाप के प्रति कोई भी किंचित्मात्र भी विरोधाभास नहीं है। नाम एक अलौकिक शब्द है, अमृतमय, रसमय सिंधु है। इस पर दोषारोपण करना जघन्य अपराध है। जो करता है, उसका मार्ग कंटकमय बन जाता है। वह कभी भगवत् की हवा भी महसूस नहीं कर सकता। अपनी बुद्धि लगाना विष सिंधु में डूबना है।

उक्त सभी चर्चा मेरे श्रीगुरुदेव के मुखारविंद से निष्कासित हुई है। इसे जो अपनायेगा, सुख सिंधु को पायेगा। भगवान् ने चर–अचर प्राणियों को जन्म दिया है। अनंतकोटि अखिल ब्रहमांडों में कोई ऐसा पदार्थ नहीं, जो भगवान् की सृष्टि के बाहर हो। अतः सभी चर–अचर प्राणी भगवान् के दास या पुत्र समान हैं। **भगवान् को उपलब्ध करने हेतु दो ऐसे ऊँचे शिखर हैं जिनको पार करना साधक के लिए बहुत ही दुष्कर है। एक तो मूल अड़चन है–गुरु प्रदत्त जपने की माला का निरादर का अपराध। दूसरा है–नामापराध। इन दो अड़चनशील अपराधों के कारण अरबों–खरबों में कोई एक साधक भगवान् के चरणों में पहुँच पाता है। सभी माया के जाल में फँसे पड़े हैं।**

परमहंस सन्त ही एक ऐसा ज्ञानी है जो इन प्राणियों को भगवत् चरण में ले जा सकता है। अन्य कोई दूसरा इस सृष्टि में उद्धार पाने का मार्ग नहीं है। यह भी उपलब्धि तब ही हस्तगत

होगी जब गहरी सुकृति साधक को उपलब्ध होगी। ऐसी उपलब्धि भी किसी विरले को ही होती है। हरिनाम में तो इतनी अपार शक्ति है कि जीव अपने जीवन में इतना पाप कर ही नहीं सकता कि नाम उसको जलाकर भस्म नहीं कर दे।

नाम्नोऽस्य चावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कुर्वीत न शक्नोति पातकं पातकी जनः।।

(बृहद्विष्णुपुराण)

श्री हरि के इस नाम में पाप नाश करने की जितनी शक्ति है, उतना पातक, पातकी मनुष्य अपने जीवन में कर ही नहीं सकता। तो नाम पर रोक लगाना कितना खतरनाक है।

राहगीर अर्थात् पथिक ड्राइवर, जिस हरिनाम रूपी गाड़ी में बैठकर वैकुण्ठधाम में जा रहा है। गुरु प्रदत्त तुलसी माला रूपी पटरी, जिस पर गाड़ी दौड़ रही है, इस पटरी को बड़ी सावधानी से देख–रेख एवं सँभाल कर रखें वरना हरिनाम की गाड़ी नीचे गिरकर, उसमें बैठकर जाने वाले पथिक को चकना–चूर कर सकती है। ध्यान से सुनने की रहस्यमयी बात है।

बड़े ध्यान से सुनने की कृपा करें। दुबारा बोलता हूँ :– इसमें माला का निरादर घोषित किया गया क्योंकि **गुरु प्रदत्त माला का निरादर भगवान् को सहन नहीं होता। वह दंड का भागी होगा। श्रीगुरुदेव भगवान् की प्रिय मूर्ति हैं इनकी वस्तु का अपमान भगवान् को कैसे सहन हो सकता है?**

इस हरिनाम रूपी गाड़ी में आध्यात्मिक ज्ञान को उपलब्ध कराने वाले श्रवणकारी बैठकर जा रहे हैं इस लोभ से ताकि हम अपने खास घर, जो वैकुण्ठधाम है, पहुँच सकें।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने साधकों को कई बार गुरु प्रदत्त माला की महिमा वर्णन की है कि हरिनाम जपने की माला जड़ वस्तु नहीं है। निर्जीव वस्तु नहीं है। यह अलौकिक, दिव्य और सजीव वस्तु है। इसका आदर सत्कार करने से ही हरिनाम में मन नियोजित होगा।

इसका निरादर तथा अपमान होने से नाम भगवान् साधक के मन को एकाग्र नहीं करेगा। यदि माला निर्जीव जड़ वस्तु हो तो भगवान् से कैसे मिला सकती है ? ऐसा समझना अपराध है। **जब प्रत्येक माला की 108 मणियों की संख्या पूरी होने पर साधक माला झोली को सिर से छुएगा, हृदय से छुएगा, मुख से चुंबन करेगा तथा माला जपने के बाद शुद्ध जगह स्थापित करेगा तब माला का आदर सत्कार होना समझें।**

जब ऐसी अवस्था होगी तब माला खुश हो जायेगी तो जब भी जापक माला को जपने हेतु माला झोली में हाथ डालेगा तो प्रत्यक्ष में सुमेरु भगवान् उसकी उँगलियों पर आ विराजेगा। साधक को सुमेरु ढूँढना नहीं होगा। सुमेरु स्वयं राधा कृष्ण ही है और दोनों ओर तुलसी की मणियाँ साक्षात् गोपियाँ हैं। गोपियाँ सुमेरु भगवान् को, दोनों ओर से घेर कर, रास रचने हेतु तैयार खड़ी हैं।

जो साधक इस प्रकार से हरिनाम जपेगा उसका मन स्वतः ही सुगमता व सरलता से भगवान् के चरण में लगता रहेगा। संसारी चिंतन की तो हवा भी नहीं छुएगी। न माला उलझेगी, न हाथ से गिरेगी, न टूटेगी। बड़ी आसानी से जप होता रहेगा। प्रेमावस्था का पंचम–पुरुषार्थ हस्तगत हो जायेगा। कोई भी साधक आज़माकर देख सकता है। यदि उक्त अवस्था न आवे तो बोल सकता है। आदर–सत्कार की कमी के कारण ही उक्त अवस्था आने में देर हो सकती है वरना तो सूर्य उगने पर अँधेरा रह ही कैसे सकता है ?

मेरे गुरुदेव सब साधकों को प्रत्यक्ष गारंटी दे रहे हैं। कोई करके तो देखे ! धर्मग्रंथों में ऐसी बातें पढ़ने को नहीं मिल सकतीं। यही श्री गुरुदेव जी का अनुभव का विषय है जो 100 प्रतिशत सत्य होगा। माला अपनी माँ है। माँ का आदर सत्कार होना परमावश्यक है ही। यह साधक को माया से बचाती है। अपने स्तन से अमृत दूध पिलाती है। विषय विष को मन से बाहर करती है। भगवान् ने अपने जन को अपनाने के हेतु, यह माला रूपी गाड़ी, अपने पास

बुलाने हेतु भेजी है। इस पर सवार होकर कोई भी उनके धाम पहुँच सकता है।

मानलो कि पटरी ही न हो तो रेलगाड़ी किसी गंतव्य स्थान पर कैसे पहुँच सकती है? इसी प्रकार यदि तुलसी माला रूपी पटरी ही न हो तो क्या साधक अर्थात् सवार भगवत् धाम तक पहुँच सकता है? स्वप्न में भी नहीं। तुलसी माला यदि निर्जीव हो, अर्थात् जड़ हो तो क्या माया से छुड़ा सकती है? यह तो साधारण सा विचारणीय विषय है कि माला, सजीव भगवान् की, सजातीय शक्ति है तब ही भगवान् से मिला सकती है।

साधक इस माला को सजीव नहीं समझता, इसी कारण भगवत् नाम में मन लगता नहीं है। यह इसका जघन्य अपराध है। साधक 2–2 लाख हरिनाम जपते हैं फिर शिकायत करते हैं कि हमें नाप जप से कोई फायदा ही नहीं दिखाई देता। फायदा कैसे दिखाई दे ? ये नामापराध तथा तुलसी माला का अपमान करते रहते हैं । अतः विरला ही कोई पंचम–पुरुषार्थ प्रेम उपलब्ध कर पाता है। रोग कैसे शांत हो? जब परहेज करते नहीं तो दवा कैसे असर करे ?

श्रीगुरुदेव सभी तरीके साधकों को बता–बता कर थक गये फिर भी साधक अनसुनी करते रहते हैं। इसमें किसका नुकसान है। स्वयं का ही है। इति।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
30.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का चरणों में दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

जन्म–मरण–परण भगवान से निश्चित है

पुनर्जन्मों के कर्मानुसार जन्म–मरण–परण विधाता ने रचा है। कर्म भी जीव आत्मा से तीन प्रकार के हुआ करते हैं। संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म तथा क्रियामाण कर्म। इन कर्मों के अनुसार ही जीव आत्मा का अगला जन्म धारण किया जाता है। वैसे ये कर्म अमिट हैं। इनको बदलना असंभव है फिर भी भगवत् कृपा से ये बदले जा सकते हैं। शास्त्र वचन हैं–**मेटत कठिन कुअंक भाल के।**

भगवत् आराधना एक ऐसा शक्तिशाली कर्म है जो ब्रह्मा के समस्त विधानों को रद्द कर देता है। विधाता भी इसमें कुछ नहीं कर सकता। यह उच्चकोटि का कर्म है। इसके ऊपर कोई कर्म नहीं है। वह है पंचम पुरुषार्थ–भगवत्प्रेम। भगवान् अपना प्रण तोड़ देते हैं, भक्त की बात रख लेते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि यह अवस्था जीव आत्मा को कैसे उपलब्ध हो सकती है। केवल हरिनाम स्मरण से ही। सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग–चारों युगों में भगवत् नाम ही सर्वप्रिय साधन है। भगवत् नाम के अभाव में कोई भक्ति है ही नहीं। **भक्ति का अर्थ है–भगवान् में जीव आत्मा की आसक्ति।**

सतयुग में योगीजन जंगल में, पहाड़ों में एकांत में जाकर, भगवान् से अपना मन जोड़कर, भगवन् नाम की शरणागति पर

आश्रित रहते हैं। सर्दी, गर्मी, बरसात सहते हैं, भूखे–प्यासे रहकर तप में लीन रहते हैं। कोई तपस्वी जल में खड़े होकर भगवान् को नाम उच्चारण से पुकारता रहता है तो कोई अग्नि में अपने तन को कसता है, कोई धूप में खड़ा होकर भगवान् के नाम का उच्चारण करता है। इस तरह कई प्रकार से अपने तन को कष्ट देता रहता है। भगवान् को जबरन अपने पास बुलाना चाहता है।

जिसका साक्षात् उदाहरण है ध्रुव भक्त। नारद जी के उपदेश से पाँच वर्ष की अवस्था में ध्रुव ने घोर तपस्या की। बिना पानी पिये, बिना खाये, केवल हवा पर अपना तन कसता रहा। हवा भी लेना बंद कर दिया तो संसार में रहने वालों का सांस लेना भी दूभर हो गया तो भगवान् को ध्रुव के पास जाना पड़ गया।

भगवान् ने ध्रुव को छत्तीस हज़ार वर्ष का राज दिया क्योंकि आरंभ में ध्रुव की कामना राज पाने की थी। भगवत्–दर्शन के बाद यह कामना भी नहीं रही। परंतु भगवान् तो भक्त की कामना पूरी करते ही हैं। बाद में ध्रुव को एक नया लोक बनाकर उसका नाम ध्रुवलोक रखा। वह ध्रुवलोक ध्रुव को सौंपा। सब लोक उसकी परिक्रमा लगाते रहते हैं। ऐसे ही प्रह्लाद भगवत् नाम के आश्रित रहा। उसके पिता हिरण्यकश्यपु ने प्रहलाद पर अनगिनत अत्याचार, प्रहलाद को मारने हेतु किये परंतु भगवत् नाम के आश्रित रहने के कारण प्रह्लाद का बाल भी बांका न हो सका। स्वयं हत्याकारी ही मौत के घाट गया। **भगवत् नाम का आसरा लेना तथा श्रीकृष्ण का आसरा लेना एक ही बात है।**

निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवत् नाम ही अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में एक अमोघ दुस्तर शक्ति है कि नाम भगवान् को कोई शक्ति विजय नहीं कर सकती जो भी इसका सामना करता है स्वयं ही मौत के घाट चला जाता है।

इसी प्रकार त्रेतायुग में भी कई प्रकार के यज्ञों द्वारा भगवत् आराधना करनी होती है। यज्ञों के समापन हेतु पूरी दुनिया पर विजय करनी पड़ती है। जब विजय हो जाती है सभी यज्ञ करने

वाले की हर प्रकार की सहायता करते हैं। तब यज्ञ पूरा समापन पर पहुँचता है। इसमें भी भगवत् नाम की आहुति देनी होती है। भगवत् नाम के बिना तो कोई भी युग का साधन है ही नहीं।

इसी प्रकार द्वापर युग में भी निर्मल ह्रदय अर्थात् मन से भगवान् के विग्रह का अर्चन–पूजन होता है इसमें भी भगवत् नाम के अभाव में अर्चन–पूजन का नाम निशान ही नहीं है। गौरहरि के कथनानुसार, एक लाख हरिनाम लेना परमावश्यक है।

कलियुग में तो केवल हरिनाम स्मरण ही सर्वोत्तम साधन है। इसमें कहीं पर जाने की आवश्यकता है ही नहीं। जहाँ पर हो, जिस समय में हो, जिस अवस्था में हो, बेफिकर होकर हरिनाम स्मरण करने में लीन रह सकते हैं। इसमें कोई खर्चा नहीं, सर्दी, गर्मी बरसात की कोई बाधा नहीं। सभी सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं। बड़ी सरलता व सुगमता से हरिनाम स्मरण हो सकता है। भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

यदि पूर्ण श्रद्धा विश्वास जीव आत्मा की बन जाये तो हरिनाम स्मरण करने के अलावा कुछ भी साधन करने की आवश्यकता नहीं है। शास्त्र का वचन है–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
राम नाम की औषधी जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग आवे नहीं महा रोग मिट जाय।।
अच्युत अनंत गोविंद नामोच्चारण भेषजात।
नश्यन्ति सकला रोगा, सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

शास्त्रीय वचन सत्य तथा अमिट होते हैं यदि कोई साधक इन पर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास कर ले तो इसी जन्म में भगवत् धाम उपलब्ध किया जा सकता है तथा जन्म–मरण का दारुण कष्ट मिटाया जा सकता है।

अनेक जन्मों के संचित कर्म तो भगवान् के सामने आते ही जलकर भस्म हो जाते हैं।

सनमुख होय जीव मोय जबहिं। जन्मकोटि अघ नासहिं तबहिं।।

हरिनाम, निरपराध जपने से प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं। शुभ मार्ग पर चलने से क्रियमन कर्म, (वर्तमान स्थिति) समाप्त हो जाते हैं। कर्म ही से सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण का स्वभाव बनता रहता है। यदि कर्म ही भगवान् के प्रति बन जाये तो कर्म का बीज ही नाश हो जाये।

जब जीव आत्मा का निर्गुणवृत्ति का स्वभाव उदय हो जायगा जब कर्म ही नहीं रहेगा तो स्वभाव भी निर्मल बन जायेगा अर्थात् जीव मात्र पर दया भाव उदय होकर उपकार में मन नियोजित हो जायेगा। यहाँ अहंकार का नाश स्वतः ही हो जायेगा। कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा का नामोनिशान ही नहीं रहेगा। यही है परमहंस अवस्था, निर्गुण अवस्था, चिन्मयी अवस्था।

यह स्थिति केवल हरिनाम स्मरण से ही आती है। यदि नामापराध तथा गुरु प्रदत्त माला का अपराध न हो तो फिर भक्ति मार्ग निष्कंटक बन जाता है। जो भी इसका संग करेगा, इसी रंग में रंग जायेगा। विभीषण को हनुमान जी का क्षणिक संग मिला तो मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम जी से भेंट हो गई। जबकि उसका वास कंटीले कांटों पर था लेकिन संत का मिलन बेकार नहीं जाता पर संत सच्चा और निर्लोभी होना चाहिये। शास्त्र का वचन है–

बिनु हरि कृपा मिले नहि सन्ता

जब साधक की सुकृति होगी तब ही भगवत् कृपा इसके पीछे आवेगी। जब सुकृति नहीं होगी तो भगवत् कृपा भी नहीं होगी। तो साधक का मंगल कैसे होगा? लेकिन मंगल भी होगा। कैसे होगा? **हमारे जितने भी सच्चे, भगवत् प्रेमी गुरुवर्ग हुये हैं, हरिनाम करते हुये उनका चिन्तन करने से, भगवत् कृपा को जबरन आना पड़ेगा। क्योंकि भगवान् हमारे गुरुवर्ग के आदरणीय**

हैं तथा उन्होंने अपने भक्ति से भगवान् को अपना बना रखा है तो भगवान् उनके आश्रित हैं।

जैसा कि भागवत–पुराण में जय–विजय के प्रसंग में भगवान् ने स्वयं अपने मुखारविंद से बोला है कि मैं तो भक्तों का खरीदा हुआ गुलाम हूँ। जिन्होंने मेरे लिए सब कुछ त्याग रखा है। अतः निष्कर्ष निकलता है कि साधक सच्चा संत कहाँ से लावे? जब भगवत् कृपा ही नहीं होगी। भगवत् कृपा के बिना सच्चा संत उपलब्ध होता नहीं।

तो एक सरल व सुगम रास्ता है जो भी सच्चे संत, गुरुवर्ग के रूप में भूतकाल में हुये हैं, उनका चिंतन किया जाये तो भगवत् कृपा उस चिंतन के पीछे आनी शुरु होगी। भगवत कृपा रुक नहीं सकती क्योंकि साधक ने भगवत् प्यारे संतों का आसरा लिया है तो भगवान् को ऐसे साधकों पर जबरन कृपा करनी ही पड़ेगी।

चिन्तन एक ऐसा चिन्मय मार्ग है कि इस चिंतन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष ही प्रगट हो जाते हैं। बिना चिंतन के कोई भाव उदय हो ही नहीं सकता। जब माया के विकार ही उदय हो जाते हैं तो क्या अलौकिक भगवत् संबंधी, संत चिंतन से, प्रेम विकार उदय नहीं होगा ? ऐसा हो नहीं सकता। प्रेम उदय हुये बिना रह नहीं सकता। अन्तःकरण का चिन्तन ही सर्वोप्रिय होता है। वह चिंतन माया संबंधी हो या भगवत संबंधी हो, कोई भी हो, अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता।

बात यह है कि सच्चे संत को लाना नहीं पड़ता। चिंतन से सच्चे संत स्वयं प्रगट हो जाते हैं। जहाँ सच्चे संत प्रगट हो वहाँ भगवान् का प्रगट होना परम आवश्यक हो जाता है। भगवान् को प्राप्त करना बहुत सहज है। साधक का मन होना चाहिये। साधक का मन तो संसार में है तो भगवान् में कैसे हो सकता है ? केवल कपटमय व्यवहार से साधक का जीवन चल रहा है। फिर शिकायत करते रहते हैं कि हमारा मन हरिनाम में लगता ही नहीं है। माला भी डेढ़–दो लाख जप लेते हैं परंतु कोई लाभ प्रतीत नहीं होता।

लाभ कैसे मालूम होगा जब मन ही दूसरी ओर रम रहा है। मन तो स्वयं भगवान् है इस मन भगवान् को संसार में फँसा रखा है तो हरिनाम भगवान् साधक के पास कैसे प्रगट होगा ?

श्रीगुरुदेव हर प्रकार से समझा–समझा कर थक गये परंतु मानव की अनसुनी करने की भी हद हो गई। लेकिन गुरुदेव फिर भी पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। अन्तःकरण की वृत्ति को आध्यात्मिक मार्ग में चलावो तो सब साधन सरल व सुगम बन जायेगा। इस वृत्ति को माया मार्ग में लगा रखा है तो सत्य, सुखमय मार्ग कहाँ से मिल सकेगा ? यही तो अज्ञान साधकों को परेशान कर रहा है। यह अज्ञान गुरुवर्ग के चिंतन से दूर हो सकता है। हरिनाम जपते हुये चिंतन किया जाये तो ज्ञान का दीपक अन्तःकरण में जल जायेगा। जब ज्ञान का दीपक अन्तःकरण में जल जायेगा तो सब बखेड़ा ही हट जायेगा।

भक्त चिन्तन का मसला इतना है कि साधक अपने जीवन में कर ही नहीं सकता। जैसे सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग के अनगिनत संत हैं उनका चिंतन कर सकते हैं। जैसे नारदजी, सनकादिक मुनि, नवयोगेश्वर, ईश्वरपुरी, माधवेन्द्रपुरी, विभीषण, हनुमान जी, ध्रुव, अम्बरीश जी, प्रहलाद जी, सुदामा, सूरदास जी, तुलसीदास जी, कबीरदास जी, रूप–सनातन, गौर किशोरदास बाबा, भक्ति विनोद ठाकुर, ए. सी. भक्ति वेदांत स्वामी, नरोत्तम ठाकुर कितने को बताया जाये। कोई गिनती नहीं है। फिर भी साधक चिंतन करने को ढूँढता रहता है कि मन ही नहीं लगता। मन है ही नहीं, मन कैसे लगे ? जहाँ चाह, वहाँ राह मौजूद रहती है। सब बहानेबाजी है। बताने वाले भी क्या करें, कोई सुनने को तैयार ही नहीं। यह मानव जन्म व्यर्थ में ही जा रहा है। फिर मिलने वाला है नहीं। रोता हुआ जायेगा, दुःख सागर को पायेगा। हाथ कुछ नहीं आयेगा। अंत समय पछतायेगा। अब भी समझ ले, तो कुछ मिल जायेगा।

जैसे हमारे गुरुदेव अब हैं नहीं, गोलोकधाम पधार गये तो क्या

अब हमारे पास हमारे गुरुदेव नहीं हैं। जब याद करो हमारे गुरुदेव हमारी मंगल कामना करने को तैयार रहते हैं। हमारे अंदर ही कमी है। हममें श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं। धर्मशास्त्र इसका प्रमाण हैं।

श्रीगुरु पदनख मणिगण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
उघरहि विमल विलोचन हिय के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।
सुझहिं राम चरित्र मणि माणिक।
गुप्त प्रगट जो जेहि खानिक।

क्या हमारा शास्त्र झूठ बोल रहा है ? कोई भी आजमा कर देख सकता है। हरिनाम की आठ माला मानसिक रूप से गुरु चरणों में बैठकर स्मरण करे तो कुछ समय बाद सात्विक विचार हृदय में उदय हो जायेंगे।

श्रीगुरु चरण की नख ज्योति जपने वाले को आलोकित कर रही है। इस आभा से जपने वाला सराबोर हो रहा है। हमारे गुरुवर्ग की पुस्तक जो भजन गीति है, उसमें भी श्रीगुरुदेव का चिंतन करने की महिमा बताई गई है। देख सकते हो पेज नं 17 पर अंकित है। यदि चिन्तन में कमी होती तो धर्मग्रंथ चिन्तन की महिमा नहीं गाते। चिन्तन ही सर्वोप्रिय है। **चिंतन के अभाव में न संसारी कर्म हो सकता है न आध्यात्मिक कर्म हो सकता है। भगवान् ने अन्तःकरण को चिन्तन करने हेतु ही निर्माण किया है। यह चिंतन माया संबंधी या फिर भगवत् संबंधी भी हो सकता है। माया संबंधी दुःख का कारण है एवं भगवत् संबंधी परम सुख का कारण है।**

गुरु प्रदत्त तुलसी की माला यदि जड़ हो तो माया को कैसे दूर कर सकती है ? भगवान् से कैसे मिला सकती है ? जापक इसे निर्जीव समझ लेता है इसी कारण हरिनाम में मन नहीं लगता। क्योंकि हरिनाम स्वयं भगवान् है। तुलसी मैया का निरादर करने से भगवान् कैसे जिह्वा पर नाच सकता है ? यही जापक का महान्

अपराध है। इस कारण भगवान् और भगवान् के नाम में कोई भेद या अंतर नहीं है। यह बात जापक समझता नहीं है अतः भगवत् प्रेम से वंचित रहता है। कोई प्रवचनकार इतनी गहराई तथा तथ्य को श्रवणकारियों को समझाता नहीं है। केवल भगवत् लीलाओं का वर्णन कर देता है। अतः जो भगवान् के पास पहुँचने का मार्ग है, यह मेरे गुरुदेव जी ही कृपा कर साधकों को बताते रहते हैं। अब मार्ग को कोई अपनावे ही नहीं तो गुरुदेव का क्या दोष है?

माला के बारे में बारंबार बोलना बहुत ही जरूरी है क्योंकि माला ही भगवान् को प्राप्त करने का मूल मार्ग है, अन्य मार्ग सब गौण स्थिति में आते हैं।

यह प्रत्यक्ष प्रमाण सभी जापकों के सामने प्रगट है ही कि श्री गुरु प्रदत्त माला सजीव तथा जाग्रत होने से, माला झोली में हाथ डालते ही जापक की उँगलियों पर सुमेरु भगवान् प्रगट हो जाता है। यदि जापक माला का आदर–सत्कार करता रहता है तो। पर यदि माला का निरादर होता है तो माला झोली में हाथ डालने पर सुमेरु भगवान् को टटोलना पड़ता है। ऐसा अनुभवी ज्ञान सभी साधकों को होता नहीं है। सभी प्रवचनकार धर्मग्रंथों से जो भी उपलब्ध होता है, अपने प्रवचन में श्रवणकारियों को बोल दिया करते हैं। यही तो मेरे गुरुदेव की असीम कृपा है जो भगवान् की सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा छुपी हुई गूढ़ बातें भी वर्णन कर दिया करते हैं। तब ही तो भगवान् मेरे गुरुदेव जी को उलाहना देते रहते हैं कि **यह माधव (श्रील भक्तिदयित माधव महाराज) तो मेरे न कहने योग्य, रहस्यमयी छुपे हुये प्रसंगों को, सभी को बताकर मेरी पोल खोलता रहता है। लेकिन मैं कर भी क्या सकता हूँ? माधव ने तो मुझे प्रेम रज्जु से बाँध रखा है। मैं इसे मना भी नहीं कर सकता। मजबूर हूँ। इसने मेरे पास पहुँचने का सरल, सुगम मार्ग सभी को बता दिया। फिर भी मैं समझता हूँ कि कोई विरला ही इस मार्ग पर चलता है। सभी माया की चक्की में पिस रहे हैं। इसका खास कारण है–मेरा प्रेमी संत। कोई विरला ही है, जिसका संग मिलना बहुत ही असंभव है।**

भगवान् बोल रहे हैं कि–ऐसे रहस्यमयी गुप्त प्रसंग, मेरे शास्त्रों में कहीं न कहीं अंकित हैं। बिना अंकित प्रसंग किसी के अन्तःकरण में आ ही नहीं सकता। धर्मग्रंथ भी अनगिनत हैं। कई करोड़ों में हैं, अरबों में हैं जो अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में मौजूद हैं जिनका अवलोकन करना किसी अंश में भी नहीं हो सकता। लेकिन मेरी कृपा से, न पढ़ा हुआ प्रसंग भी, मैं मेरे प्रेमी भक्त के हृदय में प्रगट कर देता हूँ। अंदर की छुपी हुई अनुभूति मेरे प्रेमी भक्त के अन्तःकरण में उदय हो जाया करती है। मैं, मेरे भक्त को बुद्धियोग का ज्ञान दे देता हूँ।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गीता 10.10)

भगवान् बोल रहे हैं कि **इसमें कोई भी शंका न करे वरना अपराध का भागी बन जायेगा। इसी कारण से मैं साधकों को सावधान व सतर्क कर रहा हूँ। साधकों का शंका करना अपने भक्ति मार्ग से च्युत होना है। कोई विरला ही पूर्ण श्रद्धावान् होता है। अधिकतर मार्ग में अटक जाते हैं। शास्त्रों ने बोला है कि करोड़ों–अरबों साधकों में कोई ही विरला सुकृतिवान ही मेरे धाम में पहुँच पाता है। अधिकतर रास्ते में ही अटक कर रह जाते हैं। यही तो मेरी माया का खेल है। मेरी माया को पार करना बड़ा दुस्तर है। केवलमात्र सच्चे संत की कृपा ही इसमें सहायक है जिसने कंचन, कामिनी तथा प्रतिष्ठा की ओर से अपना मुख मोड़ रखा है। इनसे मुख मोड़ना बड़ी टेढ़ी खीर है।**

ठाकुर जी की, जो भी अर्चन–पूजन की सामग्री है, सभी सजीव व चिन्मय होती है। जो पुजारी, इनको निर्जीव, ताँबा पीतल आदि की समझता है, उसका अर्चन–पूजन ठाकुर जी स्वीकार ही नहीं करते। उस पुजारी के लिये ठाकुर जी पत्थर व अन्य धातु के ही बने रहते हैं। यदि पुजारी ठाकुर जी की वस्तुओं को चिन्मय रुप से देखता है, समझता है तो ठाकुर जी उस पुजारी से बातें करते हैं, स्वप्न में आदेश देते हैं। माधवेन्द्रपुरी जी के लिये, ठाकुर जी ने

पुजारी को आदेश दिया कि मेरे भक्त माधवेन्द्रपुरी को, एक सिकोरा अमृतकेली खीर का, जो मैंने अपने आसन में छुपा रखा है, उन्हें बाज़ार में ढूँढकर, देकर आओ। पुजारी से ही ठाकुर जी प्रत्यक्ष में सजीवता धारण किये रहते हैं।

जो पुजारी एक लाख हरिनाम नित्य स्मरण सहित करता रहता है, उसकी मन की आँखे खुली रहती है और जो पुजारी नित्य एक लाख हरिनाम नहीं जपता, उसकी मन की आँखे माया निर्मित रहती हैं। तब पुजारी ठाकुर जी को पाषाण का समझकर ठाकुर जी की चोरी में लिप्त हो जाता है। जो भी ठाकुर जी का भोग बनता है, उसे ठाकुर जी ग्रहण करते नहीं और तो आश्रितजनों को ठाकुर जी का महाप्रसाद उपलब्ध होता नहीं। आश्रितजन भी भगवान् भक्ति से वंचित ही रहते हैं। अतः उनके ह्रदय में दुर्गुणों का वास हो जाता है। वे ईर्ष्या, द्वेष में लिप्त हो जाते हैं। ठाकुर सेवा भी भार स्वरूप बन जाती है। हरिनाम के अभाव में दुर्गुण आना स्वाभाविक है ही इसलिये पुजारी नामनिष्ठ ही रखना उचित व श्रेयस्कर है। वहीं पर भक्ति महारानी का नृत्य होता रहता है।

''जीवो जीवस्य भोजनम्,'' जीव ही जीव को खाता है। जीव ही जीव का भोजन है। ऐसा क्यों है? इसका खास कारण है कि जिस जीव को जीव खाता है, उसने भी कभी उस जीव को दुख व कष्ट दिया है, उसे खाया है। कोई भी कर्म वह चाहे शुभ हो या अशुभ, उसका भोग उसे अवश्य भोगना ही पड़ेगा। एक जानवर को दस जानवर घेर कर उसके ऊपर लिपट जाते हैं और उसका मांस खाते रहते हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसका खास कारण है कि जिस जानवर को घेरकर खा रहे हैं, उसने भी कभी इनको लिपट कर खाया है। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। अतः मानव समझदार होकर भी मांसाहारी बना हुआ है। इसका कारण है–अज्ञान। इसी कारण सत्संग की विशेष आवश्यकता रहती है ताकि इसकी अज्ञान की आँखे सत्संग सुनकर ज्ञान की आँखे खुल सकें। इसी कारण धर्मग्रंथों में सत्संग का सर्वोत्तम महत्व बताया गया है। लेकिन यह

सुकृति के अभाव में उपलब्ध नहीं होता। सुकृति सबसे अधिक होती है किसी सच्चे संत की सेवा से। अन्य की सेवा गौण रहती है एवं संत की सेवा मुख्य होती है क्योंकि संत भगवान् का प्यारा होता है। भगवान् के प्यारे का कौन बाल बाँका कर सकता है ? भगवान् से ऊपर तो कोई शक्ति है ही नहीं।

मेरे श्री गुरुदेव का प्रत्यक्ष आदेश है–

हरिनाम में मन क्यों नहीं लगता है ? इसका खास कारण है गुरु प्रदत्त माला का निरादर। इसको जपने हेतु हाथ में ले कर मस्तक पर लगावें, हृदय से लगावें तथा माला मैया जो हमें हरिनाम रूपी अमृतमय अपने स्तन से दूध पिलाती है, माला मैया के चरणों का चुंबन करो। तब समझो कि माला का आदर–सत्कार हो रहा है। तब प्रत्यक्ष प्रमाण जपने वाले को उपलब्ध होगा कि जब भी माला जपने हेतु माला झोली में हाथ डालोगे तो सुमेरु भगवान् हाथ डालते ही जपने वाले की ऊँगलियों पर विराजित हो जायेगा। आज़मा के देख सकते हो, ऐसा ही होगा।

एक साधारण सी समझने की बात है कि गुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है तो भगवान् जपने वाले की जिह्वा पर आ ही नहीं सकते क्योंकि माला का अपराध हो रहा है। श्रीगुरुदेव जिसने माला शिष्य को जपने हेतु दी है, भगवान् की प्रियमूर्ति है। भगवान् को माला का निरादर कैसे सहन हो सकता है?

विचार करने की बात है यदि माला निर्जीव हो, जड़ हो, तो क्या निर्जीव वस्तु माया से छुड़ा सकती है? भगवान् से मिला सकती है? अज्ञान की भी हद हो गई। **जापक माला को एक साधारण वस्तु समझकर माला का अपमान करता रहता है। अतः कितनी संख्या में माला जपे, मन स्वप्न में भी नहीं लग सकता क्योंकि मन स्वयं भगवान् है। भगवान् कैसे जिह्वा पर आ सकेगा।**

प्रथम मूल अपराध तो माला का ही होता रहता है। दूसरा मूल अपराध तो नामापराध का होता रहता है जिसे मेरे गुरुदेव बोल रहे

हैं। यदि भगवान् को उपलब्ध करना चाहो तो माला का कभी निरादर, अपमान भूलकर भी न करो। माला खोने पर तो बहुत बड़ा अकथनीय अपराध हो जाता है अतः गले से माला दूर न करो। बैग में रखने से बैग खो भी सकता है, तो माला जा भी सकती है। माला भी जब ही खोती है जब जापक से जघन्य अपराध हो जाता है। माला टूटने से भी अधिक जघन्य अपराध होता है। खो जाने पर भी श्रीगुरुदेव भी बहुत नाराज हो जाते हैं क्योंकि माला खोना भगवान् से बहुत दूर होना है।

गुरु प्रदत्त माला को जापक एक मामूली साधारण वस्तु समझकर माला का अपमान करता रहता है, फिर बोलता है, हरिनाम में मन नहीं लगता। मन कैसे लगे ? मन तो स्वयं भगवान् है तथा तुलसी माला भगवान् की हृदयस्पर्शी प्यारी देवी हैं। भगवान् को इनका निरादर स्वप्न में भी सहन नहीं हो सकता।

गुरु प्रदत्त माला को जापक, हीरा, मोती, पन्ना, जवाहरात, रुपये इत्यादि से भी मूल्यवान् समझकर, आदर सत्कार करते हुये, अपनी छाती से लगाकर संभाल कर रखे। हीरा, मोती, पन्ना, जवाहरात, तो एक प्रकार से मिट्टी ही हैं। यह मिट्टी तुम्हें क्या सुख दे सकती है? माला ही सुख का उद्गम स्थान है। इसको प्यार से अन्तःकरण में छुपाकर रखो। माला सजीव तथा अलौकिक होने से साधक पर प्रसन्न होती है। जब साधक तुलसी माला मैया को अलौकिक प्यार देगा तब ही तो सुमेरु भगवान् साधकों की उँगलियों पर आकर विराजेगा। यदि माला मैया जड़ या निर्जीव होती तो क्या माला मैया की ऐसी सजीव हरकत होती ? सुमेरु को टटोलना पड़ता तथा बेमन के जप से माला उछलती, उँगलियों से छूटती, गन्दे विचार से टूटती, माया से छुड़ाती, भगवान् से मिलाती ! यह जापक को अपने हृदय में पक्का कर लेना चाहिये कि वास्तव में माला मैया सजीव है। नाम भगवान् की अत्यंत प्यारी है।

– हरिबोल –

23

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
03.01.2012

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की प्रार्थना।

गुरु, वैष्णव, भगवान् तथा वृन्दादेवी की कृपा ही सर्वोपरि है

गुरु, वैष्णव, भगवान् तथा वृन्दादेवी की कृपा ही सर्वोपरि है। इन चारों के अभाव में भक्त–साधक पर कृपा नगण्य है। भक्त–साधक पर जब इन चारों की कृपा होगी तब ही उसका भक्ति–मार्ग निष्कंटक होगा। इनमें से यदि एक की भी कृपा की कमी रह गई तो भक्ति–मार्ग निष्कंटक नहीं हो सकता। इन चारों में भी यदि तुलसी मैया की प्रसन्नता नहीं है तो बाकी तीनों भी भक्त को भक्ति देने में सक्षम नहीं होते। ये तीनों भी पंगु रहते हैं। जीव आत्मा को अपने पास बुलाने हेतु भगवान् ही गुरुरूप में आते हैं। गुरुदेव के बिना किसी भी विषय का ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। गुरुदेव ही शिष्य का पालक है, जन्मदाता है तथा ज्ञानदाता है। इसलिये शास्त्र बोल रहा है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

श्रील गुरुदेव के वचनों के आदेश का पालन करना ही शिष्य का परम कर्तव्य है। श्रील गुरुदेव की यही महत्वशील सेवा है। श्रीगुरुदेव के वचनों का पालन न करना, श्रीगुरुदेव के चरणों में जघन्य अपराध है।

श्रील गुरुदेव कैसे होने चाहियें? उनका स्वभाव कैसा होना चाहिये?

जो निर्लोभी हो। कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से बहुत दूर अपना जीवनयापन कर रहा हो। समस्त धर्मग्रंथों के सार में प्रवीण हो। प्रत्येक शंका का समाधान करने में कुशल हो। सरल हो। दया की मूर्ति हो। एकान्तवासी हो। स्वादु न हो। मृदुभाषी हो। संतोषी स्वभाव का हो।

ऐसा गुरु मिलना अतिदुर्लभ है। किसी अति सुकृतिशाली मानव को स्वयं भगवान् ही ऐसे गुरुरूप में आकर अपनाते हैं। कलिकाल में ऐसा गुरु उपलब्ध होना बहुत ही दुस्तर (मुश्किल) है। अधिकतर स्वादु–गुरु ही विचरते रहते हैं। ऐसे गुरुओं का शिष्यों पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं होता। शिक्षा–गुरु भी वैष्णव होते हैं। उनका भी दीक्षा–गुरु के समान ही आदर, सत्कार व सेवा करना उचित है। जो निर्लोभी हो, खुद आचरणशील हो, वही दूसरों को आचरणशील बना सकता है। ऐसे आचरणशील शिक्षा गुरु भी बहुत ही कम हुआ करते हैं। ज्यादातर स्वादु और पैसे के पीछे दौड़ने वाले होते हैं। श्रवणकारियों पर इनके प्रवचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भगवान् पर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास होना साधक के लिये परमावश्यक है। इस कलिकाल में लोग भगवान् के अस्तित्व को ही नहीं मानते। भगवान् भी कोई है, ज्यादातर लोग इस बात को नहीं मानते। ऐसे लोगों की भगवान् पर श्रद्धा क्या होगी ? भगवान् पर श्रद्धा व विश्वास बनाने के लिये, एक शुद्ध व सच्चे, वैष्णव संत की संगति होने की परमावश्यकता रहती है तभी भगवान् का अस्तित्व साधक की समझ में आ सकता है, उसके मानस पटल पर अंकित हो सकता है। यदि वृन्दादेवी (तुलसी महारानी) की कृपा नहीं होगी तो गुरु–वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। वे सभी असमर्थ रहते हैं।

विदेशों में भगवान् के अस्तित्व को लोग नहीं मानते। भारतवर्ष के सच्चे संत ही वहाँ जाकर उनको भगवान् के बारे में जानकारी देते हैं। भगवान् के अस्तित्व पर गहरी चर्चा करते हैं। तब ही

विदेशियों को भगवान् का अस्तित्व समझ आता है और वे भारतवर्ष में आकर वैष्णवों व संतों का संग करते हैं। विदेशों में वैभव की कोई कमी नहीं है फिर भी वे परमदुःखी हैं क्योंकि उन्हें दुःख देने वाली वस्तुओं का ही संग मिलता है। वे वैभव की सामग्री को, वस्तुओं को ही सुख का साधन मानते हैं। वास्तव में, इन वस्तुओं में सुख तो लेशमात्र भी नहीं है। केवल भासता (लगता) है कि इन में सुख है। जहाँ सुख का नामोनिशान ही नहीं है, वहाँ सुख कैसे हो सकता है ? जहाँ दुर्गन्ध है वहाँ सुगंध कैसे हो सकती है ?

सुख तो केवलमात्र भगवत्–नाम में है। इस नाम के द्वारा ही दसों–दिशाओं में सुख की सुगंध फैल जाती है। विदेशी लोगों को भगवद्–नाम के इस सुख का पता ही नहीं है। उन्होंने इसके स्वाद को चखा ही नहीं है। खाना–पीना और मौज–मस्ती करना (Eat, drink & be mary) ही उनके जीवन का लक्ष्य है। इसी को वे सुखी जीवन मानते हैं। क्या विषयों में सुख मिलता है ? विषयों में तो विष भरा हुआ है। विष का साम्राज्य चारों ओर फैला हुआ है। यदि विषयों में ही सुख होता तो विदेशों में इतनी बड़ी मात्रा में लोग आत्महत्याएँ नहीं करते।

हरिनाम करने से ही परमानंद की प्राप्ति हो सकती है। हरिनाम करने से संतोष, सब्र व शांति प्रगट हो जाती है। फिर 'हाय–हाय' धाय–धाय का नामोनिशां ही नहीं रहता। ज्ञान का दीपक जल जाता है और अज्ञान का अंधेरा भाग जाता है।

वृन्दादेवी की शरणागति मानव को लेनी ही पड़ेगी। वृन्दादेवी के बिना भगवान् का अस्तित्व ही नहीं रहता। वस्तुतः वृन्दादेवी ही भगवान् का अन्तःकरण है। अन्तःकरण के बिना किसी भी जीवात्मा का अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

यह एक अतिगूढ़ रहस्य है। साधारण साधक की समझ से बाहर है। इसको समझ पाना बहुत कठिन है।

देखो! तुलसी देवी, वृन्दादेवी भगवान् की आत्मावत् हैं। तुलसी

के बिना तो भगवान् हिल भी नहीं सकते। जब तक साधक तुलसी मैया की सेवा से वंचित है तब तक उसके हृदय में भक्ति उदय नहीं हो सकती। हर प्रकार से तुलसी मैया की सेवा करना परमावश्यक है। तुलसी सेवा करते समय मैया के चरणों में अपराध होना सहज है, स्वाभाविक है। इसलिये बड़ी सावधानी से तुलसी मैया की सेवा करनी चाहिये। अपराध होने से भगवद्–भक्ति तो बहुत दूर की बात है, भगवान् के अस्तित्व में साधक का विश्वास ही समाप्त हो जाता है।

यदि मानव की छाया भी तुलसी मैया पर पड़ गई तो जघन्य अपराध बन जाता है। तुलसी महारानी की चार परिक्रमा करना तथा साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना परमावश्यक है। पंचपात्र का बचा हुआ पानी तुलसी में डालना उचित है। तुलसी मैया को जल देना, दण्डवत्–प्रणाम करना परमावश्यक है। द्वादशी के दिन तुलसी पत्र तोड़ना अपराध है। समय–समय पर तुलसी की मंजरियों को तोड़ते रहना चाहिये ताकि तुलसी महारानी बढ़ती रहे। गऊ का गोबर तुलसी की जड़ों में डालते रहना चाहिये। बरसात के दिनों में तुलसी महारानी के पत्तों पर कीड़े लग जाया करते हैं, पत्तों पर हल्दी का चूरा (पाउडर) डालने से कीड़े समाप्त हो जायेंगे। तुलसी के ऊपर या जड़ों में कभी भूलकर भी कोई रासायनिक पदार्थ या तरल पदार्थ का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तुलसीदल को गर्म पानी में या आग में उबालना नहीं चाहिये। तुलसी पत्तों की माला बनाकर ठाकुर जी को पहनावे तथा चरणों में मलयागिरि चन्दन लगा सकते हैं। जब भी तुलसीदल का चयन करना हो तो पहले प्रणाम मंत्र द्वारा दण्डवत् प्रणाम करे–

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि प्रणमामि हरि प्रिये।।

फिर यह मंत्र पढ़ते हुये तुलसी पत्रों का चयन करना चाहियेः–

तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा वर शोभने।।

तुलसी दल चयन करने के बाद फिर दण्डवत्–प्रणाम् करे। इससे तुलसी महारानी प्रसन्नता का अनुभव करती हैं।

श्री तुलसी सेवा के संबंध में श्री भक्तिरसामृत सिंधु (पू. वि.) में मिलता है–

दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्तिता नमिता श्रुता।
रोपिता सेविता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा।।

अर्थात् तुलसी देवी का दर्शन, स्पर्शन, ध्यान, कीर्तन, प्रणाम– तुलसी–माहात्म्य श्रवण, तुलसी–सेवा, जलसिंचनादि सेवन और पूजन–ये नौ प्रकार से तुलसी की सेवा करनी चाहिये।

दोनों समय (प्रातःकाल तथा सायं काल) तुलसी आरती करनी चाहिये। वैष्णवों को तुलसी पत्र देना उचित है। जब अमनिया तैयार हो जावे तो सभी खाद्य–सामग्री में तुलसी पत्र डालें। गर्म दूध इत्यादि का भोग नहीं लगाना चाहिये। जब भगवान् को भोग लगावें तो पानी के एक बर्तन में तुलसी पत्र डालकर भोग–सामग्री के पास रख देवें। फिर हरिनाम करते हुये, घंटी बजाते हुये, पर्दा करके, यह चिंतन करें कि भगवान् भोग लगा रहे हैं। भोग लगाने के बाद, भगवत्–प्रसाद को रसोई घर की खाद्य सामग्री में डालें ताकि सभी कुछ भगवत्–प्रसादी बन जावे। भगवान् द्वारा भोग आरोगने के बाद जब पर्दा खोलें तब भी दण्डवत् प्रणाम करें। जब भगवान् भोजन पालें तब भी ठाकुर जी को बारंबार प्रणाम करने से भक्ति महारानी खुश हो जाती हैं। पर्दा खोलने तथा पर्दा लगाते समय, साष्टांग दण्डवत्–प्रणाम करना बहुत लाभप्रद है। इससे भक्ति बढ़ती है। **एकादशी व्रत का पालन करना सदा ही उचित है। कभी भूल कर अन्न खा लेवें तो भी एकादशी का पालन करें। भूल से अन्न खा लेने को भगवान् अपराध नहीं मानते। एकादशी व्रत का पालन न करने से भक्ति नष्ट हो जाती है। एकादशी के दिन अन्न नहीं खाना चाहिये। बाकी चीज़ें खा सकते हैं। गरीबी में कोई डर नहीं है।**

भगवान् के श्रीविग्रह के सामने किसी को भी प्रणाम नहीं

करना चाहिये। केवल 'हरे कृष्ण' 'जय राधेश्याम' ऐसे बोल सकते हैं। घर पर कोई वैष्णव–संत पधारें तो ठाकुर जी की सेवा छोड़कर भी उनका आदर–सत्कार करना उचित है, उनके चले जाने के बाद सेवा में जुट जायें। साधारण व्यक्ति के आने पर सेवा कभी न छोड़ें और कुछ देर इंतजार करने तथा बैठने के लिये प्रार्थना करें।

याद रखो जब तक संबंध–ज्ञान नहीं होगा, तब तक गोलोकधाम की कभी प्राप्ति नहीं हो सकती। इससे पहले वैकुण्ठ जाना होता है। जिस प्रकार एक कुँआरी कन्या अपने पीहर (मायके) में अपने माँ–बाप के घर में रहती है, जब उसका संबंध किसी युवक के साथ हो जाता है तब वह पत्नि के संबंध में अपने पति के घर में चली जाती है। पीहर में वह एक बेटी थी पर पति के घर में वह उसकी पत्नि है। पति से संबंध होने के कारण अब पीहर उसका घर नहीं है। अब उसका घर, परिवार सब कुछ ससुराल ही है। उसे अब सारी ज़िन्दगी ससुराल में ही रहना है। ठीक उसी प्रकार जब तक इस आत्मा का परमपिता परमात्मा से संबंध नहीं बन जाता तब तक वह गोलोकधाम में नहीं जा सकती। जैसे माता–पिता अपनी बेटी का संबंध तय करते हैं उसी प्रकार साधक–भक्त को संबंध–ज्ञान उसके श्रीगुरुदेव की कृपा से स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। अनंतकोटि ब्रह्मांड हैं और गोलोकधाम भी अनेक हैं। जिस प्रकार का संबंध ज्ञान किसी भक्त का होता है, उसे उसी भाव के गोलोकधाम में जाना पड़ता है। यह संबंध माता–पिता, भाई, सखा, शिशु तथा मंजरी इत्यादि कोई भी हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करने से, हरिनाम करने से वैकुण्ठ मिल जाता है। वैकुण्ठ में जो सुख–सुविधा आनंद उपलब्ध है, वह अकथनीय है। यह जड़ जिह्वा उसे बयान नहीं कर सकती। अनंत चतुर्युगों तक वहाँ रहने के बाद फिर भक्त के घर में जन्म होता है। भक्त के घर में जन्म लेने से, जन्म से ही भक्ति में रत रहने से, प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होने से जीवात्मा का भगवान् श्रीकृष्ण से संबंध हो जाता है और उसे गोलोकधाम में जाना होता है।

पिछले युग में एक जालंधर नाम का राक्षस हुआ है। वह देवताओं को बहुत परेशान करता रहता था। देवताओं ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि आप भगवान् विष्णु को हमारे दुःख, हमारी परेशानी का कारण बताओ। यह राक्षस हमें बहुत दुःखी करता है।

देवताओं की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा जी ने उनकी परेशानी भगवान् श्रीविष्णु को बताई तो भगवान् ने शिवजी को आदेश दिया कि इस दुष्ट राक्षस जालंधर का किसी भी तरह वध करो।

भगवान् शिव ने जालंधर को मारने का बहुत प्रयत्न किया पर वह नहीं मरा। जब विष्णु भगवान् ने उसके न मरने का कारण पूछा तो शिवजी ने कहा–' हे विष्णु! इस राक्षस का वध इसलिये नहीं हो रहा क्योंकि इसकी पत्नि अकथनीय सती है। उसके सतीव्रत के कारण, उसकी तपस्या के कारण इसको मारा नहीं जा सकता। किसी तरह इसकी पत्नि का सतीत्व भंग हो जाये, तभी इसकी मृत्यु हो सकती है ?

भगवान् विष्णु ने विचार किया कि देवताओं के कष्ट को दूर करना तो मेरा धर्म है और उन्होंने जालंधर का रूप धारण करके उसकी पत्नि का सतीत्व भंग कर दिया। जालंधर की पत्नि का नाम था वृन्दा। जब वृन्दा को मालूम पड़ा कि भगवान् विष्णु ने मेरे पति का रूप धारण कर, मेरे से दुराचार किया है तो उसने भगवान् विष्णु को पत्थर होने का श्राप दे दिया। **भगवान् विष्णु ने कहा–"देवि! मुझे तेरा श्राप स्वीकार है पर मुझ पर एक कृपा करो कि मैं निर्जीव न बनूँ।"**

तब वृन्दा ने कहा–"ठीक है! तुम शालग्राम के रूप में पूजित होओगे और मेरी कृपा बिना तुम्हारा जीवन ही नहीं चलेगा। मेरी कृपा बिना तुम सृष्टि की रचना भी नहीं कर सकोगे। मेरी कृपा बिना तुम मेरे बराबर ही रहोगे। तेरा अवतार भक्तों के लिये होता है पर मेरी कृपा बिना तेरे भक्तों का आविर्भाव भी नहीं होगा। मैं दो रूपों में सदा तुम्हारे पास रहूँगी। मेरा एक रूप अदृश्य होगा जो सदैव तुम्हारे संग रहेगा और दूसरा रूप वृक्ष के रूप में

धरातल पर रहेगा क्योंकि मुझे भी वृक्ष होने का शाप पहले किसी युग में मिल चुका है।''

''क्योंकि अब तुम मेरे पति का वध कर दोगे तो मेरा कोई सहारा नहीं रहेगा। मैं कहाँ जाऊँगी ? कहाँ रहूँगी ? अब भविष्य में तुम ही मेरे सहारे होगे। मैं तुम्हारी शरण में ही रहूँगी। तुम्हारे बिना मैं एक पल भी नहीं रह सकूँगी।''

''इस धरातल पर जो मेरा वृक्ष रूप होगा, वह तेरे भक्तों के कारण ही होगा। जो मनुष्य तुम्हारी भक्ति पाना चाहेगा उसे पहले मेरी सेवा करके, मुझे ही प्रसन्न करना होगा। जब तक मेरी कृपा भक्त पर नहीं होगी तब तक भक्त तेरी भक्ति से दूर ही रहेगा और भक्ति के अभाव में तेरा भक्त से संबंध होगा ही नहीं क्योंकि तेरा अवतार ही भक्तों के लिये होता है।''

''मेरी कृपा के बिना एक क्षण भी तेरा जीवन नहीं चलेगा। क्योंकि तुमने मेरे साथ कपट किया है, मुझे धोखा दिया है, इसलिये तुम्हें कर्म का भोग भोगना पड़ेगा। मेरी प्रसन्नता में ही तुम्हारी प्रसन्नता होगी।''

भगवान् बोले, ' हे देवी! तुम जैसा चाहोगी, मैं वैसा ही करुँगा। मैं मज़बूर हूँ। मुझे तुम्हारा श्राप स्वीकार है।''

इस प्रसंग को पढ़कर या सुनकर कोई भी यह शंका कर सकता है कि भगवान् ने वृन्दा के साथ ऐसा कुकर्म क्यों किया ? यह तो अच्छा नहीं किया उसके साथ ! देखो ! भगवान् परमभोक्ता हैं। हर वस्तु को भोगने का अधिकार उन्हें है। सब कुछ उन्हीं का है। उनसे ऊपर तो कुछ भी नहीं है।

''परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई।''

भगवान् तो परम स्वतंत्र हैं। आत्माराम हैं। लीला पुरुषोत्तम हैं। लीला करने के लिये ही यह श्राप या वरदान स्वीकार करते हैं। जो समर्थ होता है, उसको कोई दोष नहीं हुआ करता।

''समरथ को नहिं दोष गुसाईं।''

भगवान् शिव ने विषपान किया और नीलकंठ के नाम से प्रसिद्ध हो गये। क्या कोई साधारण व्यक्ति ज़हर पी सकता है? क्या विषपान करने से महादेव की मृत्यु हुई ? भगवान् शिव तो अविनाशी हैं। ज़हर उनका क्या बिगाड़ सकता है? यदि कोई साधारण व्यक्ति थोड़ा सा ही विषपान कर ले, तो क्या बच सकता है ? नहीं।

देखो! एक बात बड़े ध्यान से समझ लो कि कभी भी भूलकर भी भगवान् का आचरण नहीं करना। किसी समर्थ की नकल नहीं करना। यदि कोई ऐसा करेगा तो उसका नाश हो जायेगा। जालंधर का वध करके, भगवान् ने देवताओं को दुःख से मुक्त करना था, इसलिये यह लीला करनी पड़ी। भगवत्–लीला को कोई नहीं समझ सकता। भगवत्–लीला में दोष निकालना खतरनाक होता है।

–हरि बोल –

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
05.01.2012
एकादशी

प्रेमास्पद भक्त शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम व दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना।

भगवान् से मिलना सहज है

अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में चर–अचर सभी प्राणी भगवान् की संतानें हैं। भगवान् अपनी सभी संतानों को अपनी गोद में लेना चाहते हैं पर ये संतानें माया के खेल में इतनी मस्त हैं कि अपने पिता की ओर नज़र ही नहीं करतीं।

भगवान् बोलते हैं कि मैंने इस संसार में अनगिनत धर्मग्रंथों को बनाया और उनका विस्तार किया पर मानव इनकी ओर दृष्टिपात ही नहीं करता। यदि कोई इन धर्मग्रंथों की ओर दृष्टिपात करता भी है तो इनमें बताये नियमों के अनुसार जीवन को नहीं चलाता। यदि कुछ इने–गिने लोग इन धर्मग्रंथों के अनुसार जीवन चलाते भी हैं तो उन नियमों को अपने स्वभाव में नहीं लाते। वे माया की क्षणिक वस्तुओं में अपने स्वभाव को रमाये रहते हैं।

भगवान् कहते हैं कि इस सृष्टि में, इस कलियुग में मुझे चाहने वाले सच्चे संत इने–गिने हैं। मेरी कृपा के बिना ऐसे संत किसी को नहीं मिलते पर जिन पर मेरी कृपा–दृष्टि हो जाती है उसे मैं ऐसे सच्चे–संतों से मिला देता हूँ। अतः अरबों–खरबों मानवों में से कोई एक मेरी गोद में आ पाता है। यह अवसर भी सभी को नसीब नहीं होता पर जो मेरे प्रिय सच्चे संत की सेवा करते हैं, यह सुकृति भी उसी मानव की होती है। अन्य किसी भी कर्म से यह सुकृति नहीं होती। भले ही कोई कितनी बार तीर्थ करे, कितना ही

दान–पुण्य करे, कितने ही कुएँ–बावड़ी व धर्मशालाएँ बनवा देवे अर्थात् कितने भी शुभ कर्म कर लेवे पर उसे मेरी कृपा नहीं मिल सकेगी। इन कर्मों को करने से उसे वैभवशाली लोक तो उपलब्ध हो जायेगा पर मेरी कृपा नहीं मिलेगी।

मेरी कृपा केवल मात्र मेरे प्यारे–संत की सेवा करने से ही मिल सकेगी क्योंकि मेरा सच्चा–संत, मेरे लिये सब कुछ त्याग कर, केवल मेरी ही शरण में रहता है। रात–दिन मेरे लिये ही जीवनयापन करता है। ऐसा संत मिलना बहुत दुर्लभ है पर जिस पर मेरी कृपा हो जाती है, उस बहुत ही सुकृतिशाली को ही ऐसा संत मिलता है और उसकी सेवा का अवसर उपलब्ध होता है। बहुत से तो अवसर मिलने पर भी, सेवा न करने से नीचे स्तर में ही अपना जीवनयापन करते रहते हैं।

वास्तव में देखा जाये तो सच्चा–संत किसी की सेवा लेना भी नहीं चाहता। अपने सुख के लिये, अपने आनंद के लिये या फिर अपनी प्रसिद्धि के लिये दूसरों से किसी भी प्रकार की सेवा का वह सर्वथा त्याग कर चुका होता है। **इच्छा या बिना इच्छा के भी प्राप्त हुआ धन या सेवा, कहीं न कहीं, कुछ न कुछ अनर्थ अवश्य करती है और भगवान् के प्रेम की प्राप्ति में बाधक बन जाया करती है।** पर यदि कोई सच्चा–संत किसी की सेवा स्वीकार करता भी है तो केवल अपने सेवक के मंगल के लिये ही वह ऐसा करता है। जब वह उसकी सेवा से प्रसन्न हो जाता है, तो वह उसका सही मार्गदर्शन करता है। सच्चे–संत की प्रसन्नता इसी बात में है कि सेवक उसकी आज्ञा का पालन करे, उसकी शिक्षाओं पर चले यद्यपि आज्ञा का पालन बहुत कठिन है और कोई विरला ही ऐसा कर पाता है। तो उसे श्रील गुरुदेव व संत–दर्शन होने लगता है। यदि साधक को श्रील गुरुदेव या किसी संत के दर्शन नहीं होते तो समझना चाहिये कि भजन में अभी कमी है।

सच्चा संत अपने सेवक को, अपने जीवन के अनुसार चलाना चाहता है। वह उसे रात को जल्दी सोने तथा प्रातः जल्दी उठने

का आदेश देता है ताकि वह स्वस्थ रहे। हर प्रकार से धनवान तथा ज्ञानवान बने। कहावत भी है–

"Early to bed & early to rise, makes a man healthy, wealthy & wise."

ब्रह्म–मुहूर्त में 2 या 3 बजे उठो और हरिनाम करो। यदि ब्रह्म–मुहूर्त में उठने में सुस्ती लगे या उठ जाने पर, हरिनाम करते हुये नींद सतावे तो रात का भोजन कम करो या हल्का करो या फिर केवल दूध पीकर ही सो जाओ। हर रोज़ ब्रह्म–मुहूर्त में उठकर कम से कम एक लाख हरिनाम यानि 64 माला महामंत्र की करनी चाहिये। यह महामंत्र है–

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

इस महामंत्र को श्रील गुरुदेव द्वारा दी गई तुलसी माला पर जपो। मुख से उच्चारण करके, कान से सुनो। यह परमावश्यक है। एक लाख से ज्यादा हरिनाम कर सको तो बहुत ही अच्छी बात है।

कंचन–कामिनी व प्रतिष्ठा ज़हर के समान हैं। उनकी ओर देखना भी मत। यह बहुत खतरनाक खेल है। अपनी गृहस्थी में रहते हुये, ब्रह्मचर्य रखते हुये, शुद्ध कमाई के पैसों से जीवन चलावो। कभी भी नामापराध न करो। माला का कभी तिरस्कार मत करो। सदा यह ध्यान रखो कि आपसे वैष्णव–संतों तथा माला मैया का सम्मान बना रहे।

ग्राम्य–चर्चा से दूर रहो। रसेन्द्रिय (जिह्वा) पर कंट्रोल रखो। भोजन भी रूखा–सूखा करो ताकि कामवेग सोया रहे, शांत रहे। अपने समय को बहुत सी बातों में बर्बाद मत करो। संसारी लोगों से ज्यादा मिलना–जुलना भी कम करो। मृदुभाषी बनो। आपकी वाणी से, आपके व्यवहार से किसी के हृदय को चोट न पहुँचे, कोई उद्वेग प्राप्त न हो, इसका ध्यान रखो। यदि कोई आपसे दुर्व्यवहार करता है तो भी उससे खिन्न न हों। सहनशील बने रहो। सबको

सम्मान दो पर अपने सम्मान की कामना भी न रखो। महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में यही शिक्षा दी है–

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि अपने को तृण (घास के तिनके) से भी नीचा समझकर, वृक्ष से भी ज्यादा सहनशील बनकर, अपने मान की इच्छा को त्यागकर, दूसरों को मान देने वाला बनकर, सदैव श्रीहरिनाम संकीर्तन करो।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इसी बात को दुहराते हुये कहते हैं–

"तृणाधिक हीन, दीन, अकिंचन, छार।
आपने मानबि सदा छाड़ि अहंकार।।
वृक्षसम क्षमागुण, करबि साधन।
प्रतिहिंसा त्यजि, अन्ये करबि पालन।।
जीवन–निर्वाहे आने उद्वेग ना दिबे
पर उपकारे निज सुख पासरिबे।
कृष्ण–अधिष्ठान सर्वजीवे जानि सदा।
करबि सम्मान सबे आदरे सर्वदा।।
दैन्य, दया, अन्ये मान, प्रतिष्ठा–वर्जन।
चारि गुणे गुणी हय करह कीर्तन।।

जहाँ तक हो सके, चर–अचर प्राणियों का उपकार करते रहो। अपने से बड़ों को सम्मान दो। बराबर वालों से मृदुभाषी बनो तथा अपने से छोटों से प्यार का बर्ताव करो।

इन उपरोक्त शिक्षाओं पर चलकर और संत की आज्ञा का पालन करके, कोई भी स्वप्न में भगवान् के दर्शन कर सकता है। ऐसे सेवक को स्वप्न में तीर्थों तथा मन्दिरों के दर्शन होने लगते हैं। गुरुदर्शन तथा संत–दर्शन भी उसे बार–बार होता है जो इस बात का प्रमाण है कि उसका भजन बढ़ रहा है। यदि उसे स्वप्न में भी

ऐसे दर्शन नहीं होते तो समझना होगा कि उसके भजन में अभी बहुत कमी है।

मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं– काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार इत्यादि। पर अहंकार तो सबसे खतरनाक है। यह एक ऐसी वृत्ति है कि इसको जान लेना बहुत ही कठिन काम है। इस अहंकार ने तो ब्रह्मा, शिव, नारदजी, हनुमान जी तथा अर्जुन तक को नहीं छोड़ा। ये सभी प्रसंग बहुत बड़े हैं। यहाँ इनकी चर्चा करना संभव नहीं है। कहने का मतलब है कि जब बड़े–बड़े देवी–देवताओं को इस अहंकार ने नहीं बख्शा तो एक साधारण साधक की तो बात ही क्या है ! इस अहंकार से यदि बचना है तो भगवत्–शरण में जाओ। केवल भगवान् की शरणागति से ही यह अन्तःकरण में नहीं व्यापता और ऐसी शरणागति भी अपने आप नहीं हुआ करती। यह होगी केवल हरिनाम–स्मरण से। इसलिये प्रतिदिन कम से कम 64 माला हरे कृष्ण महामंत्र –

''हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।''

की अवश्य करो। मुख से उच्चारण करो तथा कान से सुनो। मेरे श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्भक्ति–दयित माधव गोस्वामी महाराज ने इस बात पर बार–बार ज़ोर देकर कहा है–

"CHANT HARINAM SWEETLY AND LISTEN BY EARS."

हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है। इस अहंकार को दूर करने के लिये ही, श्रीगौरहरि ने अपने पार्षदों को बोला है कि जो लखपति होगा–उसी के घर पर आकर मैं भोजन करूँगा। जो लखपति नहीं होगा उसके घर पर मैं जाऊँगा ही नहीं। ''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति'' के तीसरे भाग में ''नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करने का शास्त्रीय प्रमाण'' नामक लेख प्रकाशित हुआ था। श्रीमद् व्यासावतार, आदिमहाकवि, पूज्यपाद श्री श्रीमद् वृन्दावनदास ठाकुर

विरचित श्री श्रीचैतन्य भागवत (अन्त्य–खंड) नवम् अध्याय (115–126) में इसका वर्णन है । पाठकों की सुविधा के लिये उस लेख का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है ।

भिक्षा–निमंत्रणे प्रभु बलेन हासिया।।
चल तुमि आगे लक्षेश्वर हओ गिया।।117।।
तथा भिक्षा आमार, ये हय "लक्षेश्वर"
शुनिया ब्राह्मण सब चिन्तित–अंतर।। 118।।

अर्थात् भिक्षा निमंत्रण के समय प्रभु हँसकर कहते थे, "जाओ, पहले तुम लक्षेश्वर (लखपति) बनो । मैं लखपति के घर में ही भिक्षा स्वीकार करता हूँ।" यह सुनकर सभी ब्राह्मण सोचने लगे और मन में दुःखी होकर रोने लगे।

पार्षदों के लिये बहुत बड़ी समस्या बन गई। वह सोचने लगे कि लाख की बात तो बहुत दूर, हमारे पास तो सौ रुपये भी नहीं है। अब गौरहरि हमारे घर आवेंगे ही नहीं और न ही हमारे यहाँ भोजन करेंगे।

श्रीगौरहरि तो साक्षात् भगवान् हैं और सबके हृदय की बात जानते हैं। उन्होंने अपने सभी भक्तों से कहा कि आप चिंता मत करो। मेरे कहने का मतलब रुपयों से नहीं है। मेरे कहने का मतलब इतना है–**"जो नित्यप्रति एक लाख नाम स्मरण करेगा, मैं उसके घर पर भोजन अवश्य करुँगा और उस घर को कभी भी नहीं छोड़ूँगा। वहीं पर सदा वास करुँगा।"**

प्रभु बले, "जान, 'लक्षेश्वर' बलि का'रे ?
प्रतिदिन लक्ष–नाम ग्रहण करे।।121।।
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'
तथा भिक्षा आमार, ना याइ अन्य घर।।122।।

अर्थात् तब दयामय प्रभु ने कौतुक छोड़कर अपने मन की बात खोलकर कह दी । उन्होंने कहा –"जानते हो, मैं लक्षेश्वर किसे कहता हूँ ? जो नित्यप्रति लक्ष (एक लाख) नाम ग्रहण करते हैं

उन्हें मैं लक्षेश्वर (लखपति) नाम से पुकारता हूँ और उन्हीं के घर भिक्षा स्वीकार करता हूँ। किसी और घर नहीं जाता ।''

श्रीगौरहरि तो महावदान्य हैं। उनका तो अवतार ही पतितों को पावन करने के लिये हुआ है। उन्होंने भगवद्–प्राप्ति का एक बहुत ही सरल, सुगम उपाय बतला दिया–**''एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करो और मुझे खरीद लो।''**

श्रीगौरहरि की इस बात से सभी भक्त लोग प्रसन्न हो गये और एक लाख हरिनाम अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र की 64 माला प्रतिदिन करने लगे।

श्रीगौरहरि ने कम से कम एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करने पर इतना ज़ोर क्यों दिया? इसलिये कि जो दिन में कम से कम एक लाख बार भगवान् के नाम का स्मरण करेगा, एक लाख बार भगवान् के नाम का उच्चारण करेगा, उन्हें पुकारेगा तो भगवान् की दृष्टि उस पर हो जायेगी और उस साधक के स्वभाव में–

''तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना
अमामिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरि।।''

अपने आप प्रकट हो जायेगा अर्थात् दैन्य, दया, अन्यमान तथा प्रतिष्ठा–वर्जन, इन चार गुणों का उसके स्वभाव में अपने आप ही स्थान बन जायेगा और वह बड़े प्रेम से हरिनाम का कीर्तन कर सकेगा। फिर अहंकार तो उसको स्वप्न में भी नहीं आयेगा। इस अहंकार रूपी दुश्मन को मारने के लिये ही श्रीगौरहरि ने नित्यप्रति हरिनाम की 64 माला करने पर ज़ोर दिया, जो परमावश्यक है।

अहंकार भक्ति मार्ग में बहुत बड़ा बाधक है। यह पूरी भक्ति–साधना का मटियामेट कर देता है। उसे मिट्टी में मिला देता है। यह अहंकार भगवान् का भी शत्रु है। इससे भक्त बहुत गहरे खड्डे में जा गिरता है। इस अहंकार से अपने भक्त को बचाना, उसकी रक्षा करना भगवान् के लिये बहुत ज़रूरी हो जाता है। इसलिये भगवान् सबसे पहले अपने भक्त के अंदर के अहंकार

का नाश करते हैं और फिर उसे अपने चरणों में बुलाते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो माया उस भक्त से आकर लिपट जायेगी और भक्त का किया–कराया सारा साधन–भजन, भगवत्–प्रेम अश्रद्धा में बदल जायेगा और वह माया के जाल में फंस जायेगा।

जब मेरे श्रील गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी कि मैं सबको बता दूँ कि मैं एक साधारण व्यक्ति नहीं हूँ और भगवान् का पार्षद हूँ और सबको हरिनाम जपाने के लिये इस पृथ्वी पर आया हूँ। मेरे दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों के छः चिह्न भी हैं जो श्री हनुमान जी ने मुझे बताये थे, तो मैं डर गया और घबराकर मैंने अपने श्रील गुरुदेव जी से प्रार्थना की कि यदि मैं ऐसा करुँगा तो मेरी ख्याति बढ़ जायेगी, मेरा आदर–सत्कार होगा और मेरे जैसा एक गंवार व्यक्ति, एक तुच्छ व्यक्ति अहंकार में डूब जायेगा और फिर तो मेरा बचना ही असंभव हो जायेगा।

तब श्रीगुरुदेव जी ने बोला–''तुम्हें किसी बात की चिंता नहीं करनी चाहिये। तुम्हारे पीछे मैं खड़ा हूँ। अहंकार तो तुम्हें छुएगा भी नहीं। तुमसे दूर ही रहेगा। यहाँ तुम्हें भगवान् ने भेजा है और तुम्हें यह मालूम ही नहीं है कि तुम कौन हो। अर्जुन को भी मालूम नहीं था कि वह नर–नारायण का अवतारी पुरुष है पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे बार–बार कहा कि तुम साधारण व्यक्ति नहीं हो। तुम भगवान् के विशेष पार्षद हो पर इस समय तुम सब कुछ भूल रहे हो पर मैं सब जानता हूँ। तुम्हें अपने पिछले जन्म की कोई भी बात याद नहीं है पर मुझे न केवल अपनी, पर हर प्राणी के, हर जन्म की, एक–एक बात याद है क्योंकि मैं भगवान् हूँ।''

श्रीगौरहरि के जितने भी पार्षद थे, वे सभी श्रीकृष्ण के सखा इत्यादि थे परंतु वे स्वयं यह नहीं जान पाये कि श्रीकृष्ण लीला में वे अमुक नाम के सखा आदि थे। जब श्रीगौरहरि ने उन्हें बताया कि मेरे श्रीकृष्ण–जन्म में तुम मेरे अमुक सखा थे और अब इस जन्म में जहाँ–जहाँ पर जन्म लिया है, वहाँ–वहाँ का उद्धार होगा। श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि जी श्रीराधारानी के पिता वृषभानु जी थे।

श्री नित्यानंदप्रभु–बलदेव, लक्ष्मण व शेषनाग के अवतारी पुरुष थे। अद्वैताचार्य श्रीब्रह्मा के अवतारी पुरुष थे। गदाधर श्री राधाशक्ति के अवतारी पुरुष थे। श्रीवास नारद जी के अवतारी पुरुष थे। कितने नाम गिनाये जायें। सभी भगवान् के साथ अवतार लेकर लीला का विस्तार करवाते रहते हैं। माया से मोहित अज्ञानी पुरुष इनको पहचान नहीं सकता पर जिस पर भगवद्–कृपा होती है, वह उन्हें पहचान लेता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों तथा पांडवों के साथ रहे पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के अभाव में कौरव श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सके और उन्होंने श्रीकृष्ण को एक साधारण मानव, एक ग्वाला समझ लिया पर पांडवों पर भगवान् की कृपा थी। अतः वे उन्हें पहचान सके और उन्हें सृष्टि का रचैया, परब्रह्म परमात्मा के रूप में मानते थे।

यही तो भगवान् की माया है। यदि माया न हो तो भगवान् की लीला हो ही नहीं सकती। संसार तो चलाने के लिये माया का खेल होना भी अति आवश्यक है। यह तो पर्दा है। यही माया का पर्दा न हो तो भगवान् की लीला में आनंद का झरना बहता ही नहीं।

मेरे गुरुदेव जी ने मुझे बोला कि तुम किसी भी प्रसंग को छुपाकर रखोगे तो कोई भी तुम पर श्रद्धा और विश्वास नहीं करेगा। अतः सारे प्रसंग खोलकर सभी को सुनाते रहो। कोई भी बात छुपा के मत रखो। तभी लोग तुम में श्रद्धा व विश्वास करेंगे अन्यथा तुम्हें एक छोटे से गाँव का रहने वाला गृहस्थी समझकर, तुम पर कौन विश्वास करेगा?

भगवान् अपने भक्तों को शुभ तिथि में जन्म देते हैं। जन्म लेना किसी के वश की बात नहीं है। मेरा जन्म शरद्पूर्णिमा (रासपूर्णिमा) की रात को दस बजे हुआ। यह पूर्णिमा सब पूर्णमासियों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। फिर मेरे दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों के छः चिह्न हैं जो बिल्कुल साफ दिखाई देते हैं। कोई भी इन्हें देख सकता है और मेरी बातों पर श्रद्धा व विश्वास कर सकता है।

इतना ही नहीं, मेरे जीवन में बहुत सी अलौकिक घटनायें भी घटीं हैं। सन् 1952 में दीक्षा के बाद, सन् 1954 में कृष्णमंत्र का पुरश्चरण करके वाक्सिद्धि उपलब्ध की। पुरश्चरण करने का तरीका किसी ने नहीं बताया। स्वयं ही हृदय से प्रेरणा हुई। वाक्सिद्धि प्राप्त करने के बाद कई साल तक दूसरों का भला करता रहा। मेरे गुरुदेव बार–बार जयपुर आते थे पर उन्होंने राजस्थान में उस वक्त केवल मुझे ही शिष्य क्यों चुना? अब मेरे घर का हर सदस्य श्रील गुरुदेव का चरणाश्रित है और श्रील गुरुदेव की कृपा से ही यह संभव हुआ। श्रीहनुमान जी ने मुझे दर्शन दिये। भगवान् श्रीकृष्ण ने रबड़ी खिलाई। मेरे बेटे अमरीश को बचपन में ही श्रीहनुमान जी के दर्शन हुये।

कहाँ तक गिनाऊँ? ऐसी अनेकों अलौकिक लीलाएँ मेरे जीवन में हुई हैं और अब भी हो रही हैं। मेरे बारे में इतना कुछ जानकर भी यदि किसी को मुझ पर श्रद्धा या विश्वास नहीं होता तो समझ लेना चाहिये कि उसके भजन में निश्चित रूप से कमी है। उस पर भगवत्–कृपा की कमी है। मेरे सिवा, एक ही विषय–श्री हरिनाम–पर आज तक किसी ने 600 पत्र नहीं लिखे और न ही हज़ारों लोगों से एक लाख हरिनाम करवाया है। मेरी पुस्तक को पढ़कर अब हज़ारों लोग प्रतिदिन एक–एक लाख हरिनाम कर रहे हैं । यह मेरे गुरुदेव की वाणी का कमाल है। इसमें मेरा कुछ नहीं।

अभी भी बहुत से साधक ऐसे हैं जो मेरे रविवार के कार्यक्रम में आते हैं, मेरी पुस्तकें भी पढ़ते हैं, मुझे मिलते भी हैं पर मेरे आदेश का पालन न करने के कारण, एक लाख हरिनाम नहीं कर पाते। यह उनका दुर्भाग्य है। यह बात सबको मालूम है कि मैं कॉंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा से कोसों दूर हूँ। फिर भी साधक किस सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वह सूर्य उदय होगा? कब उनकी आँखें खुलेंगी ? कब उनका अज्ञान दूर भागेगा और उनके जीवन में श्री हरिनाम रूपी शीतल, सुगंधित व आनंद प्रदान करने वाली बयार बहेगी ?

देखो! एक बात बड़े ध्यान से सुनो। आप सबको जो यह अवसर मिला है, फिर यह कभी नहीं मिलेगा। इसलिये मैं आप सबको बार–बार कह रहा हूँ कि मेरी बात मानो। इस अवसर को मत गँवाओ। श्रीहरिनाम रूपी इस अमृत को इस दुर्लभ मानव जीवन में जितना पी सकते हो, पी लो। हर समय पीते रहो और पीकर निहाल हो जाओ। जब मैं इस संसार को छोड़कर चला जाऊँगा तब पछताओगे, रोओगे पर फिर कुछ नहीं बन सकेगा। मेरे जीते जी मेरी बात नहीं मानोगे तो बाद में कुछ भी नहीं होगा। अब पछताये होत क्या ? जब चिड़िया चुग गई खेत।

मुझ में न तो बल है, न समझ है और न ही ज्ञान है। मैं अपनी बुद्धि से एक भी पत्र नहीं लिख पाता। मेरे गुरुदेव ही मुझ पर कृपा करके 600 पत्र लिखवा चुके हैं और रविवार का सत्संग करवा रहे हैं। मैं गत तीन वर्षों से हर रविवार को एक ही विषय–श्री हरिनाम–पर लगातार बोल रहा हूँ। क्या मुझ में कोई शक्ति है ? नहीं ! मेरे गुरुदेव ही मुझे माध्यम बनाकर, सबका कल्याण करने के लिये बुला रहे हैं और मेरे आराध्यदेव श्रीकृष्ण ही मुझे आदेश देकर कलियुग के जीवों के कल्याण के लिये इस भक्तिपथ का आयोजन करवा रहे हैं। जो सुकृतिशाली जीव हैं वे अवश्य ही इस अवसर का लाभ उठावेंगे। जिस पर भगवद्–कृपा होगी, वही इस आयोजन में आयेगा और इस अमृत का पान कर सकेगा। भगवद्–कृपा के बिना यह अमृत किसी को भी नहीं मिल सकता।

भगवान् ने ही मुझे आदेश कर यह शुभ अवसर प्रदान किया है, इस आयोजन की शुरुआत की है। इसका लाभ उठाना ही मानव जीवन को सफल करना है। देखो! मौत का कोई भरोसा नहीं। पता नहीं, अगला सांस आयेगा भी या नहीं। इसके बाद मानव जन्म मिलेगा भी या नहीं। अनंत युग बीत जाने पर यदि मिलेगा भी तो कोई गारंटी नहीं है कि ऐसा सुलभ, सरल तथा अचूक साधन मिल पायेगा। इसलिये सभी गुरुजन, सभी वैष्णवजन, सभी शास्त्र, बार–बार यही बात कह रहे हैं कि मानव जन्म सुदुर्लभ

है। आगे जाकर सच्चे संत की सेवा मिलेगी नहीं, तो मनुष्य जीवन मिलेगा नहीं।

भगवद् की यही वाणी है। कोई सुकृतिशाली ज्ञानी पुरुष ही इसे समझ सकता है, साधारण मानव के वश की बात नहीं है।

बहुत ध्यान देने का प्रसंग है। कृपा करके सुनने की चेष्टा करें। आत्मा–आत्मा में किंचित्मात्र भी भेद नहीं है। सब चर–अचर की आत्मा एक ही हैं। जैसे हमने किसी पर क्रोध किया तो उसकी जीवात्मा दुःखी हुई तो अपनी जीवात्मा सुखी रहेगी क्या ? अपनी जीवात्मा भी अशांत रहेगी क्योंकि आत्मा–आत्मा सबकी एक ही हैं।

जैसे हमारी उंगली को हमने चोट पहुँचाई तो हमारे पूरे शरीर को कष्ट हुआ, दर्द हुआ क्योंकि उंगली का पूरे शरीर से संबंध है। इसी प्रकार हमने किसी जीवात्मा को कष्ट या दुःख पहुँचाया तो यह दुःख कष्ट हमारी जीवात्मा पर भी 100 प्रतिशत पहुँचेगा क्योंकि जीवात्मा हम सबके शरीरों में एक ही है।

मच्छर से लेकर हाथी तक, सब प्राणियों का खून अलग–अलग है क्या ? इन सब में खून का रंग लाल ही होता है। इसका मतलब सबमें एक जैसा ही, एक ही रंग का खून है। जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव जलाने का है। अग्नि कहीं पर भी हो, कहीं की भी हो, वह जलायेगी ही। ऐसा तो नहीं कि भारतवर्ष की अग्नि जलायेगी और अमेरिका की अग्नि नहीं जलायेगी। भारत की अग्नि एक प्रकार की है और अमेरिका की अग्नि दूसरी प्रकार की। ऐसा कभी होगा क्या ?

निष्कर्ष यह निकला कि किसी में कोई भेदभाव नहीं है। सभी एक हैं। अतः जो किसी से प्रेम करेगा तो उसमें अपने आप ही प्रेम भाव आ जायेगा। जो दूसरों से दुश्मनी करेगा उसमें दुश्मनी का भाव आ जायेगा। सबका शरीर तो जड़ पदार्थों से निर्मित हुआ है फिर उसमें सुख–दुःख होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस शरीर में जब तक जीवात्मा का वास है तभी तक सुख और दुःख महसूस होगा। जब आत्मा शरीर से निकल जायेगी तो सुख दुःख कैसे महसूस होगा।

कहने का अभिप्राय यही है कि किसी भी चर या अचर प्राणी को भूलकर भी नहीं सताना चाहिये। यदि सतावोगे तो यह सताना स्वयं में भी व्याप्त हो जायेगा। किसी को सुखी करोगे तो स्वयं भी सुखी रहोगे। यही है ज्ञान नेत्र का खुलना।

भगवान् ने सब आत्माओं के रहने के लिये शरीर रूपी मकान बनाये हैं। जो इन शरीर रूपी मकानों को क्षति पहुँचायेगा, उसे उसी मकान में आना पड़ेगा। जैसे किसी ने सांप को मारा है तो उसे सांप बनना पड़ेगा। भगवान् तो सभी जीवों को उनके कर्मानुसार मकान बनाकर देते हैं और आत्मा रूप में स्वयं उसमें वास करते हैं। यदि वे स्वयं वास न करें तो भगवान् की सृष्टि का निर्माण हो ही नहीं सकता। लीला रचने हेतु भगवान् को सृष्टि की रचना करनी पड़ती है। इसके बिना भगवान् का मन लगता ही नहीं है। इसलिये चौरासी लाख योनियाँ अर्थात् चौरासी लाख शरीर रूपी मकान बनाकर स्वयं भगवान् को इन शरीर रूपी मकानों में वास करना पड़ता है। आत्मा को तो कोई सुख–दुःख होता नहीं है। सुख–दुःख तो जीव को ही भोगना पड़ता है। जो जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा। जिसने जैसा कर्म किया, वह वैसा ही भोगेगा। आत्मा तो निर्भय होकर देखता रहता है। यह आत्मा तो परमात्मा का अंश है। इसे दुःख होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह प्रसंग जिसको समझ में आ जायेगा तो समझो कि उसका ज्ञान नेत्र खुल गया। ज्ञान नेत्र खुला नहीं कि आवागमन अर्थात्

जन्म–मरण का दारुण कष्ट मिटा नहीं। इसलिये सत्संग की परमावश्यकता रहती है। एक पल का सत्संग भी महत्वशील तथा मूल्यवान है। सत्संग का प्रभाव उसी संत का होगा जो स्वयं आचरण करेगा वरना कितना भी सत्संग करते रहो, कुछ भी लाभ नहीं होने वाला। इस कलिकाल में सच्चा सत्संग मिलना बहुत दुर्लभ है। यदि कहीं मिल गया तो समझो बड़ा भाग्य है। इसे भगवान् तथा श्रीगुरुदेव की कृपा ही समझना।

एक उदाहरण दे रहा हूँ, समझने का प्रयास करो। जैसे किसी ने मेरे शरीर में सुई चुभोई तो मेरे शरीर में दर्द हुआ। मुझे दर्द की अनुभूति हुई। अब मुझे यही बात अनुभव करनी पड़ेगी कि यदि मैं किसी के शरीर को सुई चुभो दूँगा तो उसे भी इस तरह दर्द होगा। जैसी पीड़ा मुझे हुई, वैसे ही उसे भी पीड़ा होगी। सुख–दुःख का अनुभव जैसे मुझे होता है, दूसरों को भी वैसा ही होगा। जिस दिन यह ज्ञान हो जायेगा फिर तो मनुष्य किसी को दुःख नहीं दे सकता। यही तो है भगवान् को कण–कण में देखना। सभी चर–अचर प्राणियों में आत्मा रूप में परमात्मा का ही वास है।

– हरि बोल –

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी

25

तुलसी सेवा सर्वोपरि है

इस बार मैंने श्रीगुरुदेव से पूछा कि मैंने सुना है कि गुरु वैष्णव और भगवान् की कृपा से प्रेमाभक्ति प्रसन्न हो जाती है। क्या उन सबसे ऊपर भी कोई ऐसी शक्ति है जिसकी कृपा बिना गुरु, वैष्णव और भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। वे पंगु हो जाते हैं। कमज़ोर हो जाते हैं।

श्रीगुरुदेव ने बोला–''हाँ ! इन सबसे भी ऊपर एक ऐसी शक्तिशाली शक्ति है जिसकी कृपा बिना भक्ति का नामोनिशान भी नहीं रहता। वह शक्ति है वृंदा देवी अर्थात् तुलसी महारानी। यदि तुलसी महारानी की कृपा हो तो ये तीनों कुछ नहीं कर सकते। तुलसी मैया के हस्तकमलों में प्रेमाभक्ति नाचती रहती है।''

मैंने पूछा–''गुरुदेव! यह कैसे हो सकता है कि भगवान् भी असमर्थ हो जाते हैं।''

"हाँ, भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। तुलसी कृपा से साधक के अन्तःकरण में भक्ति का प्रागट्य होता है। तुलसी मैया के अभाव में, यदि अमनिया में तुलसी पत्र नहीं डालोगे तो भगवान् भोग नहीं लगावोंगे अर्थात् भगवान् भूखे मर जावेंगे। तुलसी मैया के बिना भगवान् कुछ कर ही नहीं सकते। भगवान् श्रीकृष्ण जब तुलसी जी को बोलते हैं कि मैं रासलीला करना चाहता हूँ और आपके आयोजन बिना मैं रासलीला नहीं कर सकता तो तुलसी जी ही पूरी रासलीला का प्रबंध करती हैं। तब गोपियों के संग में श्रीकृष्ण की रासलीला होती है। तुलसी मैया तो भगवान् की आत्मवत् हैं। तुलसी मैया के बिना तो भगवान् की कोई हरकत हो ही नहीं सकती। तुलसी के बिना तो भगवान् निर्जीव अवस्था के समान हो जाते हैं।

अब विचार कीजिये कि श्रीगुरुदेव अपने शिष्य के गले में तुलसीमाला क्यों पहनाते हैं। तुलसी से ही भगवान् जीव को अपनाते हैं। यदि तुलसी मैया के प्रति अपराध हो जाये तो भक्ति मूल सहित नष्ट हो जाती है। दूसरी बात श्रीगुरुदेव हरिनाम जपने के लिये तुलसी माला ही क्यों देते हैं ? काठ या किसी अन्य चीज़ की माला क्यों नहीं देते ? दूसरी किसी तरह की माला भी दे सकते हैं। श्रीगुरुदेव जी स्वयं भी तुलसी मैया की शरणागति से ही गुरु पदवी पर पहुँचते हैं। इसलिये तुलसी मैया की कृपा, श्रीकृष्ण की कृपा से भी ज्यादा जरूरी है।

आईये! अब वैष्णवों की बात करें। वैष्णवजन दिन–रात तुलसी मैया की सेवा में लगे रहते हैं। तुलसी मैया के बिना मन्दिर में कोई भी अर्चन–पूजन नहीं हो सकता। तुलसी मैया की कृपा बिना तो भक्ति का जन्म ही नहीं होता। भक्ति भी तुलसी मैया की अनुगामिनी है।

इसलिये ! हे अनिरुद्धदास ! सबसे महत्वशील तुलसी मैया की सेवा है। इसके बाद गुरु, वैष्णव, भगवान् हैं। यह तीनों ही तुलसी महारानी के अनुगमन में रहते हैं। इसलिये तुलसी सेवा प्रथम है। मैंने दो–चार बार तुलसी मैया का निरादर करने का प्रभाव भी बताया है और समादर करने का प्रभाव भी वर्णन किया है। निरादर करने से क्या–क्या नतीजे सामने आते हैं और आदर करने से क्या–क्या नतीजा सामने आवेगा। जो तुलसी में पूर्ण श्रद्धा करेंगे उन्हें हरिनाम जप शुरु करते ही सुमेरु हाथ में आवेगा। जिन भक्तों को ऐसा अनुभव हुआ है और हो रहा है, उनकी पूर्ण श्रद्धा हो गई है। अब तो बहुत सारे भक्त जब हरिनाम करने लगते हैं तो सबसे पहले सुमेरू (स्वयं श्रीकृष्ण) ही उनके हाथ में आता है।

साधारण साधक इस प्रेमावस्था को नहीं समझ सकता। यह अवस्था अलौकिक है, चिन्मय है तथा परमहंस अवस्था होती है जिसे निर्गुण अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में प्रेमास्पद को कुछ भी बोला जा सकता है, कोई भी शंका न करें कि भगवान्

तो अनंतकोटि ब्रह्मांडों के स्वामी तथा त्रिलोकीनाथ हैं। इसलिये उनके लिये न बोलने वाले शब्द कैसे बोले जा सकते हैं ?

देखो! प्रेम अन्धा होता है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को जाने क्या क्या न बोलने लायक अपशब्द बोले हैं। अर्जुन नर–नारायण का अवतार होकर भी श्रीकृष्ण को समझा नहीं। जब श्रीकृष्ण ने विराट रूप दिखाया तो अर्जुन बोला कि मैंने आपको न बोलने वाले शब्द बोले हैं। आप मुझे माफ कर देना।

भगवान् बोले–**"कोई बात नहीं। प्रेम में ऐसा हो जाता है। प्रेमास्पद में सभी भाव मौजूद रहते हैं। आदर के भी, निरादर के भी।" तभी तो मेरे गुरुदेव तथा भगवान् में भी बहस हो जाती है। भगवान् बोलते हैं कि इस माधव ने तो मेरी पूरी पोल खोल दी और खोलता जा रहा है। यह मुझे सबका गुलाम बनाकर रहेगा।**

मेरे श्रीगुरुदेव ने बोला–"आपने मुझे हरिनाम प्रचार का आयोजन करने को क्यों बोला? अब तो जो मेरी मर्जी होगी, वही करूँगा। आपको इसमें क्या एतराज है ? आपके आदेश का पालन करना मेरा धर्म है। आपको एतराज़गी किस बात की है ?

इस प्रकार प्रेमास्पद में अनबन होती ही रहती है। सती स्त्री अपने पतिदेव को कुछ भी न बोलने वाले बोल भी बोल दिया करती है और पति को प्रेम के कारण सहन करना पड़ जाता है। मेरे गुरुदेव ने मुझे भी स्पष्ट कह रखा है कि तुम भी कोई बात मत छुपाओ इसलिये मैं कुछ भी छुपाता नहीं हूं। मेरी एक छोटी सी पुस्तक छपी है जिसका नाम है–**"एक शिशु की विरह–वेदना।"** इस पुस्तक में एक–डेढ़ साल के बच्चे के हृदय की भावनाओं का वर्णन है।

देखो! मैं डेढ़ साल का शिशु हूँ। अनिरुद्ध श्रीकृष्ण का पोता है। पोते का काम है मचलना और बाबा का काम है बहलाना। कोई शंका करे कि डेढ़ साल के पोते को तो बोलना ही नहीं आता। फिर यह बाबा से बहस कैसे कर सकता है ?

देखो! यह अवस्था लौकिक नहीं है। यह अलौकिक अवस्था है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो 6 वर्ष की आयु में गिरिराज पर्वत को अपनी उंगली पर उठा लिया था। क्या 6 साल का बच्चा इतने बड़े पर्वत को उंगली पर उठा सकता है ? रामावतार में राक्षस भी शरीर बदल लेते थे। मारीच राक्षस तो सोने का हिरण बन गया था। इसलिये शंका करना मूर्खता है।

बाबा पिता के समान ही होता है इसलिये मैं अपने दादा (श्रीकृष्ण) को बाप ही बोलता हूँ। मैं तो उससे लड़ भी नहीं सकता हूँ। मैं कहता हूँ कि आप मेरे बाप हो और मैं आपका शिशु हूँ। मेरा काम मचलना है और तुम्हारा काम है बहलाना। यदि आप मुझे बहलाते हो तो मुझ पर कौन सा एहसान करते हो तो मेरा बाप हँसकर मुझे गोद में ले लेता है और प्यार भरा चुंबन करता है। जब मैं ज्यादा रोता हूँ तो वह मुझे दादी रूक्मणी के पास स्तन पान करने के लिये दे देता है। दादी रुक्मिणी मुझे स्तनपान से अमृतसुधा का दूध पिलाकर पालने में सुला देती है। फिर मैं सो जाता हूँ। इसी प्रकार मुझे श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का अनेक प्रकार का वात्सलयमयी प्यार मिलता रहता है। मैं सभी रानियों के महलों में जाता रहता हूं और वहाँ मुझे सभी दादियों का वात्सलयमयी प्यार मिलता रहता है।

ये सब प्रसंग संसारी बातों का उदाहरण देकर बताने पड़ते हैं। इसमें शंका न करना अन्यथा अपराध हो जायेगा। यह प्रसंग मैंने अपनी बड़ाई के लिये नहीं बोला है। मैंने तो केवलमात्र अपने श्रीगुरुदेव के आदेश का पालन किया है। श्रीगुरुदेव मुझे बोलते हैं कि यदि तुम नहीं बोलेगे तो कोई भी तुम पर श्रद्धा नहीं करेगा। इसलिये श्रद्धा विश्वास हेतु बोलते रहो।

मेरे श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं। सभी साधक ध्यान देकर सुनो– "अनिरुद्धदास किस लिये बड़ाई चाहेगा ? इसको तो कुछ चाहिये ही नहीं। आप अंधे हो क्या ? इसके दोनों हाथों में भगवान् के आयुद्धों के छः चिन्ह हैं। क्या ये चिन्ह इसने स्वयं बनवाये हैं ? यह

चिन्ह भगवान् के पार्षद होने का शत्–प्रतिशत् प्रमाण है। इससे अधिक और क्या सबूत होगा। इसने मेरे द्वारा लिखवायें गए 600 से भी ज्यादा पत्र एक ही विषय पर लिखे हैं। **"इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति"** पुस्तक की पाँच–पाँच हज़ार पुस्तकें तैयार हुई हैं। यह किस शक्ति ने तैयार की हैं। आज से पहले कोई विरला ही 64 माला हरिनाम की जपता होगा और अब इन पुस्तकों को पढ़कर कितने लोग एक–एक लाख हरिनाम नित्य जप रहे हैं। कई तो एक लाख से भी ज्यादा जप रहे हैं। ये पुस्तकें विदेशों में भी पहुँच रही है जहाँ बहुत सारे लोग एक–एक लाख हरिनाम करने लग गये हैं।

83 वर्ष की उम्र में क्या कोई रात को एक बजे उठकर, छः–छः घंटे एक ही आसन पर बैठकर तीन लाख हरिनाम कर सकता है ? अनिरुद्ध सबको हरिनाम में लगाने के लिये बड़ी लगन से जुटा हुआ है। लगभग पिछले तीन साल से मेरे आदेश का पालन करके, बिना नागा हर रविवार को गर्मी–सर्दी की परवाह किये बिना, सबकी भलाई में जुटा हुआ है। घर पर लोगों को मुफ्त होम्योपैथिक दवाईयाँ बाँटता है। आँखों की दवा स्वयं बनाकर लोगों को बाँट रहा है। 83 वर्ष की आयु में 5 साल के बच्चे जैसी आँखों की रोशनी है। इसका आचरण अलौकिकता से परिपूर्ण है। इनका लाभ जिसको लेना हो, ले लो। लेने में ही फायदा है। यह अवसर बाद में नहीं मिलेगा। इसी जन्म में वैकुण्ठ प्राप्ति कर लो नहीं तो फिर जन्म–मरण के चक्कर में फंसना पड़ेगा। मैंने कई बार सभी साधकों को समझा दिया है कि जिस पर भगवान् की कृपा होगी, वही इनको समझ पायेगा। वरना जिस प्रकार कौरव श्रीकृष्ण को नहीं समझ पाये, पहचान नहीं पाये और मौत के घाट पहुँच गये, वहीं होगा। पांडवों ने श्रीकृष्ण को पहचाना और उसका लाभ उठा लिया। इसीलिये मैं बार–बार यही कहता हूँ कि अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहो, भगवत्–कृपा स्वतः ही बन जायेगी और इसी जन्म में वैकुण्ठ–प्राप्ति हो जायेगी।

मैं बोल रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो। बड़ाई वहीं चाहेगा जिसके मन में लोगों से कुछ लेने की इच्छा हो पर जिसको किसी से कुछ लेना ही नहीं है, केवल देना ही देना है, देने की ही भावना हो, वह तो मान–बड़ाई को ठोकर मारता है। जो बड़ाई चाहेगा उसकी– "तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरिः" ऐसी आचरणशील अवस्था आही नहीं सकती। अपने श्री गुरुदेव की कृपा से अहंकार तो इससे कोसों दूर रहता है। अहंकार में ही मान बढ़ाई छिपी रहती है। जो भी इनमें (अनिरुद्ध प्रभु) में कमी देखेगा, अपराध का शिकार बन जायेगा। भक्ति से हाथ धो बैठेगा। उसकी हरिनाम में अरुचि हो जायेगी। आपत्ति में फंस जायेगा और जिसकी सुकृति होगी, वह इन पर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास करेगा। जिसकी सुकृति नहीं होगी, वह इन्हें साधारण मानव समझता रहेगा। वह भक्ति पथ से गिर जावेगा।"

– हरि बोल –

मैं राधा राधा गाऊँ, राधा हित वेणु बजाऊँ।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
15.01.2012

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि तेज़ होने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

मानव का ज्ञाननेत्र खुलना, परमानन्द का कारण

अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों के रचैया भगवान् ने मानव के सतो, रजो तथा तमोगुणों के कर्मानुसार शरीरों की रचना की। जिसका जैसा भाव था, उसका वैसा मकान बनाकर उसमें स्वयं बैठ गया। आत्मा–परमात्मा का पुत्र है। अतः आत्मा को इस शरीर रूपी मकान में बिठाकर, जीव को उसके कर्मों का भोग भुगतवाने हेतु, उसे स्वयं (भगवान्) उसमें बैठना पड़ा अर्थात् उस मकान में वास करना पड़ा।

यदि परमात्मा अपने पुत्र आत्मा के शरीर में वास नहीं करता तो परमात्मा की अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों की सृष्टि अर्थात् रचना नहीं हो सकती थी। अतः स्वयं आत्मा को, जो परमात्मा का अंश है, शरीरों में रहना पड़ गया। जिस प्रकार परमात्मा सृष्टि की रचना करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी सृष्टि की रचना करता है। वह शादी करके संतान की रचना करता है और स्वयं को इसमें बांध लेता है। अपनी संतान की देखभाल करना, रक्षा करना तथा इसके पेट भरने का प्रबंध करने में पूरी ज़िंदगी लगा देता है और इसमें ही लिप्त हो जाता है। यही तो माया है, यही माया का अस्तित्व है।

पारिवारिक–बंधनों में बंधकर मानव अज्ञान की अंधेरी कोठरी में बंद हो जाता है तथा गलत कर्म करके अपना जीवन बर्बाद कर

देता है। यह मानव जिनका पेट भरता है, पालन करता है, वही परिवार उसका जीवन बर्बाद करता रहता है। उसके कर्मों का भोग भुगवाता रहता है। माया का यह परिवार उसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या तथा द्वेष की अंधेरी कोठरी में डाल देता है। उस अंधेरी कोठरी में इसे कुछ भी नज़र नहीं आता। उसकी आँखें धूमिल हो जाती हैं और वह गलत मार्ग रूपी अवगुणों का रास्ता पकड़ लेता है। शुभ कर्मों का सच्चा रास्ता तो उसको नज़र ही नहीं आता। अन्त में वृद्धावस्था उस पर हावी हो जाती है और वह असहाय हो जाता है। पूरी ज़िंदगी भर जिनकी इसने देखभाल की, पालन–पोषण किया, जिसमें फंसकर वह भगवान् को भी भूल गया था, अब उसी परिवार के लोग उसका तिरस्कार करते हैं और सोचते हैं कि कब यह मरेगा और हमारी आफत दूर होगी।

ज़रा गहराई से विचार करो कि यहाँ कौन किसी का है ? यहाँ पर कोई भी किसी का नहीं है। अपना नहीं है। इस शरीर में विराजमान परमात्मा का अंश, आत्मा ही हमारा सच्चा साथी है। इससे ही संबंध रखना चाहिये पर यह सच्चा ज्ञान अन्तःकरण में कैसे प्रगट होगा ? यह ज्ञान तब ही प्रगट होगा जब मानव की सुकृति होगी, तभी कोई सच्चा ज्ञानी उसकी धूमिल आँखों को ज्ञान का अंजन लगाकर खोल सकेगा।

जब इसका ज्ञान नेत्र खुल जायेगा तो इसको माया का यह संसार दुःखमय तथा अंधकारमय दिखाई देगा। जब इसका ज्ञान नेत्र खुल जाएगा तो वह भगवान् द्वारा बनाये गये शरीर रूपी मकानों को कभी नुकसान नहीं पहुँचायेगा जिसमें वह आत्मा रूप में स्वयं (भगवान्) वास करता है। इन मकानों रूपी शरीरों में रहने वाले आत्मा से भी वह प्यार करने में जुट जायेगा। यह तभी होगा जब उसे इस बात की समझ आ जायेगी कि आत्मा से प्यार करने में ही उसका भला है, बाकी सब तो माया का बवंडर है। तब वह मानव, आत्मा अर्थात् भगवान् से नाता रखता है और उससे अपना मन जोड़कर अपना जीवन बिताता है।

परंतु अब क्या हो रहा है ? यह मानव अपनी अज्ञानता के कारण, मकान रूपी शरीर से ही राग, द्वेष कर रहा है जिसको भगवान् ने आत्मा के रहने के लिये बनाकर दिया है। इस मूर्ख को यह पता ही नहीं है कि मकान तो निर्जीव है, जड़ है। मकान को दर्द या नुकसान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दर्द या नुकसान तो उसमें रहने वाले परमात्मा के पुत्र अर्थात् अंश, आत्मा को हो रहा है।

जब यह अज्ञानी मनुष्य दूसरों की आत्मा को कष्ट दे रहा है, उसे दुःखी कर रहा है तो वह आप सुखी कैसे रह सकता है ? वह अपनी ही आत्मा, जो स्वयं उसके शरीर में बैठी है, को ही दुःखी कर रहा है। क्या अपनी या दूसरों की आत्मा में कोई भेद है ? कोई अंतर है ? नहीं। दोनों की आत्मा एक जैसी ही है। सभी जीवों में एक जैसा ही खून है और सभी के खून का रंग लाल है। जब सभी एक हैं तो दूसरों से द्वेष करना, अपने से ही द्वेष करना है। यही बात मनुष्य नहीं समझता। कितनी अज्ञानता है ! कितनी मूर्खता है ! इस बात को न समझने के कारण, वह जीवों को कष्ट दे रहा है और हर पल अशांत रहता है। उसे स्वप्न में भी शांति नहीं मिलती। जब वह गलत काम करता है तो उसके अंदर बैठी आत्मा उसे मना करती है पर वह उसकी बात को अनसुना कर देता है और गलत काम कर बैठता।

जब किसी सच्चे संत के समझाने से उसके ज्ञान–नेत्र खुल जायेंगे तो मानव सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा बड़े से बड़ी जीवात्मा को, भूलकर भी नहीं सतायेगा। सभी का भला करने में अपना जीवन लगा देगा। तन, मन से सबका भला करने में लग जायेगा। तब उसके हृदय में–

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।"

का स्वभाव आरोपित हो जायेगा। पर यह अवस्था आयेगी कैसे ? यह अवस्था आयेगी किसी सच्चे संत के समागम से व

हरिनाम–स्मरण की कृपा से। हरिनाम की कृपा नहीं होगी तो सच्चा संत मिलेगा ही नहीं और हरिनाम की कृपा होगी केवल वृन्दा महारानी (तुलसी देवी) की सेवा से सच्चा संत मिल जाऐगा।

इसलिये श्रीगौरहरि (महाप्रभु) ने हरिनाम की चौंसठ (64) माला करने पर बार–बार ज़ोर दिया है और कहा है कि जो नित्य चौंसठ (64) माला करेगा उसका इसी जन्म में उद्धार हो जायेगा। एक माला की रियायत भी नहीं होगी। तरेसठ (63) माला से भी काम नहीं बनेगा। माला करने में कोई छूट नहीं। एक लाख हरिनाम, चौंसठ (64) माला करना अनिवार्य है, अति आवश्यक है। मन हरिनाम में लगे या न लगे पर जो चौंसठ (64) माला करेगा उसे वैकुण्ठ धाम तो मिल ही जायेगा। यह बात 'हरिनाम चिंतामणि' में नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी ने बोली है। आप इस पुस्तक में पेज 33 से पेज 47 पर देख सकते हैं।

एक कृष्णनाम यदि मुखे बाहिराय।
अथवा श्रवण–पथे अन्तरेते जाय।।
शुद्ध वर्ण हय वा अशुद्ध वर्ण हय
ताते जीव तरे, एइ शास्त्रेर निर्णय।।

यदि किसी के मुख से एक श्रीकृष्ण नाम यानि एक बार भी 'श्रीकृष्ण' नाम निकल जाये या फिर कानों के द्वारा सुनकर उसके अंदर प्रवेश कर जाये तो 'श्रीकृष्ण' नाम के प्रभाव से वह जीव भवसागर से पार हो जाता है । वह जीव भले ही शुद्ध वर्ण का हो या अशुद्ध वर्ण का हो। यह शास्त्रों का निर्णय है।

वैकुण्ठादि–लोकप्राप्ति नामाभासे हय।
विशेषतः कलियुगे सर्वशास्त्र कय।।

भले ही हरिनाम में मन लगे या न लगे, श्री हरिनाम करते–करते नामाभास से ही वैकुण्ठादि लोकों की प्राप्ति हो जाती है। विशेषकर इस कलियुग में तो यह सुनिश्चित है, ऐसा सभी शास्त्र कह रहे हैं।

चौंसठ (64) माला करने से साधक मरने के बाद कई युगों तक वैकुण्ठ धाम में वास करेगा, जहाँ दुःख या कष्ट की छाया भी

नहीं है। वहाँ रहने के बाद, उसका जन्म किसी भक्त के घर में होगा। उसका जन्म किस लिये होगा ? उसका जन्म इसलिये होगा कि उसका भगवान् से संबंध–ज्ञान बन जाये क्योंकि संबंध–ज्ञान हुये बिना उसे गोलोकधाम नहीं मिलेगा।

जिस प्रकार जब तक किसी कन्या का संबंध किसी युवक से नहीं होगा तब तक वह अपने माँ–बाप के घर में, अपने पीहर में ही रहेगी। जब उसका संबंध किसी युवक से बन गया तो वह उस युवक के साथ अपनी ससुराल में रहेगी। इसी प्रकार जब तक भक्त को संबंध–ज्ञान नहीं होगा तब तक वह वैकुण्ठ में ही रहेगा। जब उसे भगवत् से संबंध–ज्ञान हो जायेगा तो उसे गोलोकधाम में ही जाना पड़ेगा। उस भक्त का भगवान् से सखा, भाई, पुत्र, पिता या दास आदि का कोई भी संबंध हो जाता है तो भगवान् उसे अपने से दूर रख नहीं सकते। उसे अपने पास ही रखेंगे। संबंध–ज्ञान नहीं होने से ही दूरी बनी हुई है। जैसे शादी के बाद कन्या अपने पति के साथ ही रहना चाहती है और पति भी अपनी धर्मपत्नि के साथ ही रहना चाहता है, उसी प्रकार भगवान् भी अपने भक्त के बिना नहीं रह सकता। वह भी अपने भक्त के साथ ही रहना चाहता है और भक्त भी भगवान् से अलग रहने को तैयार नहीं है।

गहराई से समझना पड़ेगा कि जैसे शरीर के किसी अंग को चोट पहुँचे तो सारा शरीर ही अशांत हो जाता है क्योंकि सभी अंग अपने हैं। इसी प्रकार किसी भी जीवात्मा को कष्ट पहुँचाना, अपनी जीवात्मा को ही कष्ट देना है। आत्मा–आत्मा सभी एक हैं, इनमें भेद करना मूर्खता है। जिसको सच्चा ज्ञान हो गया वह कभी हिंसा नहीं करेगा। कभी किसी को भी नहीं सतायेगा। मन, वचन या कर्म से किसी भी तरह, किसी जीवात्मा को कष्ट पहुँचाना हिंसा का ही विस्तृत रूप है।

किसी भी तरह से मन, वचन, कर्म से किसी जीवात्मा को कष्ट पहुँचाना, ईर्ष्या, द्वेष करना, हिंसा ही तो है । यह ईर्ष्या, द्वेष शरीर से कैसे होगा ? शरीर तो निर्जीव है, जड़ है। यह हुआ जीवात्मा

से। जब जीवात्मा से राग, द्वेष किया तो अपनी जीव–आत्मा दुःखी हो गई क्योंकि दोनों आत्माएं एक ही तो हैं। इनमें किंचित मात्र भी भेद नहीं है। यही तो ज्ञान है। इसको न समझना ही अज्ञान है। जब ऐसा ज्ञान मानव के हृदय में उदय हो जायेगा अर्थात् ज्ञान का सूर्य उग जायेगा तो अज्ञान का अंधेरा भाग जायेगा। तब बुद्धि पर पड़ा हुआ माया का पर्दा, सदा के लिये दूर हो जायेगा एवं जीवात्मा का जन्म–मरण का दारुण दुःख सदा–सदा के लिये दूर हो जायेगा। ऐसा मानव भगवत्–स्वरूप के गुणों में परिणित हो जायेगा। उसको कण–कण में भगवान् ही नज़र आयेगा। फिर किसी को कष्ट देने का प्रश्न ही नहीं रहेगा। उसे इसी जन्म में भगवद–प्राप्ति हो जायेगी। जब भगवद्–प्राप्ति हो गई फिर उसके लिये बाकी रहा ही क्या ?

ऐसा आचरणशील वैष्णव ही पूरे ब्रह्मांड को तार सकता है। ऐसे आचरणशील मानव का प्रभाव दूर–दूर तक चारों ओर फैल जायेगा। उसके संग से गंदा भी शुद्ध हो जायेगा। दुर्गन्ध दब जायेगी तथा सुगंध चारों ओर फैल जायेगी। जब शरीर को आत्मा छोड़ देती है तो वही शरीर घृणा का पात्र हो जाता है अतः इस शरीर की कीमत नहीं, कीमत आत्मा की है। निष्कर्ष यह निकला कि मूल्यवान पदार्थ से ही प्रेम का संबंध रखने में भलाई है। जैसे मानव के अर्थात् किसी भी चर–अचर आत्मवत् शरीर में दर्द होता है तो वह दर्द आत्मा को महसूस होगा क्योंकि आत्मा सजीव है। क्योंकि चर–अचर प्राणियों के शरीर जड़ हैं, निर्जीव हैं, इनको दर्द महसूस नहीं होगा। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

(गीता 2.23)

आत्मा शाश्वत् है। इसे न शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी इसे गीला कर सकता है और न हवा इसे सुखा सकती है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल और सनातन है।

पंच तत्व से आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। शरीर में जब आत्मा विराजमान रहेगी तो आत्मा को ही सुख–दुःख का अनुभव होगा। जब आत्मा शरीर से निकल जायेगी तो शरीर को कैसा भी दुःख दिया जाये, शरीर जड़वत् ही रहेगा। इसलिये आत्मा को समझना बहुत ही गहन विषय है। साधारण मानव तो इसकी हवा तक भी महसूस नहीं कर सकता।

जिस पर असीम भगवद्–कृपा होगी, वही इस आत्मा को समझेगा या जिसके सिर पर भक्त का हस्तकमल होगा, वही इसे समझेगा। शरीर में आत्मा का अस्तित्व नहीं होने से जीव का कर्म भोग कैसे होगा ? जो भी भक्त–साधक इस आत्मा को अच्छी प्रकार समझ जायेगा, उससे भूलकर भी बुरा कर्म नहीं होगा। दूसरों का दर्द भी उसे अपने आप को महसूस होने लगेगा। दूसरों का सुख भी उसे सुखी करेगा। उसका तो अन्तःकरण ही निर्मल हो जायेगा। उसकी बुद्धि तात्विक विचारों में बदल जायेगी। उसके मन का संकल्प–विकल्प चिन्मय अर्थात् अलौकिक वृत्ति में बदल जायेगा। ऐसे संत का आशीर्वाद अमोघ होगा तथा श्राप भी अमोघ होगा। ऐसे संत के वचन को भगवान् भी नहीं बदल सकते, वे असमर्थ हो जाते हैं। जिस प्रकार देवर्षि नारद ने भगवान् राम को श्राप दे दिया था कि तुम भी अपनी धर्मपत्नी के लिये तड़पते फिरोगे क्योंकि तुमने मेरी शादी होने में बाधा डाली है।

मर्यादा पुरुषोतम भगवान् श्रीराम तो अपने भक्त की सदा ही रक्षा करते हैं, उसे माया में फंसने से रोकते हैं इसलिये उन्होंने नारद जी की शादी नहीं होने दी और नारद जी का श्राप भी अपने सिर पर धारण कर लिया। नारद जी का यह श्राप भी भगवान् की लीला करने हेतु इच्छा का ही कारण था अन्यथा लीला का उद्गम कैसे होता? भगवान् की लीला को कोई भी नहीं समझ सकता। हां, भगवान् का प्यारा भक्त ही उसे थोड़ा समझ सकता है।

मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि भक्तगण ध्यान से सुनो कि भगवान् का मिलन, किस साधन या स्वभाव की वृत्ति से होता है।

बच्चे की तरह रोने से भगवत्–मिलन शत्–प्रतिशत् (100 प्रतिशत) हो जाता है। साधक का रोना तो अपने हाथ में नहीं है, यह तो अन्तःकरण की वृत्ति है। अन्तःकरण ही जब भगवान् को चाहेगा तब ही भगवत्–मिलन होगा। अन्तःकरण किस साधन से चाहेगा ? केवल मन से हरिनाम करने से। मन से हरिनाम होगा कैसे ? यह होगा श्रीगुरुदेव के आदेश की कृपा से। श्रीगुरुदेव के आदेश की कृपा कैसे होगी ? जब साधक वृन्दादेवी अर्थात् तुलसी महारानी की सच्ची सेवा करेगा। तुलसी महारानी की सच्ची सेवा कैसे होगी ? जैसे कोई पुत्र हृदय से अपनी माँ की सेवा करता है। हर पल माँ की देखभाल करता है ताकि माँ को कोई भी कष्ट न हो जाये। समय–समय पर माँ को यह पूछते रहना कि तुम्हें क्या चाहिये ? तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है, कोई असुविधा हो तो मुझे बता दिया करो। माँ कहती है–हे बेटा ! तेरी सेवा अकथनीय है। मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। मेरा आशीर्वाद है कि तेरा जीवन सुखमय बीतेगा। मरने के बाद भी सुखी रहेगा अर्थात् तेरा किसी सुखी लोक में जन्म होगा।''

इस प्रकार से जो भक्त तुलसी महारानी की सेवा करके वृन्दादेवी को प्रसन्न कर लेगा, उसकी हरिनाम में रुचि बनकर, उसके हृदय में भगवत्–विरह प्रगट हो जायेगा। यह भगवत्–विरह ही भगवान् के अन्तःकरण को उथल–पुथल कर देता है और भगवान् भक्त को मिलने के लिये तड़पने लग जाते हैं। यह अवस्था तब आती है जब मन से उसका संसार से नाता टूट जाता है। जब तक मन में संसार विराजेगा तब तक भगवत्–प्रेमावस्था उदय होगी ही नहीं। यह पक्की बात है।

जब तक मन में परहित करने की भावना नहीं होगी तब तक समझिये कि अन्तःकरण निर्मल नहीं हुआ। तब तक–

''तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।''

की अवस्था आ नहीं सकती। साधक से नामापराध तथा वैष्णव

अपराध होता रहेगा। इसलिये सच्चे सत्संग की परमावश्यकता है, जो धर्मग्रंथों से तथा सच्चे साधु–संग से ही प्राप्त हो सकेगा। जब बुराईयों से बचता रहेगा तब ही ऐसे संग का प्रभाव अन्तःकरण में जमता रहेगा। इसमें सीमित आहार–विहार ही सहायक है। जितना हो सके, कम से कम करे। ये अंदर के शत्रु काम, क्रोध, मोह, लोभ, वृद्धावस्था में अधिक हावी हो जाते हैं पर जो भजनानन्दी है, उसका पीछा ये छोड़ देते हैं।

आजकल टेलीविज़न (टी.वी.) साक्षात् कलि महाराज का अवतार है। मानव के मन को दूषित करने वाला प्रथम रोग टी.वी. ही है। समय की बरबादी तथा शुद्ध आचरणहीनता का द्योतक केवलमात्र टी.वी. है। भारत की संस्कृति लोप होती जा रही है। भारत का मानव अब हिन्दी बोलने में अपनी बेईज्जती समझता है। विदेशी भाषा, अंग्रेज़ी बोलने में अपना गौरव समझता है। हिंदु–समाज की सिर की शिखा अर्थात् चोटी भी गायब हो चुकी है। जिस साधक के सिर पर चोटी नहीं है उसका धर्म–कर्म मिट्टी में मिल जाता है। विज्ञान ने भी चोटी रखने के कई लाभ घोषित किये हैं। इससे बुद्धि में शुद्ध संकल्प–विकल्प आते रहते हैं। आदमी बुरे विचारों से बचता रहता है। चोटी रखने से शरीर में अमृत प्रवाहित होता रहता है। चन्द्रमा भी धरातल पर पेड़–पौधों को अमृत प्रदान करता रहता है। चोटी इस अमृत को खींच कर पूरे शरीर में प्रवाहित करती रहती है और शरीर अनेक रोगों से बचा रहता है। अंदर–बाहर के सभी रोग शरीर में घुसने में असमर्थ रहते हैं। अतः सभी साधकों से अनुरोध है कि सभी महानुभाव चोटी रखें।

मर्यादा रखने वाले का तो कलि महाराज शत्रु है। वह सबकी मति बिगाड़ रहा है। पहले सभी हिन्दू धोती–कुर्ता पहनते थे। पैंटे पहनकर न अर्चन–पूजन या संध्या होती थी न ही महाप्रसाद वितरण होता था। सबके लिये धोती–कुर्ता पहनना आवश्यक था। प्रसाद का सम्मान होता था। आजकल कोई ध्यान ही नहीं है। आजकल प्रसाद झूठा छोड़कर फेंक दिया जाता है। प्रसाद का

अपमान होता है। फिर हरिनाम में मन कैसे लगे ? परोसने वाला भी अपराधी, खाने वाला भी अपराधी। ऐसे साधकों के लिये हरिनाम भार है। आज गाँवों में भेड़–बकरी चराने वाले चरवाहे भी बिना पैंट के जंगल में नहीं जाते। पैंट में कितनी असुविधा होती है। न बैठने की सुविधा, न चलने की सुविधा । पैंट की वजह से नाभि के नीचे से हवा भी नहीं जाती। सभी हिन्दू धर्म त्याग कर मुस्लिम धर्म अपनाते जा रहे हैं। अंग्रेज इत्यादि सभी विदेशी मूल में मुसलमान ही होते हैं। मानव की बहुत पहले से ही दो जातियां थीं। एक थी आर्य और दूसरी थी द्रविड़। आर्य हिन्दुत्व में तथा द्रविड़ अन्य जातियों में आता है जो मुस्लिम जाति से संबंधित होती है। भगवान् को तो सभी मानते हैं। कोई किसी शब्द से उसे पुकारता है तो कोई किसी शब्द से पुकारता है। भगवान् तो भावग्राही है। सबकी पुकार मानते हैं।

शरीर में तीन नाड़ियों का स्त्रोत होता है। पहली ईड़ा, दूसरी पिंगला तथा तीसरी सुषुम्ना। ईड़ा और पिंगला का सांस माया में प्रवाहित होता है एवं सुषुम्ना का सांस भजन की परमहंस अवस्था में प्रवाहित होता है। जब मन एकाग्र अवस्था में होता है तब सांस की गति स्वतः ही सुषुम्ना नाड़ी की गति में आकर प्रवाहित होने लग जाती है। तब भक्तिमान साधक को एक अलौकिक खुशी अन्तःकरण में होने लगती है। मन भगवान् को चाहने लगता है। पर जब ईड़ा–पिंगला में सांस चलने लगता है तब मानव के मन में कामनाओं का जाल बिछ जाता है।

योगियों तथा भक्तों को जब मौत आती है तो चोटी के रास्ते से ब्रह्मांड फोड़कर प्राण शरीर से बाहर निकलता है। इस ऊर्ध्वगति में मानव सुखमय लोकों में चला जाता है। ऐसे लोक भी अनंत हैं। इन लोकों में दुःख व कष्ट की हवा भी नहीं है। इसलिये सभी साधक भविष्य में चोटी अवश्य रखें। इससे हरिनाम में मन अवश्य लगेगा। मन में एकाग्रता होगी। चोटी (शिखा) रखने के लाभ उन सभी को बताओ जो इस प्रवचन को नहीं सुन रहे हैं, इससे बताने

वाले को भी लाभ होगा। हरिनाम उस पर कृपा करेगा। उसका हरिनाम में मन लगेगा।

मैंने प्रत्यक्ष में देखा है जब भी श्रीगुरुदेव के पास उनका कोई शिष्य आता था तो श्रीगुरुदेव उससे पूछा करते थे कि सिर पर चोटीं है या नहीं। गले में तुलसी माला है कि नहीं। जनेऊ का पालन करते हो या नहीं। ज्यादा बाल भी मत रखो। भक्ति मार्ग में आगे बढ़ने के लिये इन बातों का विशेष ध्यान रखो।

जब कोई भक्त संध्या करने बैठता है और पंचपात्र में जल भरकर, गंगा आदि नदियों का आवाह्न करने के लिये, अपनी उंगुलियों से जल को छूता है एवं पंचपात्र में एक तुलसीपत्र डालता है तो पंचपात्र का जल पवित्रता में बदल जाता है। पंचपात्र के जल को पवित्र करने का मंत्र इस प्रकार है–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जले अस्मिन् संन्निधि कुरु।।

फिर तीन बार आचमन करता है–

ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः।।

आचमन के जल को केवल होठों से छूना ही काफी है, इसे पीना उचित नहीं है, होठों से छुये हुये जल को एक तरफ ज़मीन पर छोड़ते रहना चाहिये। यही शुद्ध आचमन कहलाता है। पंचपात्र के जल को पीना उचित नहीं है। इस जल को तुलसी महारानी के पौधे में डालना ही सर्वोत्तम है। तुलसी में जल देकर, उसकी चार परिक्रमा लगाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् करना चाहिये ताकि तुलसी मैया की प्रसन्नता उपलब्ध हो सके। जब तुलसी मैया प्रसन्न होगी तब ही हरिनाम में मन लगेगा। जब तुलसी पत्र तोड़े तो पहले तुलसी मैया को प्रणाम मंत्र से प्रणाम करे फिर बाद में मंत्र द्वारा ही तुलसी पत्र तोड़े। तुलसी प्रणाम–मंत्र इस प्रकार है–

"वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णु भक्ति प्रदे देवि सत्यवत्यै नमो नमः।।"

तुलसी दल चयन करते समय यह मंत्र बोलें –

"तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थ चिनोमि त्वां, वरदा भव शोभने।।"

तुलसी पत्र तोड़ते समय यदि ऊपर लिखा प्रणाम् मंत्र याद न हो तो हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करते हुये तुलसी पत्र चयन करना चाहिये। तुलसी पत्र के अभाव में भगवान् कुछ भी ग्रहण नहीं करते। इसलिये सबसे पहले तुलसी मैया की प्रसन्नता परमावश्यक है। गर्मियों में ज्यादा धूप से बचाना तथा सर्दियों में ज्यादा ठंड से कपड़े आदि से ढक देना इत्यादि सेवा ज़रूरी है। ध्यान दें ! तुलसी मैया की सेवा के बाद ही गुरु–वैष्णवों की प्रसन्नता उपलब्ध हो सकेगी। भक्ति का प्रागट्य ही तुलसी मैया के हस्तकमल से होता है।

इसी मकान (शरीर) रूपी पेड़ पर दो पक्षी घोंसला बनाकर रहते हैं। एक है जीव तथा दूसरा है जीवात्मा। आत्मा भोक्ता है, जीव भोग्य है। लेकिन माया के हावी होने से जीव भोक्ता बन बैठा, इसलिये उसे (जीव को) कर्म भोग भोगना पड़ गया। यह जीव–आत्मा स्वयं मालिक बनकर बैठ गया और दुःख सागर में डूब गया। यही जीव का अज्ञान है। इसी अज्ञान के अंधकार में उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता है। यही कारण है कि वह भटकता रहता है। याद रखो कि यहाँ जो कुछ भी है, जो भी दिखाई दे रहा है, सब भगवान् का है। हम न कुछ साथ लेकर आये थे और न ही साथ लेकर जायेंगे। खाली हाथ आये थे और खाली हाथ जायेंगे। यदि हम सब कुछ भगवान् का मान लेवें तो दुःख से पाला ही क्यों पड़े। सब कुछ भगवान् का मान लेने से सुख ही सुख होगा और आनंद भोग करेगा। यही मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश तथा उपदेश है।

– हरि बोल –

27

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक 27.01.2012

प्रेमास्पद शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् के प्रति विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवान् अहैतुकी कृपा करते हैं

मानव अपने गृहस्थी में तथा अपने व्यापारिक धंधों में इतना फंसा पड़ा है कि उसे यह भी नहीं पता कि वह कहाँ से आया है? किसने उसे पैदा किया है ? और अपने जीवन में क्या करना उसका कर्तव्य है? सच्चा उद्देश्य उसका क्या है ?

भगवान् के अनंतकोटि अखिल ब्राह्मांड हैं। सभी भगवान् की संतानें हैं। प्रत्येक ब्राह्मांड में शिव, ब्रह्मा व विष्णु अपने–अपने काम में नियुक्त होकर सृजन, पालन व संहार करते रहते हैं। प्रत्येक ब्राह्मांड में भगवत् अवतार लेकर अपनी लीलाओं का विस्तार करते रहते हैं लेकिन श्रीराम तथा श्रीकृष्ण अनेक नहीं है, एक ही हैं। कहीं रामावतार हो रहा है तो कहीं कृष्णावतार हो रहा है। इन अवतारों का उद्देश्य भी यही है कि मानव इन अवतारों की लीलाएँ सुन–सुनकर, माया–मोह–ममता से हटकर, अपना मानव जन्म सफल कर, जहां से आया था, और जो मानव का खास घर है, वहीं पर चला जाये तो इसका जो दारुण दुःख है, जन्म–मरण, इससे छुटकारा पा लेवे। संसार तो दुःखालय है। सत–रज–तम, माया के इन गुणों से मानव परेशान रहता है। ये गुण ही इसे अंधा बनाये रहते हैं। इनकी आँखे खोलने वाला, इनको सच्चा मार्ग बताने वाला कोई सुकृतिवश मिल जाये, तो इनका जीवन सफल हो जायें। लीलायें तो निरंतर हो रही हैं। लीलाएँ कभी रुकती नहीं हैं।

प्रत्येक ब्राह्मांड में भगवान् का अवतार होता रहता है। कहीं ठौर नहीं, जहाँ भगवान् की लीलायें न हो रही हों। भगवान् तो सबका बाप है। सभी चर–अचर प्राणी भगवान् के पुत्र हैं। ऐसा कोई बाप हो सकता है जिसको पुत्र प्यारे न हो ? लेकिन पुत्र ही नालायक तथा कुपात्र बन जाये तो इसमें बाप का क्या दोष है ? बाप भगवान् तो अपने पुत्रों को अपने पास बुलाना चाहता है लेकिन चर–अचर प्राणी, जो भगवान् के पुत्र हैं, विषय वासनाओं में इतने रम रहे हैं, फंस रहे हैं कि इनको समय का ध्यान ही नहीं है कि इनकी उम्र कब चली गई। इतना भूल भुलैया में रम गया है कि कब रात हुई और कब दिन चला गया।

मानव की उम्र सौ साल होती है जिसमें कोई ही सौ साल जीता है। सभी अधिक से अधिक सत्तर या अस्सी साल की उम्र में मर जाते हैं तो इनको सत–रज–तम के गुणों के अनुसार अगले जन्म की योनियाँ उपलब्ध होती रहती हैं। मानव जन्म तो फिर अरबों–खरबों युगों के बाद ही भगवत् कृपा से मिलता है। वह भी जब उपलब्ध होता है जब किसी मानव जन्म में किसी साधु की शुभ अवसर अनुसार सेवा बन जाती है तो। सुकृति होने से भगवान् उस जीव आत्मा को मानव जन्म उपलब्ध करा देते हैं इसी कारण धर्मग्रंथ मानव जन्म को बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होना बताते हैं, सुदुर्लभ बताते हैं।

मानव जन्म मिलने पर 20 साल तो खेल कूद में चले जाते हैं। 30 साल धन कमाने–धमाने पारिवारिक पालन पोषण में चले जाते हैं। इस तरह 50 साल तो यूं ही खत्म हो गये तथा 50 साल रात में सोने पर चले जाते हैं। इस तरह से सौ साल का पता ही नहीं चलता। अतः धर्मग्रंथ बोलते हैं कि कोई अरबों–खरबों में एक ही भगवान् को उपलब्ध करता है। सभी चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं तथा बहुत से मानव तो कई युगों तक नरक भोगा करते हैं जो तमोगुणी स्वभाव के होते हैं। भक्ष–अभक्ष, भक्षण करते रहते हैं। उनको प्रथम में नरक में जाना पड़ता है। नरक भोगने के

बाद चौरासी लाख योनियाँ भोगनी पड़ती है। तो मानव जन्म तो सुदुर्लभ होगा ही।

भगवान् तो अहैतुकी कृपा करने को तैयार ही खड़े रहते हैं। परंतु कोई कृपा भी लेने को तैयार हो। मानव प्रथम में स्वयं पर भी कृपा करे तब ही तो भगवत् कृपा उपलब्ध हो। मानव भगवान् की कृपा चाहता ही नहीं है तब भगवान् अहैतुकी कृपा क्यों करने लगे?

मान लो कोई बोले कि मैं तो भगवान् की कृपा चाहता हूँ तो भगवान् तो बोलते हैं कि तू मेरी पूर्ण शरणागत तो हो। अगर तू बोले कि मैं तो पूर्ण शरणागत हूँ तो भगवान् बोलते हैं कि तू झूठ बोलता है। तू पूर्ण शरणागत नहीं है। यदि तू पूर्ण शरणागत होता तो तेरा मन मेरे लिये अकुलाता, तड़पता, रात–दिन खाना–पीना, सोना, हराम बन जाता। क्या ऐसी स्थिति तेरी है ? यदि नहीं है तो तेरा केवल वहम (भ्रम) है कि मैं भगवान् की पूर्ण शरणागत हूँ। क्या तुझे निसदिन कभी अश्रु पुलक होता है ? नहीं होता, तो समझना होगा कि अभी शरणागति की स्थिति बहुत दूर है। मैं तो अहैतुकी कृपा करने को तैयार खड़ा हूँ परंतु तुझमें योग्यता भी हो। कृपा रखने हेतु पात्र भी तो हो।

इसका मतलब प्रत्यक्ष में है कि अभी तेरी आसक्ति संसार में कहीं पर है। संसार की आसक्ति हटी कि मेरी शरणागति हुई। नाम में केवल श्रद्धा की कमी है, तब ही पूर्ण शरणागति नहीं होती। स्तन पीता माँ का शिशु, माँ के पूर्ण शरणागत रहता है। तो माँ उस पर पूर्ण अहैतु की कृपा करती है कि नहीं ? मान लो वह चिड़िया ही क्यों न हो, अपने चीकले को चुग्गा चुगाती है कि नहीं ? क्या वह बड़ा होकर उसको निहाल करेगा ? उसकी माँ में भगवान् की ही दी हुई अहैतुकी कृपा मौजूद रहती है। भगवान् बाप होने से उनका स्वभाव जीवमात्र में होता है।

भगवान् तो सर्वशक्तिमान है ही। भगवान् की ही दी हुई सभी वृत्तियाँ प्रत्येक जीवमात्र में रहती हैं यदि ऐसा न हो तो भगवान् की

सृष्टि चल ही नहीं सकती। जीव, जीव को खाकर अपना जीवन बसर करता ही है। इसी प्रकार से यह नदी का प्रवाह बहता ही रहता है, कभी रुकता नहीं है। भगवान् अहैतुकी कृपा करने हेतु, कौरवों में, दुर्योधन के पास गये लेकिन दुर्योधन ने कृपा लेनी ही नहीं चाहीं। तब इसमें भगवान् का क्या दोष रह गया ? भगवान् तो अहैतुकी कृपा जीवमात्र पर करना चाहते हैं परंतु जीवमात्र लेना ही नहीं चाहता।

भगवान् को दोष देना मूर्खता है मानव ने अपना सत्यनाश स्वयं ही कर लिया। इसमें भगवान् क्या करे ? भगवान् ने अनंत शास्त्र बनाकर रख दिये। मानव इनको देखता तक नहीं। भगवान् ने आनंद का रास्ता शास्त्रों में बता रखा है परंतु मानव आँखें मींचकर बुरे रास्ते पर चलता रहता है। तो कर्म का भोग तो भोगना ही पड़ेगा। भगवान् तो कहते हैं किः–

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सा तस फल चाखा।।

कर्म न हो तो यह सृष्टि चल ही नहीं सकती। कर्म से ही सृष्टि चल रही है। भगवान् का वचन है–''स्वयं मुझको भी कर्म करना पड़ता है यदि मैं कर्म न करुँ तो मेरी सृष्टि का लोप हो जाये। मैं अवतार लेकर कर्म में प्रवृत होता ही हूँ। मुझे भी श्राप–वरदान झेलना पड़ जाता है। श्राप–वरदान केवल मेरे भक्त के हाथ में ही है। किसी को श्राप दिला देता हूँ तो किसी को वरदान। सनकादिकों से जय–विजय को श्राप दिला दिया तो मेरे को तीन बार अवतार लेकर हिरनाक्ष तथा हिरण्यकिश्यपु को मारा। रावण और कुंभकरण को मारा। शिशुपाल व दंतवक्र को मारा। यही तो मेरी खेल भूजाणी है। नारद भक्त ने मुझे श्राप दिया तो मैं रामावतार लेकर धरातल पर आया। सीता हेतु वन–वन भटकना पड़ा। मेरे अवतार के भी कई कारण होते हैं। जिनका लेखन में आना असंभव होता है। श्रीकृष्ण बोलते हैं–''मैं गौरहरि के रुप में अवतार लेकर आया। उस अवतार में, मैंने किसी दुष्ट को, किसी

हथियार से नहीं मारा केवल प्रेम देकर उनके मन को सुधारा और प्रेम किस युक्ति से होता है, वह भी सभी जीव मात्र को स्वयं साधन करके बताया। वह साधन क्या है ? स्वयं मैंने किया और सभी को करने को आदेश प्रदान किया कि जो नित्य एक लाख (64 माला) बार मेरे नाम अर्थात् हरिनाम का स्मरण करेगा वह जन्म–मरण के संसारी दुःख से छूट जायेगा और मेरे वैकुण्ठ धाम में चला जायेगा। फिर वहां से मेरे उच्चतम गोलोक धाम में सदा के लिये पदार्पण कर जायेगा। जब मेरा अवतार धरातल पर होगा, मेरी लीला विस्तार करने हेतु, मेरे साथ पार्षद, ठौर–ठौर में अवतरित होंगे। यह सृष्टि का प्रवाह चलता ही रहता है, कभी बंद नहीं होता। ऐसा सुगम, सरल साधन तीनों युगों में सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग में भी नहीं है, जो कलियुग के जीवों के लिये है। केवल गृह–गृहस्थी में रहते हुये किसी भी ठौर में, किसी भी समय में, किसी भी अवस्था में आसानी से कर सकते हैं। जो बहुत ही दुर्भाग्यशाली होगा वही इस साधन से वंचित रह सकेगा। जो सुकृतिशाली होगा वह इसी जन्म में आवागमन जन्म–मरण से छुट्टी पालेगा, मेरी गारंटी है। केवल मन को संसारी आसक्ति से हटाना परमावश्यक है। तब ही मेरे नाम में मन रत हो पावेगा। मन रत होने पर अश्रुपुलक शरीर में प्रगट हो पड़ेगा। यही अंतिम भाव प्रेम का हो जाता है। इसी भाव से मैं भक्त के आश्रित हो जाता हूँ। भक्त मेरा और मैं भक्त का।''

भगवान् बोलते हैं कि कोई साधक बोले कि मैं तो अहैतुकी कृपा लेना चाहता हूँ, मुझे क्यों नहीं देते हैं ? तो भगवान् बोलते हैं कि तुम्हारी चाहना ऊपर की है, अन्तःकरण की चाहना नहीं है। यदि हृदय से चाहना हो तो तुम शांति से रह नहीं सकते। मेरे लिये क्षण–क्षण में रोओगे, यह लक्षण तो तुममें है ही नहीं। तो तुम अहैतुकी कृपा चाहते कहाँ हो ? पूर्ण शरणागति जब होगी तब ही अहैतुकी कृपा उपलब्ध होगी। मैंने अहैतुकी कृपा दसों दिशाओं में फैला रखी है, कोई लेने वाला भी हो। धर्मग्रंथों द्वारा, तीर्थों द्वारा,

सत्संगों द्वारा, मठ–मंदिरों द्वारा, अनेक संतों द्वारा, फिर बोलते हैं कि अहैतुकी कृपा नहीं है।

सभी जानवर अपनी योनियों में मस्त हैं, कोई भी दुःख महसूस नहीं करता। एक बार नारद जी सूअर को स्वर्ग ले जाने हेतु बोले जबकि सूअर की योनि निकृष्ट योनि है। उसको मानव का मल खाने में ही आनंद आता है। सूअर बोला–''महात्मा जी ! मैं स्वर्ग में जाने को तैयार हूँ पर यह बताओं वहाँ मानव का मल खाने को मिलेगा ?'' नारद जी बोले–'' वहाँ तो सब तरह से स्वादिष्ट भोजन चटनी इत्यादि मिलती है। वहाँ मानव का मल तो नहीं मिल सकता।'' तो सूअर बोला–''मेरे लिये वहाँ का स्वादिष्ट भोजन किस काम का! मेरी खाने की वस्तु ही नहीं है तो मैं जाने को तैयार नहीं हूँ।''

कहने का मतलब यही है कि निकृष्ट जानवर भी जाना नहीं चाहता तो मानव की तो बात ही क्या है ! इसलिये भगवान् अहैतुकी कृपा कैसे और किस पर करें ? अहैतुकी कृपा का कोई इच्छुक ही नहीं है। भगवान् तो अहैतुकी कृपा करने को तैयार रहते हैं। लेकिन लेने वाले में योग्यता भी हो। अहैतुकी कृपा लेने वाला बेईमान है। बेईमान क्यों है ? भगवान् का मन इसके पास है। भगवान् कहते हैं कि मेरा मन तूने जबरदस्ती क्यों ले रखा है ? बेहक किसी की वस्तु लेना बेईमानी नहीं है क्या ? गीता में भगवान् ने बोला है **''इन्द्रियाणां मनश्चास्मि ''** अर्थात् इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। इस मेरे मन को, अपने इन्द्रियों के देवताओं को सौंप रखा है। सुंदर, आकर्षक कोई वस्तु देखी, बस ! मन को आंखे खींच ले गई। मीठा बोल सुनाई दिया तथा अश्लील बातों में कान का देवता मन को खींच ले गया। सुगंधित कोई वस्तु अनुभव हुई कि नाक का देवता मन को खींच ले गया। जीभ को कोई स्वादिष्ट भोग छू गया तो मन उस देवता की तरफ लुभा गया। कहीं सुंदर, स्पर्श शरीर को हो गया तो मन उधर भाग गया।

तो ज़रा विचार करो कि मन तो व्याभिचारी वृत्ति का बन गया तो व्याभिचारी कोई भी क्यों न हो, क्या कोई उसका विश्वास करेगा ? भगवान् तो उसका विश्वास करेगा ही क्यों ? क्या मन भगवान् को चाहता है ? बिल्कुल कपट का व्यवहार खेला जा रहा है। फिर कहते हैं कि हम भगवान् की शरण में हैं। जब भगवान् का मन, भगवान् को ही नहीं सौंपा तो साधक का भगवान् से नाता क्या हुआ ? भगवान् उस पर अहैतुकी कृपा करेंगे ? मन का स्वभाव है कि उसको जो भा गया उसे मन किसी दशा में छोड़ता नहीं। अभी तो मन संसार में भा रहा है तो भगवान् तो बहुत दूर हैं।

जब मन भगवान् को चाहेगा तो मन को पूरी दुनिया की संपति देने को बोला जाये तो मन उसको लात मार देगा। यही है सच्ची शरणागति और सब कहने की बात है। शरणागत का जीवन शरणागत ही जान सकता है। शरणागत संसार को ठोकर देकर चलता है। भगवान् उस पर अहैतुकी कृपा करता है जबकि वह कुछ चाहता भी नहीं है। कृपा स्वयं आकर भक्त के चरण में लोटती है। जब ही तो भगवान् बोलते हैं कि ऐसे भक्त का, मैं खरीदा हुआ गुलाम हूँ। मैं काल का भी काल हूँ। काल भी मुझसे थर–थर काँपता है लेकिन मैं भक्त से थर–थर काँपता हूँ। क्यों काँपता हूँ? क्योंकि भक्त के पास अपना कुछ भी नहीं है। अपना शरीर तक भी अपना नहीं है। जो कुछ है, वह सब कुछ मेरा ही है। भक्त में और मुझ में कुछ भेद नहीं है। भक्त ही भगवान् है और भगवान् ही भक्त है। साधारण साधक इन भावों को समझ नहीं सकता। भगवान् का प्यारा ही इन भावों को समझेगा।

पहले अपने मन को टटोलों कि मन वास्तविक रूप में क्या चाहता है ? संसार को या भगवान् को ? इसका लक्षण होगा कि स्वप्न कैसे आते रहते हैं ? भगवान् के संबंध के या संसार के संबंध के ? क्योंकि व्यवस्था में ही मन की परीक्षा होती है। मन जहाँ रस रहा है उसी के स्वप्न सोने पर आवेगें। इसमें ही स्वयं की परीक्षा हो जायेगी वरना कहना सब फिजूल का है।

भगवान् तो अहैतुकी कृपा करने में चूकते नहीं हैं लेकिन कोई शुद्ध पात्र भी तो हो उस कृपा को भरने हेतु। मेरे गुरुदेव तथा हरिनाम चिंतामणि में 33 पेज से 47 पेज तक जीव आत्मा की गारंटी ले रहे हैं कि भगवत शरणागति न भी हो, चाहें अवगुणों की खान भी हो, यदि साधक 64 माला नित्य बिना मन भी जपता है तो उसका इसी जन्म में सुनिश्चित उद्धार होगा ही। वैकुण्ठगमन होगा ही।

भगवान् को प्राप्त करने हेतु कलियुग जैसा समय ही नहीं है। इसके लिये तो देवता भी तरसते हैं कि हमारा जन्म भगवत् कृपा से कलिकाल में ही हो जावे तो हम भी इस आवागमन के चक्कर से छुट्टी पा जावे। भगवान् कहते हैं कि कलियुग में मेरे ग्राहक ही नहीं हैं। मैं भक्तों के लिये तरसता रहता हूँ क्योंकि मेरा जीवन ही भक्तों से है। केवल मेरा एक लाख नाम, बिना मन, नित्य जपे। सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग में साधन करना बहुत कठिन है। मैं शीघ्र प्रसन्न नहीं होता क्योंकि इस समय के साधकों में तन–मन में शक्ति भरपूर रहती है लेकिन कलिकाल में, साधक हर प्रकार से कमज़ोर रहता है। अतः मेरे नाम का थोड़ा साधन करने से ही मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाता हूँ।

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।

परन्तु मुश्किल यह है कि इस कलियुग में गलत, झूठे मार्ग, साधन करने के बहुत हो जाते हैं। जिनमें साधक फंसकर अपना अमूल्य जीवन बर्बाद कर देता है। भगवान् का वचन है–"कुछ साधन न करो, केवल मेरा नाम जपो। कलियुग में केवल मेरे नाम से ही भवसागर पार हो जाता है। कहीं पर जाने की जरूरत नहीं। किसी समय की जरूरत नहीं, किसी अवस्था की जरूरत नहीं, किसी शुद्धि–अशुद्धि की जरुरत नहीं। जैसी भी हालत में है, कहीं पर भी बैठकर, मेरा नाम स्मरण करता रहे। 64 माला निसदिन करे तो मैं सुगमता व सरलता से साधक को मिल जाता हूँ। भूतकाल में मिला हूँ लेकिन मेरे नामनिष्ठ का संग प्राप्त होना भी बहुत

कठिन है जिससे कि साधक को नाम में पूर्ण श्रद्धा विश्वास बन सके। यह तो किसी सुकृतिशाली को ही भगवत् कृपा से मिलता है। फिर नामनिष्ठ पर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास होना भी बहुत जरूरी है। जब ही इसके आदेश को मानेगा।

नामनिष्ठ का आचरण देखकर ही पूर्ण श्रद्धा विश्वास हुआ करता है। ऐसे साधकों की कमी है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है :– कौरव। भगवान् श्रीकृष्ण के परिवार में ही रहते थे परन्तु कौरव ने श्रीकृष्ण को कभी भगवान् माना ही नहीं। एक साधारण ग्वाल, गायों का चरावाहा मानते रहे।

भगवत् कृपा बिना कोई भी, किसी सच्चे पथिक राहगीर को मान नहीं सकता। पांडवों पर भगवत कृपा थी तब ही पांडव भगवान् को जान सके कि यह तो परब्रहम् सृष्टि का रचैया परमात्मा है। तब ही अर्जुन ने भगवान् की सेना का बहिष्कार कर दिया और केवल श्रीकृष्ण को ही महाभारत युद्ध में अपना साथी चुन लिया जबकि भगवान् श्रीकृष्ण ने कह भी दिया था कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, केवल तेरा रथ हाकूँगा।

अर्जुन जानता था कि जहाँ साक्षात् भगवान् मेरे पास रहेंगे वहाँ हार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। शर्तिया जीत होगी ही। दुर्योधन अज्ञानी था, मूर्ख था, इसलिये उसने भगवान् की सेना लेना ठीक समझा।

पांडवों पर श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपा बरसी। क्यों बरसी ? इसलिये बरसी कि कृपा को भरने हेतु शुद्ध पवित्र पात्र था हृदय। कौरवों पर अहैतुकी कृपा इसलिये नहीं बरसी कि कृपा को भरने हेतु शुद्ध पवित्र पात्र नहीं था। हृदय दूषित था। भगवान् तो अहैतुकी कृपा देने हेतु तैयार खड़े रहते हैं लेकिन कोई योग्य पात्र भी हो। भगवान् बेसमझ नहीं हैं। हम बेसमझ हैं, हम भगवत की अहैतुकी कृपा भरने हेतु योग्य पात्र नहीं हैं।

योग्य पात्र न होते हुये भी भगवान् ने तो हमें सच्चा, सरल,

सुगम सत्संग उपलब्ध करवा दिया। अब हम इस सत्संग का लाभ न उठावें तो इसमें भगवान् का क्या दोष है ? हम ही कर्मफूटे, दुर्भाग्यशाली हैं। अपनी आयु बेकार के कामों में बिता रहे हैं। अमृतमय अवसर खो रहे हैं। श्रीगुरुदेव गारंटी ले रहे हैं कि जो भी साधक 64 माला (एक लाख हरिनाम) निसदिन जपेगा उसका इसी जन्म में उद्धार होना सुनिश्चित है। जैसा कि **"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति"** पुस्तक से 100 प्रतिशत सत्य है। श्रद्धा विश्वास से तो पत्थर भी बोलता है जैसा कि साक्षी गोपाल का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यदि तुम बोलते हो, तो चल भी सकते हो। भगवान् को भक्ति ने बांध लिया, चलना पड़ा। कथा लंबी है, बाद में बोल देंगे। कितने उदाहरण दिये जायें। माधवेन्द्रपुरी जी से भगवान् बोलते थे जो आज श्रीनाथ जी के नाम से भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। मदनमोहन करोली की महारानी की उंगली पकड़ ली थी। रुप गोस्वामी जी को जयपुर के राधा–गोविंद बोलते थे। सनातन गोस्वामी जी को, गोपाल भट्ट गोस्वामी जी को वृन्दावन में राधारमण भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। हरिदास जी के बांकेबिहारी जी वृन्दावन में भक्तों को दर्शन दे रहे हैं।

कहाँ तक गिनाया जाये, कोई अंत नहीं। अब भी भगवान् दर्शन दे रहे हैं लेकिन महात्मा गुप्त हैं। जो भगवान् के प्यारे हैं उन्हें उन महात्माओं के दर्शन होते रहते हैं।

1. वारि मथे घृतहोय बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।
2. हिमते अनल प्रगट बरु होई।
विमुख राम सुख पाव न कोई।।
3. अंधकार बरु रविहिं नसावे, राम विमुख न जीव सुख पावे।।
3. ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वरदान।
रामचरित सत कोटि में लिय महेश जिय जान।।

शास्त्रवचन–पानी को मथने से घी निकल जावे और मिट्टी से तेल निकल जावे परंतु बिना हरिभजन सुख नहीं मिलेगा, यह

बात पक्की है। बर्फ से आग प्रगट हो सकती है लेकिन भगवत् भजन बिना स्वप्न में भी सुख नहीं होगा। अंधकार सूर्य की रोशनी को मिटा सकता है लेकिन भगवत भजन के बिना जीव कभी सुखी नहीं रह सकता। शिवजी ने सौ करोड़ रामायण रची उनमें राम नाम निकालकर पार्वती को संग में बिठाकर जपते रहते हैं। नाम–भगवान् से भी बड़ा इनका नाम है। भगवान् ने तो कुछ को ही तारा परंतु इनके नाम ने अनगिनत तारे और तार रहे हैं। इति।

हरिबोल ! निताई गौर ! हरिबोल !
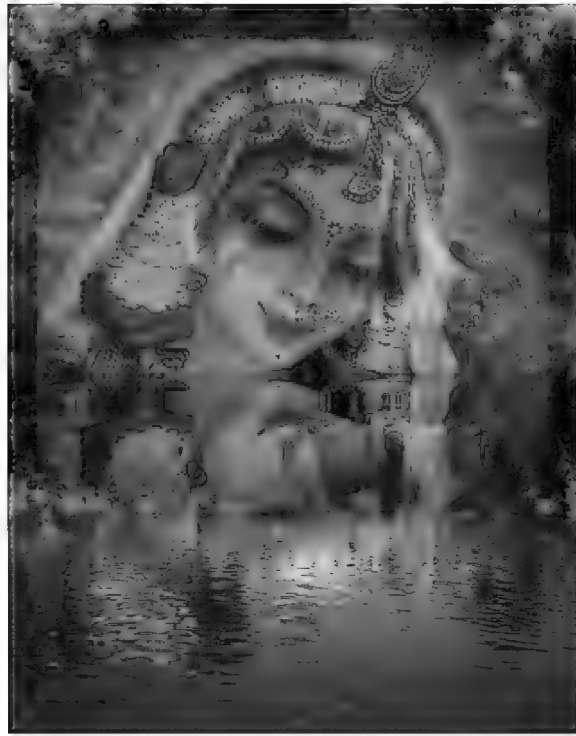
श्रीराधाकुण्ड श्रीराधारानी का ही स्वरूप है।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
राजस्थान

उच्चारण एवं स्मरण

नराधम अनिरुद्धदास

मैंने श्रीगुरुदेव जी को उच्चारण तथा स्मरण को स्पष्ट करने हेतु बोला तो श्रीगुरुदेव जी ने बोला कि उच्चारण ऐसा होना चाहिये जिसमें भगवत् के चरणों में मन हो तो वहीं स्मरण की श्रेणी में आता है। उच्चारण से मन स्थिर रहता है। इसीलिये कीर्तन का प्रचार हुआ।

प्रत्यक्ष में प्रमाण की जरूरत नहीं रहती। कोई भी आज़माकर देख सकता है। हरिनाम जपने के लिये साधक को श्रीगुरुदेव द्वारा दी गई माला माँ है जो माया से रक्षा करती है, प्रसन्न रखती है और पालन करती है। माला एक ऐसा अमोघ हथियार है जो श्रीगुरुदेव ने शिष्य को सौंपा है जिसके द्वारा हम माया से लड़कर स्वतंत्रता उपलब्ध कर सकते हैं और दुःख सागर से पार हो सकते हैं।

माला हमारी मैया है हम इसका जितना आदर सत्कार करेंगे यह उतना ही कृष्ण–प्रेम हमें प्रदान करेगी। इस मैया का आदर सत्कार कैसे करना है ? माला को सदा झोली में रखो। इसमें 108 मणियाँ (Beads) और एक सुमेरु होता है। जब भी माला पर हरिनाम करने लगो तो सबसे पहले माला मैया को सिर से लगाकर प्रणाम करो। फिर हृदय से लगाओ और फिर इसके चरणों का चुंबन करो। जब साधक इस प्रकार भाव व श्रद्धापूर्वक हरिनाम करने के लिये झोली में हाथ डालेगा तो सुमेरू उसके हाथ में आ जावेगा जो इस बात का प्रमाण है कि माला मैया आप पर प्रसन्न

है। जब माला मैया आपसे प्रसन्न होगी तो आपको भगवान् के चरणकमल को उपलब्ध करा देगी अर्थात् भगवान् को मिला देगी। जब भगवान् ही आप को मिल गये तो फिर इस संसार में प्राप्त करने के लिये क्या बचा ? आपको तो सबकुछ ही मिल गया। इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है!

माला के 108 मोती (Beads) गोपियाँ हैं और सबसे बड़ा मोती सुमेरु अर्थात् श्रीकृष्ण हैं। जब आप प्रेम, श्रद्धा एवं भाव से माला करने लगोगे तो माला झोली (Beadbag) में हाथ डालने पर सुमेरू आपको ढूँढना नहीं पड़ेगा। वह स्वतः ही आपके हाथ में आ जायेगा। इस बात को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। यह परीक्षित तथ्य है। माला का आदर–सत्कार नहीं होने से सुमेरु हाथ में नहीं आयेगा अर्थात् भगवान् अदृश्य हो जायेंगे, सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। कई साधक शिकायत करते हैं कि हरिनाम में मन नहीं लगता। मन कैसे लगे ? जब तक माला मैया का आदर–सत्कार नहीं होगा, भाव से हरिनाम नहीं करोगे, मन लगेगा ही नहीं।

देखो ! मैं एक छोटे से गाँव का गंवार व्यक्ति हूँ। मैं धर्मग्रंथों को क्या जानूँ ! पर मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझ पर कृपा करके, मुझे अपनाकर यह सब बताया है। इसलिये इन पत्रों में जो कुछ भी लिखा जाता है, वह श्रीगुरुदेव जी की प्रेरणा से ही लिखा जाता है। इसमें मेरा कोई प्रयास नहीं है।

देखो ! माला हमारी माँ है। माला एक काठ या लकड़ी की वस्तु नहीं है। वह सजीव है, वह चिन्मय है। वह जड़ वस्तु नहीं है। माला माँ हमें अपनी गोद में लेकर हरिनाम नामक अमृत का दूध अपने स्तन से पिलाती रहती है। माला हमारे अनन्त जन्मों का, माया का विषय–वासना रुपी विष अमृतरूपी दूध में डुबोती रहती है। विषय रुपी विष दूध में डूबने से अदृश्य हो जाता है और हमें परमानंद का अनुभव होने लगता है।

जब साधक बिना भाव के, अनमने मन से, हरिनाम करेगा तो माला उलझ जायेगी । माला की झोली (Beadbag) माला मैया का

ओढ़ने का वस्त्र है इसलिये माला झोली को मैला (गंदा) नहीं होने देना। उसे धोते रहना चाहिये। कम से कम प्रत्येक पर्व पर तो माला झोली धोना आवश्यक है। यदि साधक माला झोली को साफ–सुथरा नहीं रखेगा तो यह माला का अनादर होगा। जब माला का निरादर होगा तो माला टूट जावेगी। जब ऐसा होने लगेगा तो भजन में हास हो जायेगा। यह निश्चित् बात है।

माला एक अति अमूल्य, दिव्य व चिन्मय वस्तु है। इसे यहाँ, वहाँ हर जगह रख देने से इसका निरादर होगा। माला को सदा ही साफ–सुथरी जगह रखो। पूजा के स्थान पर रखो या गले में डाल लो। माला झोली को कभी भी खूँटी पर नहीं टाँगना। माला माँ है, सजीव है। माला झोली को हाथ में लेकर किसी के पैर छूना माला का निरादर है। यदि ऐसा करना ही पड़े तो माला झोली को गले में डालकर, गर्दन के पीछे से घुमाकर, पीछे करके पैर छुआ जा सकता है या साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् करना उचित है। माला पर हरिनाम करते हुये गंदे विचार मन में होना भी माला का निरादर है। जब मन में गंदे विचार आ रहे हों तो माला को किसी शुद्ध स्थान पर रख देना उचित है और जब मन में शुद्ध विचार आवें तब माला लेकर जप करना चाहिये।

अधिकतर साधक ऐसा समझते हैं कि जो कुछ भी मेरे द्वारा बोला जाता है वह मेरे द्वारा ही लिखा हुआ होता है। जो ऐसा समझ रहे हैं, वे जघन्य अपराध कर रहे हैं। कई साधक यह भी कहते हैं कि मैं एक बात को बार–बार दुहराता रहता हूँ। किसी भी बात को बारबार इसलिये दुहराया जाता है ताकि वह साधकों के मन में उतर जायें, घर कर जायें।

मेरे गुरुदेव जी, जो भी प्रेरणा करके लिखवाते हैं, वहीं मैं बोलता हूँ। जो प्रसंग चरमसीमा का होता है, उसे बार–बार इसलिये दोहराया जाता है ताकि वह साधकों के ह्रदय में बैठ जाये और उनका भगवान् में मन लग जाये। प्रत्येक रविवार को जो कार्यक्रम होता है, उसमें नई से नई चर्चा होती है, यह सब मेरे

श्रीगुरुदेव करवा रहे हैं। मैं तो अनभिज्ञ हूँ। मैंने न तो कभी सत्संग किया और न ही शास्त्रों को पढ़ा। मुझे कभी समय ही नहीं मिला। राजकार्य और बच्चों को पढ़ाने में ही समय बीत गया। मेरे जैसा गंवार क्या इतने पत्र लिख सकता है ? इसलिये मैं जो कुछ भी बोलता हूँ, वह सब मेरे श्रीगुरुदेव जी की ही वाणी है। जो इसके विपरीत समझता है, वह घोर अपराधी है। ऐसे साधकों का मन हरिनाम में लग ही नहीं सकता क्योंकि वह मेरे श्रीगुरुदेव के चरणों में अपराध कर रहा है। मैं सभी साधकों को सतर्क एवं सावधान करने के लिये आज यह बोल रहा हूँ। अतः सभी साधकगण सावधान हो जायें अन्यथा मेरे प्रवचन सुनना और आयोजन में आना केवलमात्र परिश्रम की श्रेणी में आवेगा। इससे कोई लाभ नहीं होगा।

मेरे श्रीगुरुदेव जो भी प्रसंग अंकित करवाते हैं वह केवल भगवान् को पकड़ने का ही करवाते हैं। भगवद्–लीला के प्रसंग बहुत कम अंकित करवाते हैं। जहाँ बहुत जरुरी होता है, वहीं पर भगवद्लीला का प्रसंग लिखना पड़ जाता है वरना सब चर्चाएँ मन को भगवान् में लगाने की होती हैं। यदि साधकगण यह सोचते हैं कि रविवार को होने वाला आयोजन अनिरुद्ध का (मेरा) ही है और मेरे श्रीगुरुदेव का नहीं है और आप इसे सुनना नहीं चाहते तो मैं इस आयोजन को बंद कर देता हूँ। पर इसका अपराध मुझे नहीं लगेगा। इसका अपराध आप साधकों को ही लगेगा। मुझे तो कोई भी लोभ नहीं है। मेरा काम तो श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार प्रचार करना है।

किस साधक का भजन सच्चा है ? निरपराध सच्चे भजन की कसौटी में वही साधक आता है जिसे भगवद्–प्रेम होने पर विरहावस्था उदय होगी। यदि विरहावस्था उदय नहीं हुई है तो समझना होगा कि साधक अभी तक माया में ही फंसा पड़ा है। वह भले ही अपने आप को बहुत बड़ा ज्ञानी समझे, पर उसके हाथ केवल परिश्रम ही लगेगा। भगवान् पांडित्य से नहीं मिलते। भगवान् मिलते हैं अन्तःकरण

के प्रेम से और वह प्रेम मिलता है–**"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि"** अर्थात् अपने आप को तृण (घास) के तिनके से भी अधिक विनम्र बनाकर, वृक्ष की तरह सहनशील बनकर, दूसरों को सम्मान देकर, भगवान् श्रीकृष्ण के नामों का कीर्तन करने से ही श्रीकृष्ण प्रेम हृदय में उदय होगा। जिस साधक में ये गुण उदय हो जायेंगे, वह हरिनाम को प्रेम से कर सकेगा अन्यथा तो उसका हरिनाम भार स्वरूप ही होता रहेगा। ऐसे साधक का जीवन बर्बाद है। यदि साधक में विनम्रता नहीं होगी तो उसमें अहंकार आ जायेगा और बड़प्पन का भाव उस पर हावी हो जायेगा।

यह बात एक बार फिर ध्यान से सुनने की कृपा करें। प्रेममयी विरह किस साधक का होता है ? यह उसी साधक का होता है जिसकी संसारी मोह ममता मूल सहित समाप्त हो गई हो। फिर वह प्रेममयी विरह चाहे भगवान् से हो, चाहे किसी इंसान से हो। सती का प्रेम अपने प्रवासी पति से होता है तथा भक्त का भगवान् से होता है। पुत्र का पिता से होता है और भातृ–भक्त का भ्राता से होता है। इतना ही नहीं देशभक्त का अपने देश से प्रेम होता है। भले ही जान चली जाये परंतु यह प्रेम मन से हटता नहीं। यह एक उच्चतम् "भाववृत" है। इसको वही महसूस कर सकता है जिसको इसका अनुभव है। साधारण साधक तो इसकी छाया भी छू नहीं सकता। जब यही प्रेम भगवान् से होता है तो साधक भगवद्धाम चला जाता है।

प्रेम तथा दुश्मनी एक ही पिता की संतान हैं। अतः पिता इन दोनों से ही समान रुप में प्रेम करता है। दुश्मनी भी उसके लिये प्रेम का प्रतीक है और प्रेम तो है ही। पूतना राक्षसी ने भगवान् श्रीकृष्ण को मारने के लिये उन्हें अपने स्तन से दूध पिलाया। उसके स्तन के ऊपर ज़हर लगा हुआ था। वह भगवान् को ज़हर वाला दूध पिलाकर मार देना चाहती थी। उसने भगवान् से शत्रुवत् व्यवहार किया। पर भगवान् ने उसे भी अपनी माँ का दर्जा देकर

अपने धाम भेज दिया। यह भगवान् की दयालुता है, उदारता है, करुणा है, कृपा है। कोई किसी भी भाव को लेकर उनके पास जाता है, वे उसका मंगल ही करते हैं। भगवान् कभी किसी का अमंगल नहीं किया करते।

जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, सब भगवान् की सृष्टि से ही तो आते हैं। प्रेम, करुणा, दया, ईर्ष्या, द्वेष, गाली–गलौज सभी ब्रहमा जी की सृष्टि से ही तो उत्पन्न हुये हैं। ब्रह्माजी भी स्वयं भगवान् हैं पर नाम है ब्रह्मा। शिव भी भगवान् ही हैं। उन्होंने अपना नाम शिव रख लिया। इस सृष्टि में एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें भगवान् नहीं हैं या फिर जो भगवान् का अंश नहीं है। जो कुछ ही दृष्टिगोचर हो रहा है सबमें भगवान् हैं। कण–कण में भगवान् हैं पर यह बात भगवत्–कृपा बिना समझ में नहीं आती। साधारण साधक के लिये इसे समझना असंभव है।

एक साधारण सी बात है। एक शिशु जो बिल्कुल नासमझ है, अपने माँ–बाप को लकड़ी (डंडा) से मार देता है तो क्या माँ–बाप नाराज़ हो जाते हैं ? छोटा सा शिशु अपनी माँ की गोद में लेटा हुआ दूध पीते–पीते, को अपने छोटे–छोटे दाँतों से माँ के स्तन को काट देता है तो क्या माँ उसे थप्पड़ मारती है ? नहीं ना। जब एक साधारण माँ अपने बच्चे को इतना प्यार करती है तो भगवान् जो पूरे ब्रहमांड के माँ–बाप हैं, जो एक बहुत उच्चकोटि की माँ है, क्या उन्हें अपने बच्चे पर क्रोध आ सकता है ? स्वप्न में भी नहीं। राक्षस भी नासमझी (अज्ञानता) की श्रेणी में आते हैं। क्या भगवान् उनसे नाराज़ होते हैं ? भगवान् उन्हें मारकर अपने धाम में भेज देते हैं।

यह बहुत उच्च श्रेणी की चर्चा है। एक साधारण साधक इसे क्या समझेगा ! उसकी समझ में यह बात आयेगी भी नहीं। वह तो भगवान् की इन लीलाओं का उल्टा अर्थ निकालकर अपराधी बन जाता है। भगवत् कृष्ण बिना कोई भी इस भाव को नहीं समझ सकता।

भगवान् किसी को निमित्त बनाकर अपनी लीलाओं का विस्तार करते रहते हैं। यदि वे सूर्पनखा की नाक नहीं काटते तो न तो रावण मरता और न ही विभीषण को लंका का राज उपलब्ध होता। बिना निमित्त बनाये भगवान् को भी लीला करने का अवसर नहीं मिलता। ऐसे ही भगवान् ने कंस का वध करके राक्षसों को मारा। राक्षस भगवान् से शत्रुभाव रखते थे अतः वे भगवान् श्रीकृष्ण को मारने आये तो क्या भगवान् ने उन्हें नरक में भेजा ? नहीं! भगवान् ने उन सबको अपने धाम में भेज दिया। भगवान् ने अपने भक्त प्रहलाद को निमित्त बनाकर हिरण्यकिश्यपु को मारा अन्यथा हिरण्यकिश्यपु का वध होता ही नहीं क्योंकि उसने तो ब्रह्मा जी को प्रसन्न करके सारे वरदान प्राप्त कर लिये थे। यदि नृसिंह भगवान् नहीं आते तो हिरण्यकिश्यपु का वध होता ही नहीं। ऐसे अनेकों कारण हैं जिनसे भगवद्–लीलाओं का उद्गम होता है।

भगवान् इतने दयालु हैं कि जो कोई ईर्ष्या, द्वेष अथवा क्रोध से भी उनके पास जाता है, उन्हें पुकारता है वे उसे भी अपना धाम दे देते हैं। फिर जो प्रेमपूर्वक उनका नाम स्मरण करता है, उनके नामों का कीर्तन करता है, उसके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है ? ऐसा सुकृतिशाली जीव भगवान् को अतिप्रिय होता है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने बोला था कि हर रोज़ रात को जब सोने लगो तो भगवान् से प्रार्थना करना–'हे मेरे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आवे तो अंतिम सांस जब तन से निकलने लगे तो आप अपना नाम उच्चारण करा देना।'

इसी बात पर मेरे शिक्षागुरु श्रीश्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज ने कहा कि शास्त्र का वचन है–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।

अर्थात् स्मरण करना ही उचित है। उन्होंने यह भी कहा कि अपने नाम को उच्चारण करा देने की बात कही है। आपने स्मरण के लिये क्यों नहीं बोला ?

इस बात से श्रवणकारी भक्त असमंजस में पड़ गये और यह बात स्वाभाविक है। मेरे श्रीगुरुदेव जी ने उच्चारण करने के लिये क्यों बोला ? इस बात का समाधान करना परमावश्यक है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने कहा है कि स्मरण का मतलब है–मन से उच्चारण होना। मन से उच्चारण करना ही स्मरण की धारा में आता है। भरत जी ने उच्चारण किया है तो राम जी का स्मरण करके उच्चारण किया है। सीता जी ने उच्चारण किया है वह भी श्रीराम जी की लीला का स्मरण करके ही किया है। स्मरण तो उच्चारण से पहले ही हो जाता है। किसी भी काम के लिये पहले स्मरण होता है और बाद में उच्चारण होता है । उच्चारण के कई उदाहरण हैं । शास्त्र बोल रहा है –

जाना चाहिये गूढ़ गति जेउ। जीह नाम जप जानहि तेउ।।
जाको नाम लेत जगमाहीं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।
नाम जीह जप जागहिं जोगी। विरल विरंच प्रपंच वियोगी।।
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भवबंधन काटहिं नर ज्ञानी।।

देखो ! मैं तो एक छोटे से गांव का गंवार व्यक्ति हूँ और जैसे मेरे गुरुदेव ने कहा है मैं तो उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। मेरे श्रीगुरुदेव समझा रहे हैं। ध्यान से सुनो। कबूतर हमेशा कबूतरों के झुंड में ही बैठेगा। वह कभी भी कौओं के झुंड में नहीं जाएगा। कौओं को कौओं के झुंड में ही जाकर शांति मिलेगी। वह कबूतरों के झुंड में नहीं जाएगा। इसी प्रकार गौ, गौओं के झुंड में ही जाकर बैठेगी। भैसों के झुंड में नहीं बैठेगी। निष्कर्ष यह निकलता है कि जीव अपनी जाति वालों के पास जाकर ही शांति प्राप्त करेगा अर्थात् सजातीय में ही खुश रहेगा। वह विजातियों में कभी सुखी नहीं रह सकता। जहाँ उसका मेल नहीं खायेगा, वह वहाँ जायेगा ही नहीं।

इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा की जाति में है। अतः जीवात्मा परमात्मा के पास ही बैठने से सुखी रह सकता है। पर यदि वह जीवात्मा माया के पास बैठेगा तो दुःख ही पायेगा क्योंकि माया

उसकी जाति में नहीं आती। अतः वह वहाँ सुखी कैसे रह सकता है ? परमात्मा का भजन करना ही उसके लिये परमावश्यक है। यह स्वभाव की ही बात है। शराबी हमेशा शराबियों के पास बैठेगा। जुआ खेलने वाला जुआरियों के पास जायेगा। स्मरण मन से होता है। उच्चारण मुख से होता है। श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि जो पुरुष भगवान् के नामों का उच्चारण करता है वह अपने आप को तथा समस्त श्रोताओं को तुरन्त तार देता है। यहाँ पर स्मरण शब्द नहीं कहा गया। उच्चारण कहा गया है। जब उच्चारण होता है तो स्मरण तो अपने आप ही हो जाता है। स्मरण के बाद ही उच्चारण होता है। स्मरण तथा उच्चारण एक–दूसरे के पूरक हैं। उच्चारण के संग स्मरण तो छाया की तरह संग में रहता है। श्रीमद्भागवत पुराण के नवें स्कंध में महाराज अंबरीष के प्रसंग में दुर्वासा ऋषि ने कहा है" हे भगवान् ! आपके नाम उच्चारण करने से तो नारकी जीव भी मुक्त हो जाते हैं।" यहां स्मरण शब्द नहीं बोला। उच्चारण में स्मरण मौजूद रहता है। यह विचार करने की बात है कि कोई भी कर्म करने का जब मन करता है तो सबसे पहले उसका स्मरण होता है, बाद में कुछ कर्म किया जाता है अर्थात् जीभ से बोला जाता है अर्थात् उच्चारण किया जाता है। स्मरण तथा उच्चारण में कोई अंतर नहीं है।

मैंने अपने श्रीगुरुदेव जी ने प्रार्थना की कि इसका सीधा सा, सरल जवाब क्या होगा? तो गुरुदेव जी ने बोला कि नाम की सिद्धि होने पर ही स्मरण हो सकता है। सबसे पहले, प्रथम में होता है वाचक जप जो जिह्वा से ही होता है। जब वाचक जप सिद्ध हो जाता है फिर जप होता है कंठ से, इसे उपांशु जप बोला जाता है। उसके बाद मानसिक जप होता है। मानसिक जप में स्मरण से ही जप होता रहता है। बाकी दोनों तरह का जप जिह्वा से ही होता है। मैंने जो रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करने की बात कही है कि अंतिम सांस में आपका नाम उच्चारण हो जाये, इसका आशय स्मरण से ही है। भगवान् तो भक्त के मन का भाव ही देखते

हैं। वे तो भावग्राही हैं इसमें उच्चारण तथा स्मरण एक ही बात है।

मानलो किसी की मौत दिन में तीन बजे होने वाली है और उसने बारह बजे भगवान् के नाम का उच्चारण कर लिया तो परमकरुणामय भगवान् तो उसी को अंतिम सांस का उच्चारण मान लेते हैं। मरने वाला अन्त समय में, अंतिम सांस के समय बेहोश हो जाता है। वह अपने बल से भगवान् के नाम का उच्चारण नहीं कर सकता पर भगवान् करुणा करके, अपने भक्त के अन्तःकरण से स्वयं का अपना नाम स्मरण करा देते हैं अर्थात् उच्चारण करा देते हैं। यह स्मरण ही उच्चारण के नाम से पुकारा जाता है।

भरत जी को तो स्मरण करना चाहिये था उन्होंने जीभ से राम नाम का उच्चारण क्यों किया ?

पुलक गात हिय सिय रघुवीरु।
जीह नाम जप लोचन नीरु।।

इसी तरह सीता जी को तो राम का स्मरण करना चाहिये था लेकिन सीता ने जीभ से उच्चारण किया है।

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्री राम ।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति श्री राम।।

रटना तो जीभ से ही होता है। मन से होता है स्मरण। अतः सीता जी ने मन से स्मरण न करके, जीभ से उच्चारण किया है। जब उच्चारण मन से होता है, तो यही स्मरण में आ जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने कीर्तन का प्रचार क्यों किया ? जीभ से उच्चारण करने पर ही कीर्तन होता है। यहाँ भी कीर्तन स्मरण से होना चाहिये था।

कहने का मतलब यही है कि भगवान् का नाम चाहे उच्चारण से हो या स्मरण से, उसमें कोई अंतर नहीं है। मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझे उच्चारणपूर्वक नाम करने को क्यों कहा ? मेरे श्रीगुरुदेव जी ने स्पष्ट कहा है –"Chanting Harinam sweetly and listen by ear."

श्रीगुरुदेव जी ने स्मरण करने को क्यों नहीं बोला ? उच्चारण के लिये क्यों बोला ?

जब जिह्वा से हरिनाम करते–करते, नाम की सिद्धि हो जाती है, तब स्मरण होता है। तब नींद में भी स्मरण होता है। जाग्रत अवस्था में उच्चारण ही हुआ करता है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।

यहाँ दो बार सुमर–सुमर आया है जिसका कारण है कि बार–बार नाम करते–करते नाम अन्तःकरण में रम जाता है तब स्वतः ही अंदर से स्मरण होता रहता है। सुषुप्ति अवस्था में भी स्मरण होता रहता है लेकिन शुरु–शुरु में जब भी कोई साधक/भक्त हरिनाम करता है तब जीभ से ही उच्चारण हुआ करता है।

सार बात यह है कि भगवान् तो भावग्राही हैं। वह तो मन का भाव ही लेते हैं। जब शास्त्र भी यहाँ तक बोल रहा है कि गिरते–पड़ते भी यदि मुख से नाम उच्चारण हो जाये तब भी जीव का मंगल हो जाता है और यदि कोई प्रेम–पूर्वक, जीभ से उच्चारण करके हरिनाम करेगा तो उसका मंगल होने में कोई कसर हो सकती है क्या ?

श्रवणकारियों का संदेह पूरा करने के लिये मुझे श्रीगुरुदेव जी से पूछना पड़ गया। इसमें निष्किंचन महाराज का कोई दोष नहीं है क्योंकि शास्त्र स्मरण के लिये बोल रहे हैं। मेरे शिक्षागुरुदेव, श्रीनिष्किंचन महाराज इसमें बुरा न मानें, मैंने इस बात को स्पष्ट करने के लिये ही श्रीगुरुदेव जी से प्रार्थना की थी ताकि श्रवणकारियों की हरिनाम में श्रद्धा की कमी न हो। वे असमंजस में न पड़ जायें। अतः मैंने साधकों को प्रेरणा की है कि वे अंतिम सांस में उच्चारण के लिये ही भगवान् से प्रार्थना करें।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद प्रार्थना सुन लीजिये।
दीन, हीन, मलीन पर, हे नाथ! करुणा कीजिये।

मौत जब आवे मेरी, तब नाथ अंतिम सांस में,
तेरा नाम उच्चारण करूँ, मुझे ऐसी शक्ति दीजिये।।

जो रात को सोते समय भगवान् से यह प्रार्थना करते हैं कि भगवान् उन्हें मृत्यु के समय निर्मलमति (अपनी स्मृति) प्रदान करते हैं और **'अन्ते मतिः सा गतिः'** के अनुसार ऐसे भक्त को निश्चय ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है और वह सदा–सदा के लिये जन्म–मृत्यु के बंधन से छूट जाता है। इसमें रत्ती मात्र भी संदेह नहीं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
08.02.2012

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हाथ जोड़कर, उत्तरोत्तर विरहावस्था बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

अधिक हरिनाम स्मरण नहीं करने हेतु भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं

मानव के उद्धार होने हेतु चारों युगों में ही हरिनाम स्मरण परमावश्यक है जैसा कि धर्मग्रन्थ बोल रहे हैं:–

क्रत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मख और जोग।
जो गति होय, सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

यदि किसी भक्तिमार्ग में त्रुटि हो भी जाती है तो भगवन्नाम से वह त्रुटि ठीक हो जाती है। देवर्षि नारद जी तथा धन्वन्तरि वैद्य जी, जो आयुर्वेद के, प्रवर्तक हैं, उन्होंने श्रीहरिनाम की महिमा गाई है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगा, सत्यं सत्यं वदामि अहम्।।

हे मानव ! तू भगवान् का नाम ले। तेरे अन्दर–बाहर के सभी रोग नष्ट हो जायेंगे। मैं सच बोल रहा हूँ।

अविश्रान्त नामे, नाम अपराध जाय।
ताहे अपराध कभु स्थान नहीं पाय।।

कहते हैं कि निरन्तर नाम जपने से नामापराध होने का अवसर ही नहीं मिलता। इससे स्पष्ट हो गया कि नाम भगवान् को जितना अधिक जपा जाये उतना ही कम है। श्री हरिनाम चिन्तामणि ग्रन्थ,

जिसमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर जी ने भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम, हरे कृष्ण महामन्त्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जाप करने वाले नामाचार्य श्रील हरिनाम ठाकुरजी की हरिनाम पर विभिन्न पहलुओं पर दिव्य चर्चा का वर्णन किया है।

श्रीचैतन्य गौड़िय मठ, चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाशित इस ग्रंथ के पृष्ठ संख्या 209–210 पर लिखा है–

भक्त्युन्मुख जीव शुद्ध गुरुर कृपाय।
श्रीयुगल ब्रह्मनाम सौभाग्येते पाय।।
तुलसीमालाय नाम संख्या करि स्मरे।
अथवा कीर्त्तन करे परम आदरे।।
एक ग्रन्थ संख्या करि' आरम्भिवे नाम
क्रम तिन लक्ष स्मरि' पूरे मनस्काम।।

अर्थात् भक्ति के उन्मुख जीव, शुद्ध गुरु की कृपा से श्री श्री राधाकृष्ण जी के युगलमंत्र अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र को सौभाग्य से प्राप्त करते हैं तथा परम आदर के साथ, तुलसीमाला पर संख्यापूर्वक नाम स्मरण तथा कीर्त्तनादि करते हैं। एक ग्रन्थि अर्थात् 16 माला (लगभग 25,000 हरिनाम) से शुरू करके धीरे–धीरे तीन लाख हरिनाम का जप करना चाहिये, इससे मन की सभी इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी तो यहां तक बोल रहे हैं कि खाते–पीते, सोते–जागते, सदैव हरिनाम करते रहो।

कीर्त्तनीय सदा हरिः

इससे तुम्हें इसी जन्म में भगवद्–दर्शन का लाभ उपलब्ध हो जायेगा। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी। हमारे गुरुवर्गों ने दो–दो, तीन–तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन जपकर भगवान् से बातें की हैं। श्रीलमाधवेन्द्रपुरी जी के श्रीनाथ जी,

नाथद्वारा में विराजित हैं। श्रील रूपगोस्वामी जी के श्री श्रीराधा–गोविन्ददेव जी, जयपुर में विराजित हैं। श्री स्वामी हरिनाम जी के श्रीबाँकेबिहारी जी श्रीधाम वृन्दावन में विराज रहे हैं। ऐसे ही ठाकुर श्रीगोपीनाथ जी भी जयपुर में विराजित हैं। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी जी के शालग्राम ने अपने भक्त की इच्छा पूर्ण हेतु श्रीराधारमण जी का रूप धारण कर लिया था जो वृन्दावन में विराजित हैं।

कितने भक्तों के नाम गिनाये जायें। भारतवर्ष में ऐसे बहुत से श्री हरिनामनिष्ठ महात्मा हुये हैं जिन्होंने ठाकुर जी से बातें की हैं, उनको प्रगट किया है। ये कोई बहुत पुरानी बातें नहीं हैं। पिछले 500–600 सालों में ऐसे बहुत से नामनिष्ठ भक्त हुये हैं। जब पहले हुये नामनिष्ठों को भगवान् ने दर्शन दिये हैं तो क्या अब भगवान् नाराज़ हो गये हैं, जो दर्शन नहीं देंगे? आज भी बहुत से नामनिष्ठ महात्मा हैं जिनको ठाकुर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (छद्म) रूप में दर्शन दे रहे हैं। क्या आपको पता नहीं है कि भगवान् ने नरसी मेहता का भात भरा था ? साक्षी गोपाल के रूप में भगवान् स्वयं वृन्दावन से पैदल चल कर गये।

भगवान् ने अपने भक्तों के लिये क्या नहीं किया। लेकिन होना चाहिये सच्चा भक्त। इस्कान के संस्थापकाचार्य श्री ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी जी प्रभुपाद, जो नामनिष्ठ थे, उन्होंने वृन्दावन के श्रीराधादामोदर मन्दिर में सौ करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया था जिसके कारण पूरे विश्व में श्रीहरिनाम का प्रचार हुआ। भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ और अब भी हो रहा है।

यह सब हरिनामनिष्ठों की ही करामात है। आज भी दुनियां भर में भक्तगण एक लाख या इससे भी अधिक हरिनाम प्रतिदिन करने में अग्रसर हो रहे हैं। इसी से वे भगवद्–प्रेम अवस्था (पंचम्–पुरुषार्थ) उपलब्ध कर रहे हैं और भगवत्–हेतु अश्रु–पुलक विरहावस्था प्राप्त की जा रही है।

नाम और नामी में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं नाम भी भगवान् ही है। जो इन दोनों (नाम और नामी) में भेद समझता है, उसे प्रेमप्राप्ति में देर हो जायेगी।

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने भी सौ करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया था जिस कारण आज सारा संसार गौड़ीय संप्रदाय में दीक्षित हो पाया है। मेरे श्रीलगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट परमपूज्यपाद ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी मेरे माध्यम से, जगह–जगह पर भक्तगणों से एक एक लाख या इससे भी अधिक हरिनाम नित्यप्रति करवा रहे हैं। हमारे देश में नहीं, विदेशों में भी, जहां–जहां –**"इसी जन्म में, भगवद्–प्राप्ति"** नामक पुस्तक पहुँची है, वहां वहां भक्तगण एक–एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करने में लग गये हैं। कई विदेशी भक्तों से फोन पर बात होती रहती हैं। उनके आग्रह पर इस पुस्तक का शीघ्र ही अंग्रेजी भाषा में अनुवाद होने जा रहा है। इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति का पाँचवा और अन्तिम भाग आपके हस्तकमलों में है और आप बड़े भाव से इसे पढ़ रहे हैं। जल्दी ही इस पुस्तकों को, इंटरनेट द्वारा सारे संसार में पहुँचाने का कार्य भी विचाराधीन है ताकि सारा विश्व श्रीहरिनाम में लग जाये, कृष्णमय, नाममय हो जाये,

वर्तमान सत्संग का आयोजन, मेरे श्रील गुरुदेव तथा ठाकुर जी द्वारा किया जा रहा है। इस आयोजन में, जो भी उपस्थित होगा, उसका सुनिश्चित् रूप से इसी जन्म में उद्धार होगा–ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव का वचन है। इस आयोजन में उपस्थित रहने वाले, बहुत से भक्तों का जीवन बदल गया है, उनके मन में बदलाव हुआ है और उन्हें सात्विक विकारों की उपलब्धि भी हो रही है।

श्रीलगौरकिशोर दास बाबा जी महाराज बिल्कुल अनपढ़ थे। वे नित्यप्रति तीन लाख हरिनाम करते थे और सभी धर्मग्रंथ उनके हृदय में जाग्रत थे। नाम बीज है, इसमें सभी शास्त्र मौजूद रहते

हैं। नाम जपने से सभी शास्त्र भक्त के हृदय में प्रकट हो जाते हैं। नाम जपना, बीज को बोना ही है जो जप द्वारा हृदय रूपी खड्डे में बोया जाता है। इसी से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। शास्त्र भी प्रकट हो जाते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त अर्जुन को कहा है कि जो अनन्यभाव से, निरन्तर मेरा नाम जप करते हैं मैं उन्हें बुद्धियोग दे देता हूँ **'ददामि बुद्धियोगं'** जिनके द्वारा वे मुझे प्राप्तकर लेते हैं।

कुछ साधकों को शंका है यदि एक लाख हरिनाम करना जरूरी है तो श्रील गुरुदेव अपने शिष्य को शुरू में ही 64 माला करने को क्यों नहीं कहते? हरिनाम की 16 माला करने को क्यों कहते हैं? प्रतिदिन हरिनाम की 64 माला करने का आदेश नहीं नहीं देते?

इस शंका का समाधान यह है, इसका उत्तर स्पष्ट है कि श्रील गुरुदेव शुरू–शुरू में अपने शिष्य को एक लाख हरिनाम यानि 64 माला करने का आदेश इसलिये नहीं देते क्योंकि शुरू–शुरू में शिष्य को 16 माला करना भी आफत लगता है। जब शिष्य 16 माला ही बड़े प्रेमपूर्वक नहीं जप सकता तो 64 माला जपने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। देखो! कोई भी व्यक्ति सीधा बी.ए. की कक्षा में नहीं बैठ सकता। उसे एल.के. जी (L.K.G.) से ही पढ़ाई शुरू करनी होती है तभी धीरे–धीरे, एक–एक करके वह बी.ए. की पढ़ाई तक पहुँच पाता है।

ऐसी भी शिकायत है कि हरिनाम स्पष्ट व शुद्धता से जपना चाहिये। यह उन शिष्यों के लिये है जिन्होंने अभी–अभी हरिनाम जपना शुरू किया है। पुराने शिष्यों को शुद्ध नाम जपना जरूरी नहीं है। अभ्यास हो जाने से, उनका हरिनाम तो अपने आप शुद्ध होने लग जाता है। श्रीहरिनाम चिन्तामणि ग्रंथ में लिखा है कि शुद्ध हो या अशुद्ध हो, नाम करने से नाम का प्रभाव होना शुरू हो जाता है क्योंकि भगवान् तो भावग्राही हैं। नाम सदा ही मंगलमय है।

जब नाम की इतनी महिमा है तो कोई भी ज्यादा से नाम

जपने के लिये मना क्यों करेगा? नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी कभी यह नहीं कहेगा कि भगवान् का नाम अधिक लेना उचित नहीं है। हाँ, जिन लोगों का, स्वयं का अधिक हरिनाम नहीं होता या जो करना ही नहीं चाहते, वे ही दूसरों को अधिक हरिनाम जपने से रोकते हैं। वे कहते हैं कि आप इतना अधिक हरिनाम क्यों जपते रहते हो?

देखो ! यह कलियुग है। कलिकाल ने सबको भ्रमित कर दिया है। साधु–सन्त भी पैसे के पीछे दौड़ रहे हैं। वे भी पैसे को ही भगवान् मानते हैं। उनके यहां कांचन, कामिनी और प्रतिष्ठा का ही साम्राज्य फैला हुआ है जो कि माया का असली रूप है। ऐसे लोगों से भगवान् बहुत दूर हैं। उनसे तो वह गृहस्थी अच्छा है जो अपने परिवार का पालन करता है, साधु–सन्तों की सेवा करता है और घर में रहकर नाम भी जपता है। ऐसे गृहस्थी पर तो भगवान् भी प्रसन्न रहते हैं। इसलिये गृहस्थ जीवन सर्वोत्तम है। भूतकाल में बहुत से गृहस्थ भक्त हुये हैं जिनसे भगवान् बातें करते थे। गृहस्थ भक्त सदा ही सुरक्षित रहता है, किले में रहता है और वैरागी संत किले के बाहर रहता है, अतः असुरक्षित है। किसी भी समय वह माया का शिकार बन सकता है, माया की चपेट में आ सकता है।

यह कलिकाल बहुत खतरनाक है। चारों तरफ वाावरण दूषित हैं। गंदा–खाना, गंदा–सोचना। जिस तरफ भी नज़र जाती है, गन्दगी फैली नज़र आती है। ऐसे वातावरण में साधक का बचा रहना बहुत मुश्किल है। सच्चा सत्संग कहीं उपलब्ध होता नहीं है। सभी जगह कपटता है, धोखेबाजी है। सभी ओर दूषित हवा चल रही है। जो साधक को प्रभावित करती रहती है इस समय में यदि कोई उसको बचा सकता है, उसकी रक्षा कर सकता है–वह है केवल–हरिनाम। हरिनाम लेने वाले को कलिकाल की हवा छू भी नहीं सकती।

नाम जप से क्या नहीं हो सकता ! जानवरों को मारने वाला रत्नाकर, नाम जप कर बाल्मीक नाम से प्रसिद्ध हो गया। नाम के

प्रभाव से वह त्रिकालदर्शी बन गया और उसने भगवान् श्रीराम के जन्म से, हजारों साल पहले, रामायण की रचना कर दी थी। भगवान् श्रीराम का अवतार तो हजारों साल बाद में हुआ और जो उसने रामायण में लिखा था, वही सब घटा।

देवर्षि नारद हर समय, इकतारे से नारायण–नारायण गाते रहते है और हमेशा नाम की धुन में मस्त रहते हैं। भगवान् शिव जी ने सौ करोड़ रामायण रचकर, उनमें से केवल **'राम'** नाम निकाल कर नाम की महिमा का गुणगान किया। शिव जी हर समय पार्वती के साथ बैठकर 'राम' नाम जपते रहते हैं। पाताल लोक में शेषनाग जी अपने हजारों मुखों से भगवत्–नाम जपते रहते हैं। भरत जी, नन्दग्राम में, कुटिया बनाकर, गौ माता को जौ खिलाकर और गौ के गोबर में, जो जौ निकलते थे, उनको चुनकर उनका दलिया बनाकर, उस दलिया को खाकर, सदा 'राम' नाम जपा करते थे। अशोकवाटिका में, श्रीसीता जी सदा 'राम' नाम जपा करती थीं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु हर समय माला पर भगवद्–नाम जपते थे और सबको संग में बिठाकर घण्टों हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन करने में मस्त रहते थे। (रंगीन चित्र देखें)

अनेकों उदाहरण हैं। कितने सन्तों का नाम बताया जाये! इनका कोई अन्त नहीं है, कोई पार नहीं है। इसलिये मेरी सबके चरणों में प्रार्थना है कि **यदि कोई आपको अधिक नाम जपने से रोकता है, मना करता है, आपको भ्रमित करता है, उसकी बातों पर ध्यान नहीं देना और जितना ज्यादा कर सको, हरिनाम करते रहना। चारों युगों में नाम का ही तो प्रताप है।**

मेरे श्रील गुरुदेव, सभी साधकों को फिर सतर्क कर रहे हैं कि वृन्दादेवी (तुलसी देवी) की सारी सुविधायें बनाकर, उसकी सेवा में नियुक्त हो जाओ तभी भक्ति महारानी का अमृत दूध पी सकोगे। एक आदमी भी अपने रहने की सुख–सुविधा ढूँढ़ता है और चाहता है कि उसके पास रहने की पूरी सुख–सुविधा होनी चाहिये। इसी प्रकार मूक तुलसी मैया भी पूरी सुख–सुविधा चाहती है। उसे सूर्य

की धूप लगानी चाहिये। सर्दी से बचने के लिये सर्दियों में पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। कभी भूलकर भी तुलसी के पत्तों को उबालना नहीं चाहिये। कीड़ों से बचाव के लिये तुलसी के पत्तों पर हल्दी पाऊडर बुरकना (छिड़कना) चाहिये। ज़हरीले कीटनाशक, जहरीला पाऊडर भी नहीं डालना चाहिए।

जब साधक तुलसी मैया का इतना ध्यान रखेगा तो उस पर गुरु–वैष्णव व भगवान् प्रसन्न रहेंगे और उसका मन हरिनाम में लगता रहेगा। जिस प्रकार तुलसी मैया की सेवा जरुरी है, ठीक उसी प्रकार माला मैया (जप माला) का आदर–सत्कार करना परमावश्यक है। यह माला मैया हमें हरिनाम का अमृत–सुधा का दूध अपने स्तन से पिलाती रहती है। समय–समय पर माला मैया की पोशाक को जिसे माला झोली या माला थैली (Bead bag) कहते हैं, धोते रहना चाहिये। जब भी हरिनाम करने के, माला थैली को हाथ में लो तो सबसे पहले उसे सिर से लगाओ। फिर हृदय से लगाओ और माला मैया के चरणों का चुंबन करो। इस तरह करने से, ज्योंहि हरिनाम शुरू करने के लिये, अपना हाथ माला झोली में डालोगे तो माला का सुमेरु यानि सबसे बड़ी मणि (श्रीकृष्ण) आपकी उंगलियों में आ जावेगा। आपको उसे तलाशना नहीं पड़ेगा। इसे कोई भी आज़माकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होतीं। माला मैया को इधर–उधर कहीं भी रखना अपराध है। माला निर्जीव वस्तु नहीं है, वह सजीव है यदि माला निर्जीव या जड़ होती तो क्या वह हमें माया से छुड़ा सकती? क्या वह भगवान् से मिला सकती? बहुत से साधक माला मैया को सूखी तुलसी के दोनोंसे बनी निर्जीव वस्तु समझते हैं। यह बहुत बड़ी कमी है, इसीलिये हरिनाम में मन नहीं लगता। साधकगणो ! यदि भगवान् को प्राप्त करना चाहते हो तो तुलसी महारानी की सुख–सुविधा का पूरा ध्यान रखो और माला मैया का आदर–सत्कार करो तो देखना, बड़ी सुगमता व सरलता से भगवान् आपसे मिलने आ जायेंगे।

देखो ! भक्त कभी भी भगवान् के पास नहीं जाता। भगवान् स्वयं अपने भक्त को दर्शन देने आते हैं। भगवान् एक प्राण, दो देह धारण करके, श्री श्रीराधागोविन्द का अवतार धारण करके, लीला करते हैं ताकि साधकगण, उन लीलाओं का चिन्तन कर, दुःख सागर संसार से अपना पिंड छुड़ा सकें। भगवान् की ओर से कभी भी कमी नहीं रहती, कमी सदैव भक्त की ओर से रहती है। भगवान् तो असीम दयानिधि स्वभाव के हैं और अपने पुत्र को गोद में लेना चाहते हैं। अब पुत्र ही उनकी गोद में जाना नहीं चाहे तो भगवान् क्या करें !

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
20.01.2012

प्रेमास्पद वैष्णवगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहावस्था बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

कारण शरीर ही जन्म-मरण का कारण है

कारण शरीर ही जन्म–मरण का कारण है तथा इसी से उर्ध्वगति भी उपलब्ध होती है। शरीर तीन प्रकार के हुआ करते हैं–स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर। स्थूल शरीर पंचतत्व से निर्मित होता है। सूक्ष्म शरीर दस इन्द्रियों तथा मन का शरीर होता है। कारण शरीर मन के स्वभाव अनुसार होता है। जीव भी इसी शरीर से गठित होता है। जीव उसे कहते हैं जो स्वयं को न जाने, माया को न जाने तथा जो भगवान् को न जाने। जो स्वयं को जान जाये। यह जान जाये कि इस जीवन में क्या करना है तथा यह माया ही जन्म–मरण का कारण है और भगवान् का भजन करना ही सर्वोत्तम है, उसे जीवात्मा कहते हैं। इसमें बुद्धितत्व रहता है।

आज का विषय बड़ा गहन है, ध्यान देने पर समझ आवेगा। चौरासी 84 लाख योनियों में अस्सी 80 लाख योनियाँ हैं–थलचर, नभचर और जलचरों की। चार लाख योनियाँ मानव की हैं। अस्सी 80 लाख योनियों में केवल खाना, पीना तथा विषय भोग करना ही जीवन का उद्देश्य है। इन योनियों में बुद्धितत्व सुषुप्ति अवस्था में रहता है। इन योनियों में बुद्धितत्व तो रहता है पर योनियों के प्राणी यह नहीं जानते कि उनका मंगल किस कर्म से हो सकता है। इन योनियों के जीव, जो योनि उन्हें उनके कर्मानुसार उपलब्ध होती है, उसी में मस्त रहते हैं। भले ही वह निकृष्ट योनि में हो फिर भी वे

जीवित रहना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। इन योनियों में एक जीव ही दूसरे जीवों को खा–खाकर अपना पेट भरता है इसलिये कहावत भी है–''जीवो जीवस्य भोजनम्''। ऐसे जीवों को जीवात्मा की संज्ञा नहीं दी गई है। उन्हें केवल जीव की संज्ञा दी गई है। ये जीव सूँघकर और छूकर किसी वस्तु के होने का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

अब शेष रह गई चार लाख मनुष्यों की योनियाँ जो उन्हें उनके कर्मानुसार ही उपलब्ध होती हैं। इनमें भी अधिकतर जीव की संज्ञा में ही आते हैं क्योंकि इनको भी यह सच्चा ज्ञान नहीं होता कि हमारा मंगल किस काम में है और हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? ऐसे मानव का कर्म क्या है? इनका कर्म है–खाना, पीना और मौज उड़ाना। इनकी तो बस पेट की ज्वाला शान्त रहनी चाहिए, उसी में ये खुश रहते हैं। ये भगवान् को नहीं जानते।

जो मानव यह जान लेता है कि मेरा खास कर्म, जिसके लिये मुझे यह–मनुष्य जन्म मिला है, भगवत् स्मरण है, वह सभी काम भगवान् का समझ कर करेगा तथा सभी प्राणियों में भगवान् का दर्शन करेगा। वह जानता है कि भगवान् सभी में विराजमान हैं और इन सबका हित करना मेरा मंगलदायक कर्म है। जिस मानव की वृत्ति ऐसी हो जाती है, हो गई है, उसे जीवात्मा की संज्ञा दी गई है क्योंकि ऐसे जीव का नाता आत्मा से जुड़ गया। पर ऐसा मानव बहुत कम मिलता है। अरबों–खरबों में कोई एक ऐसा ज्ञानी होता है जो केवल भगवान् की तरफ मुड़ा हुआ होता है अन्यथा सभी माया के बँधन में फँसे रहते हैं।

तपस्वियों तथा योगियों के सिद्धान्त के अनुसार, इस शरीर में तीन नाड़ियों0 में प्राण गमन करता है। ये नाड़ियाँ हैं–

1–इडा, 2–पिंगला तथा 3–सुषुम्ना।

जब मन वासनाओं में रहता है तब इड़ा–पिंगला में प्राण गमन करता है। जब मन रजोगुण तथा तमोगुण के स्वभाव में रमन

करता है तब भी इंड़ा–पिंगला में प्राण गमन करता है। उस स्थिति में मन आलसी, निद्रा अवस्था में, अभक्ष्य भक्षण में रहता है। वह सोचता है कि मैंने इतना कमा लिया और भविष्य में इतना कमा लूंगा। उस शत्रु को जीत लूंगा–इत्यादि दुर्भावनाएं उसके मन में प्रकट हो जायेंगी अच्छाई का तो नामो–निशान भी उसके पास नहीं रहेगा।

इडा–पिंगला का प्राण शरीर के दायें–बायें बगल से गमन करता है। सुषम्ना का प्राण नाभि से, सिर–शिखा ब्रह्मरन्ध्र तक बीच में से गमन करता है। नासाछिद्र से रेचक–पूरक (कुम्भक) परिणामों के अनुसार, दोनों एक ही धारा से चलते हैं। इड़ा–पिंगला नाड़ी में, दोनों नासाछिद्र परिणाम अलग–अलग धारा से प्रवाहित होते रहते हैं।

जब मन एकाग्रता में आता है तो प्राण सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगता है और इसमें मन आनन्दानुभव महसूस करता है। जब प्राण इंड़ा–पिंगला में गमन करता है तब मन अशांति का अनुभव करता है।

इन चौरासी लाख योनियों में, मनुष्यों की चार लाख योनियाँ भिन्न–भिन्न जातियों की होती हैं। इनमें बुद्धितत्व तथा ज्ञानवर्धक स्थिति रहती है इसीलिये इसे जीवात्मा की संज्ञा का दर्जा दिया जाता है। बाकी अस्सी लाख योनियों में बुद्धितत्व सोया रहता है। इन योनियों में खाना, पीना तथा मैथुन में रत रहना ही आता है। ज्ञान संज्ञा न होने से इनको पाप नहीं लगता।

भगवान् ने आदिकाल में मानव को जन्म दिया। तब मानव का अन्तःकरण स्वच्छ एवं निर्मल था पर संग के प्रभाव से धीरे–धीरे उसका मन अशुद्ध होता गया और उस पर (सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) का आवरण चढ़ता गया। तब भगवान् ने इन गुणों के कर्मानुसार, भोग भोगने के लिये उसे चौरासी लाख योनियों में डाल दिया।

जब भी कभी, संयोगवश, जीवात्मा को मनुष्य योनि उपलब्ध हुई और इसका संग भगवान् को जानने वाले किसी साधु से हो गया और संयोगवश उससे साधु सेवा बन गई तो वह भगवान् की नजर में आ गया। बस, उसी क्षण उसका मंगलविधान हो गया। साधु से भगवान् का पारिवारिक संबंध रहता है। साधु भगवान् का निजमन होता है । जो साधु से प्यार का संबन्ध कर लेता है, उससे नाता जोड़ लेता है तो भगवान् उसे अपना लेते हैं और ऐसी जीवात्मा का माया से पिण्ड छूट जाता है।

जिस स्थान पर साधु विराजता है, उस स्थान पर, सुकृतिवश बहुत से मानव, उसका संग करने से अपने जीवन के उद्देश्य को जानकर, भक्ति में संलग्न हो जाते हैं। विदेशों में साधु के अभाव के कारण कोई भी मानव भगवान् को जानता ही नहीं है। उनके लिये खाना, पीना और मौज़ उड़ाना ही आनन्द का स्त्रोत है लेकिन वहां पर भी दुःखों का कोई पारावार नहीं क्योंकि विषयों में तो विष भरा है। फिर सुख की हवा भी कैसे महसूस हो सकती है?

सच्चा सुख तो भगवान् के चरणों में ही है, भगवत् नाम में है, साधु–संग में है। जहाँ सुख का नामोनिशान ही नहीं है, वहां सुख कैसे उपलब्ध होगा? यही तो विदेशों का अज्ञान है, अंधेरा है। अंधेरे में टक्कर खाते रहो। टक्कर खाने में सुख कहाँ?

भारत की संस्कृति ही सुखदायक है जो अब नष्ट होती जा रही है। भारतीय भी विदेशी संस्कृति अपनाते जा रहे हैं। देसी भाषा बोलने में शर्माते हैं और विदेशी भाषा बोलने में अपना, गौरव समझते हैं। बोलचाल का ढंग, पहनावा सब बदलता जा रहा है। सभी का आदर–सत्कार करना, सेवा करना–इस भावना का लोप होता जा रहा है। स्वच्छ, मर्यादाएं समाप्त होती जा रही हैं। पाठशालाओं में केवल धन कमाने की शिक्षा दी जा रही है। धार्मिक शिक्षाओं का तो नामोनिशान भी नहीं है। शिशुओं पर आरम्भ में ही अंग्रेजी थोपी जा रही है।

धार्मिक शिक्षाओं के अभाव में, भारत में स्वप्न में भी शान्ति होने

वाली नहीं है। हर ठौर अशान्ति का वातावरण होता जा रहा है एवं भविष्य में भी होगा ही। परिवार में शान्ति नहीं, समाज में शान्ति नहीं, गाँव में, शहर में शांति नहीं। देश में शान्ति नहीं, दुनियाँ में शान्ति नहीं। सभी जगह हाय–हाय का तूफान दसों दिशाओं में छा रहा है। सारा संसार पैसे के पीछे दौड़ रहा है। पैसे में शान्ति कहाँ? पैसा तो अशान्ति का भण्डार है इसमें केवल ऐशो–आराम से जीवन काटना हो सकता है पर सच्चा–सुख, सच्चा ऐशो–आराम तो भगवत्–नाम में है जिस नाम का यहां अस्तित्व भी नहीं है। शान्ति ज्ञान में नहीं है, शान्ति तो भगवद्–ध्यान में है। पूरी दुनियां में एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ में नाश के उपकरण तैयार किये जा रहे हैं जो कभी स्वयं पर ही घातक सिद्ध होंगे। वर्तमान समय के इन आविष्कारों ने पूरी दुनियां के मौसमों में बदलाव ला दिया। जहां बरसात कम होती थी, वहां बेशुमार बरसात होती है और जहां बरसात अधिक होती थी, वहां पर सूखा पड़ा रहता है, वहां अकाल पड़ रहा है। घने–जंगल उज़ाड़ में बदल रहे हैं, जंगली जानवर समाप्त होते जा रहे हैं। बहुत से जंगली जानवरों की तो नस्ल ही खत्म हो चुकी है। गिद्ध, कौवे आदि कहीं–कहीं ही नज़र आते हैं। जगह–जगह भूकम्प आते रहते हैं। कहीं–कहीं सुनामी आकर शहरों को नष्ट कर रहा है। सूर्य–चन्द्र ग्रहण बार–बार होते रहते हैं। इनका बार–बार होना भविष्य में अशुभ का सूचक है।

यह सब ही कलियुग का प्रभाव है। सभी के हृदय में स्वार्थ समा गया है। प्रेम तो नाममात्र का ही रह गया है। चारों तरफ नास्तिकवाद की हवा फैलती जा रही है। धर्म का लोप होता जा रहा है। धर्म के नाम पर पैसे की लूट हो रही है। जिनको सच्चे संत माना जा रहा था या माने जा रहे हैं, उनमें कपट ही कपट नजर आ रहा है। इनकी पोल सामने आ रही है। यही कारण है कि साधु के प्रति मानव की श्रद्धा और विश्वास ही उठता जा रहा है। जो धर्म का उपदेश करते रहते हैं उनके अन्तःकरण में पैसे की हवा

चल रही है। ऐसे में श्रोताओं पर उनका प्रभाव कैसे हो सकता है? ये सब श्रोताओं को धोखा दे रहे हैं। कलि महाराज के प्रभाव से सच्चाई तो बहुत कम है (धोखेबाज) अधिक हैं। शास्त्रीय मर्यादाएं समाप्त होती जा रही हैं। सारे संसार में महिलाओं का आधिपत्य छा रहा है, पारिवारिक संबंध टूटते जा रहे हैं। जाति–पाति धीरे–धीरे समाप्त हो गई है जिससे संसार में वर्ण शंकरता फैल रही है। कबूतरी की शादी कोवे से हो रही है इसीलिये तो आपस में बनती नहीं है क्योंकि दोनों का स्वभाव भिन्न–भिन्न है। ऐसे में आपस में प्रेम से रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। पहले समय में लड़के और लड़की की जन्मपत्री मिलान की जाती थी। यदि जन्मपत्री मेल नहीं खाती थी तो संबंध नहीं होता था।

आज तो प्यार हो जाना चाहिये, जाति भले कोई भी हो। यही कारण है कि अन्त में तलाक (सम्बन्ध–विच्छेद) की नौबत आ जाती है। जब खून ही आपस में मेल नहीं खाता तो आपस में प्रेम निभाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कहने का आशय यही है कि भविष्य बड़ा दुखदायी होगा। इसका खास कारण है कलि महाराज का समय–यह कलियुग का समय है। इस समय में जो भगवत् की शरण में रहेगा, वही सुखी रह सकेगा अर्थात् जो नित्यप्रति हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र–हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।) की चौंसठ 64 माला करता रहेगा उसका तो दुःख से पाला ही नहीं होगा। नाम भगवान् उसकी हर प्रकार से रक्षा करता रहेगा। जो भगवत् नाम से दूर रहेगा वह माया की चक्की में पिसता रहेगा। वर्तमान में भी सुखी वही है जो हरिनाम की शरण में है। भगवत्–नाम की शरण लेने को माया की थोड़ी–बहुत हवा तो लगती रहेगी परन्तु ऊपर से निकल जायेगी।

बहुत से साधक बोला करते हैं कि हम भगवान् के भक्त हैं, हम भगवान् की शरण में हैं पर हमारा मन हरिनाम में लगता नहीं। जब मैं उनसे पूछता हूँ कि भगवान् के लिये क्या उन्हें शिशु की

तरह रोना आता है जोकि शरणागति का प्रत्यक्ष लक्षण है तो कहते हैं कि नहीं, ऐसा तो नहीं होता। कारण स्पष्ट है, स्थिति प्रत्यक्ष सामने है कि अभी भगवान् में पूर्ण शरणागति नहीं है। जब तक मन संसार से लगाव रखता है तो पूर्ण शरणागति कैसे होगी? यदि मन संसार से हटा नहीं, भगवान् के लिये रोना आया नहीं तो समझ लो अभी अन्तःकरण की शरणागति में कमी है। हम भगवान् के भक्त हैं, हम उनकी शरण में हैं–ऐसा सोचना केवल भ्रम है, ब्रह्म है।

देखो ! मौत का कोई भरोसा नहीं है, मौत कभी भी, किसी भी समय अचानक आ सकती है–प्रत्येक क्षण ऐसा विचार करते रहना चाहिये। फिर वर्तमान जैसा उत्तम अवसर भविष्य में उपलब्ध होगा नहीं।

"हे मन ! चारों ओर की चिन्ता छोड़कर, अब तो पूर्णरूप से अपने भगवान् के चरणों में लग जा। इस संसार में कोई भी अपना नहीं है, भगवान् ही अपना है वही अहैतुकी कृपा करने वाला है। तेरा इस संसार में अपना कुछ भी नहीं है। तुझे जो कुछ भी मिला है भगवत् की कृपा से ही मिला है। इस संसार में, खाली हाथ आया था और खाली हाथ जावेगा। यहां तक कि तू अपना शरीर तक भी साथ नहीं ले जा सकता। भविष्य में ऐसा मानव जन्म तुझे हस्तगत होगा नहीं। पूरी जिन्दगी में तुमने कोई शुभ कर्म किया नहीं। अब तेरे हाथ में अमूल्य हीरा आ गया है, हरिनाम का यह अमूल्य हीरा तुझे प्राप्त हो गया है, इसे अपने हृदय से चिपकाकर इसकी शरण में हो जा। जितना जीवन बाकी बचा है, उसमें संसार से नाता तोड़ ले और हरिनाम रूपी इस अमूल्य हीरे को हर क्षण हर पल अपने हृदय से लगाकर रख। हर क्षण हरिनाम कर।"

उक्त विचारों को बार–बार दुहराते रहने से निश्चित रूप से संसार से वैराग्य हो जाता है और सरलता से, स्वतः ही भगवत्–शरणागति उदय हो जाती है। देखो ! संसार का मोह–ममता ही हमारा दुश्मन बना हुआ है, यही हमें भगवान् के पास जाने से

रोकता है। यही माया की फंसावट है। जिस क्षण माया की यह फंसावट समाप्त हो जायेगी उसी क्षण भगवान् से मिलना हो जायेगा। उसी क्षण भगवान् के लिये छटपट शुरू हो जायेगी। खाना, पीना, सोना हराम हो जायेगा। बस, हृदय से मन को समझाना है यह मन ही पूरी रुकावट कर रहा है। इसलिये तो मन अंधेरे में भटक रहा है, इसीलिये टक्कर पर टक्कर खाता रहता है। इसको उजाला चाहिये जो विचार करने पर ही मिलेगा। इति।

– हरिबोल –
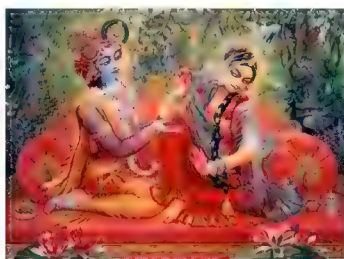
प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि! कुरुक्षेत्र–मिलित–
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयो संगमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरली–पंचम–जुषे–
मनो मे कालिन्दी पुलिन विपिनाय स्पृहयति।।

कुरुक्षेत्र में श्रीश्यामसुन्दर के साथ चिर मिलन के बाद श्रीराधाजी अपनी एक सहचरी से कह रही हैं–हे सहचरि! यह वही वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण हैं, जिनसे मैं कुरुक्षेत्र में मिली हूँ, मैं भी वही राधा हूँ। दोनों का यह संगम–सुख भी वही है तथापि जहां क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण अपनी मधुर मुरली पंचम स्वर में बजाते थे, यमुना–पुलिन अवस्थित उसी वृन्दावन के लिये ही मेरा मन व्याकुल हो रहा है।

31

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
18–2–2012

परम प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवत्–विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवान् भक्तों से थर-थर काँपते हैं

भगवान् भक्तों से थर–थर काँपते हैं तथा कष्टों से छुड़ाते हैं। मेरे श्री गुरुदेव बोल रहे है कि जिन भगवान् से काल–महाकाल भी थर–थर काँपता रहता है, वही भगवान् भक्तों की प्रेम पराकाष्ठा होने से थर–थर काँपते हैं। भगवत्–लीला को कोई भी समझ नहीं सकता। शिव, ब्रह्मा तक भी लीलाओं को समझने में सक्षम नहीं हैं

लेकिन भगवान् का शुद्ध भक्त, भगवत्–लीलाओं को कुछ–कुछ समझने की सामर्थ्य रखता है।

एक दिन कन्हैया ने ब्रज की रज (मिट्टी) खा ली और बलदाऊ भैया ने यशोदा मैया के पास जाकर शिकायत कर दी कि आज तो कान्हा ने ब्रज की मिट्टी खाई है– "तेरे कान्हा ने माटी खाई, यशोदा, सुन माई।" हे मैया, मिट्टी खाने से उसके पेट में कीड़े पड़ जावेंगे।

अब तो मैया को गुस्सा आ गया और वह छड़ी लेकर कान्हा के पास आई। यशोदा ने कान्हा को कान से पकड़कर पूछा–'अरे लाला ! तूने मिट्टी क्यों खाई है। आज तो मैं इस डण्डे से तुझे मारूँगी।'

माँ यशोदा का गुस्सा देखकर और हाथ में छड़ी को देखकर कान्हा थर–थर काँपने लगा। उसकी आंखों से आँसू निकल पड़े और डर के कारण पेशाब भी। कान्हा ने थर–थर कांपते हुये और आँखों के आंसू पोंछते हुये कहा–"मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खाई।"

मैया ने कहा–"लाला ! झूठ बोलता है। चल, अपना मुँह खोल कर दिखा।"

कन्हैया ने अपना मुख खोलकर दिखाया तो मैया को उसके मुख में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के दर्शन होने लगे। मैया आश्चर्यचकित होकर देखती रह गई और चकरा गई। वह सोचने लगी कि मैं यह सब क्या देख रही हूँ। क्या मैं कोई सपना देख रही हूँ? क्या माया ने मुझे भ्रम में डाल दिया है या यह मेरी आँखों का ही दोष है?

माँ की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। फिर जब कन्हैया ने अपनी माया हटा ली तब मैया उसे फिर डांट रही है और कह रही है कि मिट्टी खाने से तेरे पेट में कीड़े पड़ जायेंगे इसलिये अब कभी भी मिट्टी नहीं खाना वरना मैं तुम्हें पीटूँगी।

अब तो कान्हा को थोड़ा सांस आया। माँ का गुस्सा कम हो गया था। कन्हैया ने कहा–"मैया ! मुझे नन्दबाबा की सौगन्ध! बलदाऊ भैया की सौगन्ध है! अब मैं कभी भी मिट्टी नहीं खाऊँगा।"

जब कन्हैया ने इस प्रकार सौगन्ध खाई तो यशोदा को उस पर दया आ गई और मैया ने कन्हैया को गोद में लेकर प्यार किया और उसकी आँखों से टपकते आँसूओं को पोंछा। कन्हैया भी मैया से लिपट गया।

कन्हैया ने ब्रज रज क्यों खाई?

ब्रजरज खाने की इस लीला के माध्यम से कन्हैया यह बताना चाहते थे कि **ब्रज की वह रज जिस पर मेरे भक्तों के चरण पड़े हैं, मुझे बहुत प्रिय है। इस रज को खाने से मन–निर्मल हो जायेगा, स्वच्छ हो जायेगा और मन में प्रेम उदय हो जायेगा।**

मुक्ति कहे गोपाल सों, मेरी मुक्ति बताय।
ब्रजरज उड़ मस्तक लगे, मुक्ति मुक्त ह्वै जाये।

भगवान् श्रीकृष्ण को ब्रज अतिप्रिय है और ये तीन चीज़ें तो भगवान् को बहुत प्रिय हैं–वेणु, रेणु और धेनु अर्थात् बाँसुरी, ब्रज की रज और ब्रज की गाय भगवान् श्रीकृष्ण का प्राणधन है।

जय श्री राधे

ऊखल–बन्धन

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
23–2–2012

परम प्रेमास्पद भक्त शिरोमणिगण,

नराधम, अधमाधम, दासनुदास, अनिरुद्धदास का आप सबके चरणकमलों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवत्–विरहावस्था उत्तरोत्तर, चरम सीमा तक बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

चौरासी लाख योनियों के बीजों की अवर्णनीय, मार्मिक रहस्यात्मक एवं कथनमय चर्चा

भगवान् का भी अकेले का मन नहीं लगता। यदि ऐसा होता तो भगवान् अनन्तकोटि अखिल ब्राह्माण्डों की सृष्टियों का सृजन क्यों करता जिनमें चौरासी लाख योनियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस सृष्टियों में तीन प्रकार के जीवों की सृष्टि का निर्माण हुआ। ये हैं–नभचर, (आकाश में उड़ने वाले), जलचर (जल में रहने वाले) तथा थलचर (पृथ्वी पर रहने वाले) उस भगवान् ने मानव की सृष्टि की। उसे अपने जैसा बनाया और वह भगवान् को सबसे अधिक पसंद भी आया। मानव बुद्धि प्रधान है। अन्य तीन प्रकार की सृष्टियों में सोच–विचार करने की कमी रहती है। इनका जीवन खाने, पीने तथा विषय भोग करने में ही समाप्त हो जाता है। मनुष्य को छोड़कर, दूसरी योनियों के जीव यह नहीं जानते कि क्या कर्म करने से उन्हें सुख मिल सकता है। मैं कौन हूँ ? भगवान् कौन हैं? भगवान् की माया क्या है? क्या करने से मुझे सुख मिल सकता है? इन सब बातों का ज्ञान उन्हें नहीं रहता। इसीलिये इनको जीव की संज्ञा दी गई है। इस कलियुग के अधिकतर मानव भी इनमें आ जाते हैं पर सत्युग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग में मनुष्यों में से अधिकतर जीवात्माओं की संज्ञा में आते हैं। इन्हें सुख उपलब्ध करने का ज्ञान होता है। ये शुभ–अशुभ कर्मों के ज्ञाता होते हैं।

चौरासी लाख योनियों के बीज–भी भिन्न–भिन्न होते हैं। मच्छर, मक्खी में बीज, पशु–पक्षियों के बीज से भिन्न होता है। जिस प्रकार किसान यदि जमीन रूपी गर्भ में जौ रूपी बीज डालेगा तो उससे जौ के पौधे का शरीर ही उपलब्ध करेगा। चावल का बीज डालेगा तो चावल का शरीर उपलब्ध करेगा। मानव से मानव ही जन्म लेगा। पेड़ से पेड़ ही जन्म लेगा। कबूतर से कबूतर ही प्रगट होगा लेकिन इसमें आश्चर्य यह है कि ये बीज तब ही फलीभूत होंगे जब इन बीजों के शरीर में भगवान् आत्मरूप में विराजित होंगे। यदि भगवान् इनमें आत्मा रूप में विराजित नहीं होंगे तो इन बीजों का कोई भी महत्व नहीं होगा।

यह समस्त बीज मानव के कर्मानुसार ही प्रगट हो सकेंगे। इनका उद्गम स्थान मानव का कर्म ही है। इसी कारण भगवान् ने सबसे पहले, ब्रह्मा जी के रूप में अपने जैसा मानव प्रगट किया। सृष्टि के सबसे पहले पुरुष, ब्रह्मा जी से ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ, प्रागट्य हुआ। समस्त सृष्टि का बाण ब्रह्मा ही है। सबसे पहले ब्रह्मा जी ने जो सृष्टि प्रगट की वह भगवत्–स्मरण के बिना की। यह सृष्टि चूंकि भगवत्–नाम स्मरण के बिना उत्पन्न हुई थी अतः बुरे स्वभाव की प्रगट हुई और ब्रह्मा जी को ही दुःख देने लगी। उन्हें ही खाने के लिये उनकी ओर दौड़ने लगी।

ठीक यही सब कुछ इस समय हो रहा है। मनुष्य बिना सोचे–समझे, इन्द्रियों की तृप्ति में रत हैं और भगवत् भजन के बिना, जो सृष्टि (संतान) की उत्पत्ति कर रहा है, वह संतान माँ–बाप को ही दुखी कर रही है। माँ–बाप को ही नहीं, आस–पड़ौस को भी सताती रहती है।

भगवत्–माया की तीन शक्तियाँ मानव को सताती रहती हैं। ये तीन शक्तियाँ–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण हैं जिनसे यह सारा संसार ओत–प्रोत है। मानव का कर्म ही इन गुणों को प्रकट करता है और इन कर्मों द्वारा ही चौरासी लाख योनियों का प्रागट्य होता है। दुःख का असली कारण यही है। मानव जिस तरह के

संग में रहता है उसका मन वैसे ही संग को ग्रहण करता रहेगा। कलिकाल में अधिकत्तर वातावरण दूषित है अतः संग भी दूषित मिलता है। दूषित संग में सुख मात्र नाममात्र का है। सुख भासता है, है नहीं। जो है सब दिखावटी है। सच्चा सुख तो भगवद्–नाम स्मरण में है इसलिये हर समय हरिनाम करते रहना चाहिये। इसी जीवन का यही सार है, यही उद्देश्य है।

– हरिबोल –

जय राधामाधव जय कुँजबिहारी।
जय गोपीजनवल्लभ जय गिरिवरधारी।।
यशोदानन्दन, ब्रजजनरंजन यमुना तीर वनचारी।।

33

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणिगण,

साधक, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना स्वीकार हो।

अवलम्बन ही सार है

मेरे श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि भगवत्–भक्तों की एक ही शिकायत है कि उनका मन हरिनाम में बिल्कुल ही नहीं लगता। ऐसे में वे मन को एकाग्र कैसे करें? कृपा करके, हरिनाम करने में मन लग जाये, ऐसा कोई उपाय बतावें ! श्रीगुरुदेव सभी साधकों को बड़ा सरल व सुगम तरीका बता रहे हैं। साधकगण ध्यानपूर्वक सुनें।

बिना सहारा अर्थात् बिना आसरा अर्थात् बिना अवलंबन संसार का कोई भी काम नहीं हो सकता। प्रत्येक चर–अचर प्राणी को किसी ने किसी का अवलम्बन होना परमावश्यक रहता है। जिस प्रकार पेड़–पौधों को पृथ्वी का अवलम्बन होता है। शिशु को माँ–बाप का, नारी को नर का, विद्यार्थी को शिक्षक का, शिष्य को श्री गुरुदेव का अर्थात् सभी को किसी न किसी का अवलम्बन बहुत जरूरी है।

इसी प्रकार मन को भी अवलम्बन चाहिये। अवलम्बन के बिना मन कभी भी, किसी भी दशा में टिक नहीं सकता। मन बड़े चंचल स्वभाव का है और एक क्षण के लिये भी एक स्थान पर रह नहीं सकता। अभी भारत के किसी स्थान पर है तो अगले पल में अमेरिका में भाग जायेगा। अमेरिका तो इस पृथ्वी का ही एक कोना है। मन तो स्वर्गलोक, चन्द्रलोक तथा सूर्यलोक में भाग जायेगा। जिस साधक ने मन को काबू में कर लिया, वही सबसे बड़ा विजयी

है। मानव सबको अपने वश में करने की कोशिश में लगा रहता है पर मन एक पल के लिये भी वश में नहीं रहता। केवल भ्रम है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। मन ही दुःख का कारण है और मन ही सुख का कारण है। मन ही जन्म–मरण से छुड़ा सकता है और मन ही आवागमन में घुमा सकता है।

अब प्रश्न होता है कि इस चंचल मन को कैसे वश में किया जाये? देखो ! इस मन को एक पल के लिये भी खाली मत रहने दो। इसे एक क्षण को भी फुर्सत मत दो। यदि मन ठाला (खाली) रहेगा तो वह प्राणी को आपत्ति में डाल देगा।

एक आदमी ने एक प्रेत अर्थात् भूत को काबू में कर लिया। भूत ने उसे बोला कि यदि तूने मुझे किसी काम पर नहीं लगाया तो मैं तुझे खा जाऊँगा। अब तो वह आदमी उस भूत को जो भी काम देता, भूत तुरन्त उसे करके आ जावे और कहे कि मैं अब क्या करूँ। जब सभी कामों का अन्त हो गया तो उस आदमी पर बड़ी विपत्ति आ गई। किसी ने बताया कि इस मुसीबत से बचने का उपाय तो कोई संत ही बता सकता है। उसके पास जाकर पूछ।

वह आदमी एक संत के पास गया और जाकर अपनी विपत्ति बताई तो संत बोला कि अपने घर के आँगन में एक लंबा बांस गाड़ दो और जब प्रेत बोले कि काम बताओ तो उसे कहना कि इस बांस पर उतरते–चढ़ते रहो। इस तरह उस प्रेत को चढ़ने–उतरने से कभी फुर्सत ही नहीं मिलेगी और तेरा काम बन जायेगा। तू प्रेत से बच जायेगा। उस आदमी ने संत की बात मान ली और ऐसा ही उपाय किया। आखिर प्रेत ने उस आदमी से हार मान ली और वश में हो गया।

कहने का मतलब यही है कि हमारा यह मन ही प्रेत है जो इसको फुर्सत में रखता है तो मन उसको बरबाद कर देता है इसलिये इस मन को कभी भी ठाला (खाली) मत छोड़ो। इस मन को दिन–रात हरिनाम में लगाये रखो। यही उपाय एक वृत्ति का बांस है जो अपने तन के हृदय रूपी चौंक में गड़ा हुआ है। यदि

मन इस हरिनाम रूपी बांस पर उतरता–चढ़ता रहेगा तो मन को और कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिलेगा और हरिनाम में लगाने पर, यह मन मानव को सुख सागर में तैराता रहेगा। फिर माया उसे छूएगी ही नहीं। उसका मार्ग ही बदल जायेगा। श्रीगुरुदेव जी ने कैसा सरल व सुगम मार्ग साधकों को बताया है।

अब मन के हरिनाम को भी अवलम्बन चाहिये वरना हरिनाम जपते हुये भी मन स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकेगा। जब हरिनाम जपने के लिये माला हाथ में पकड़ो तो सबसे पहले, माला मैया को सिर से लगाओ, फिर हृदय से लगाओ तथा माला मैया के चरणों का चुम्बन करो। इसी प्रकार करने से, झोली में हाथ डालते ही, माला मैया सुमेरु भगवान् को साधक की उगंलियों में पकड़ा देगी। अब माला मैया की मणियों, जो गोपियों का प्रतीक है, पर जप करना शुरु कर दो। अब **जब हरिनाम करना शुरू करो तो सबसे पहले अपने श्रीगुरुदेव जी के चरणों में बैठ जाओ और चिन्तन करो कि मेरे गुरुदेव मेरे हरिनाम को सुन रहे हैं। मेरे गुरुदेव के चरणों से एक ज्योति निकल कर**, मुझे अवलोकित कर रही हैं, सराबोर कर रही है। इस प्रकार मन को एक अवलम्बन मिल गया। अब मन इसी उधेड़बुन में चिपका रहेगा। दूसरा चिन्तन उसका होगा ही नहीं। इसी प्रकार हर रोज़ का नियम बना लो कि सबसे पहली आठ माला मन को एकाग्र करके इसी प्रकार बैठकर श्रीगुरुदेव के चरणकमलों में बैठकर करनी हैं। ऐसा अभ्यास करने पर मन स्वतः ही हरिनाम में लग जायेगा। यह है गीतानुसार–अभ्यास की कसौटी।

उसी प्रकार आठ माला श्री श्री राधाकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करते हुये करो। फिर गौर–निताई के चरणों में बैठकर करो। किसी भी संत के चरणों में बैठकर करें। ऐसा अभ्यास करने से मन शत–प्रतिशत रुकता रहेगा। जब मन स्थिरता प्राप्त कर लेगा तो उस मन में हरिनाम रूपी बीज द्वारा सभी धर्मशास्त्र के वचन हृदय में प्रगट हो जायेंगे।

भगवत् नाम ही सभी धर्मग्रन्थों का बीज है। स्मरण रूपी जल से सींचने पर, धर्मग्रन्थों के सार तत्व हृदय रूपी जमीन में अंकुरित हो जायेंगे। धीरे–धीरे यही साधन भगवत्–मिलन हेतु छटपट की अंकुरता उपलब्ध करवा देगा और संसारी आसक्ति छुड़ाकर, वैराग्य प्रगट कर देगा। बस! अब तो पंचम पुरुषार्थ प्रेम प्रगट हो जायेगा और विरहामयी अवस्था साधक के हृदय को झकझोरना आरंभ कर देगी। बस भगवान् का मन, यहीं पर भगवान् के चरणों में चला जायेगा। यह मन भगवान् का दिया हुआ है, मनुष्य ने बेहक से, इसे ले रखा है। वह मन जो अब तक माया के चंगुल में रहता था अब भगवान् के हस्तकमल में रहेगा।

यही है अवलम्बन का सार तत्व जो मेरे श्रीगुरुदेव ने सूक्ष्म रूप से साधकों को बताया है। इस मार्ग को अपनाकर साधकगण अपने भजन–पथ में अग्रसर होते रहेंगे तो सुख ही सुख है, आनन्द ही आनन्द है। दुःख की जड़ ही कट गई। मैंने सुना है कि कई लोग कहते हैं कि सोलह माला से अधिक नाम जपने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो ऐसा बोलते हैं, वे अपराध करते हैं। भगवत्–नाम तो जितना अधिक लिया जाये उतना ही कम है। नाम के विरोधी बोलते हैं कि नामाचार्य श्रीहरिनाम ठाकुर तो ब्रह्मा जी के अवतार थे अतः वे तीन लाख हरिनाम कर सकते थे पर साधारण मानव तीन लाख हरिनाम नित्यप्रति नहीं कर सकता। यह आम आदमी के शक्ति के बाहर है। ऐसा कहना बिल्कुल ग़लत है और दूसरों को भ्रमित करना है। ऐसा कहना भी जघन्य अपराध है।

हमारे सभी गुरुवर्गों ने तीन–तीन लाख हरिनाम नित्यप्रति किया है और कई आज भी कर रहे हैं। श्रीगौरहरि और श्रीहरिदास के मध्य, हरिनाम पर हुई चर्चा में स्पष्ट लिखा है कि सोलह माला करने के बाद तीन लाख नाम तक पहुँचना चाहिये (श्रीहरिनाम चिन्तामणि पृष्ठ संख्या–210)।

नारद जी हर समय हरिनाम का कीर्त्तन करते रहते हैं। धन्वन्तरि वैध ने कहा है कि हरिनाम सभी प्रकार के रोगों को नष्ट

कर देता है।

कितने उदाहरण है। नाम तो कैसे भी लिया जाये, सुख में डुबा देगा, कल्याण कर देगा। बेमन से जपा हुआ नाम भी जन्म मरण से छुड़ाकर, वैकुण्ठवास करा देगा। हरिनाम का जाप ही भगवत्–दर्शन का प्रतीक है। भगवान् से नज़दीक कोई नहीं है और भगवान् से दूर भी कोई नहीं है। जो भगवान् को नहीं ध्याता, भगवान् उससे बहुत दूर हैं और जो हरिनाम जपता है, भगवान् उसके बहुत नज़दीक हैं। केवल भाव की ही भ्रान्ति है। भाव की भ्रान्ति होने से ही भगवत्–विरहाग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होती। केवल एक बाल का ही अन्तर है। भगवान् तो दर्शन दे रहे हैं, तुम्हें नज़र नहीं आ रहे, इसमें केवल भाव की अदृश्यता है।

– हरि बोल –
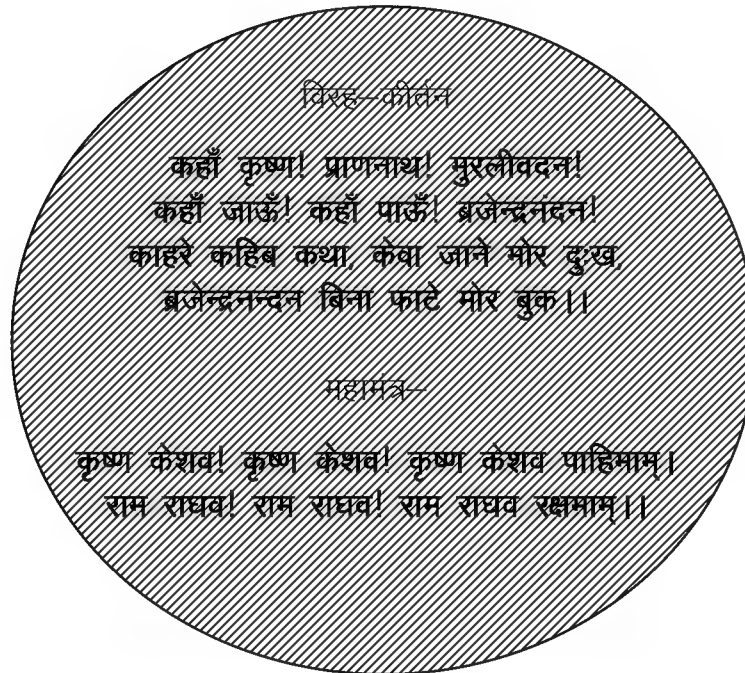
34

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
9–3–2012

प्रेमास्पद भक्तगण शिरोमणि

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना स्वीकार हो।

समस्त धर्म ग्रन्थों का सार केवल हरिनाम

सभी धर्मग्रंथ भगवान् की सांस से निकले हैं। उनके धर्म ग्रन्थों में जो भी लिखा है, सार रूप में वह हरिनाम का ही महत्व दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के तौर पर, जैसे दूध को जामन देकर जमाया जाता है। फिर उसे मथनी द्वारा मथा जाता है। उस मंथन से मक्खन निकाला जाता है। यह मक्खन ही सारतत्व है। इस मक्खन को खाने से शरीर पुष्ट होता है।

ठीक इसी प्रकार धर्मग्रन्थों का पठन पाठन करने, साररूप में हरिनाम रूपी सारतत्व उपलब्ध किया जाता है। यह हरिनाम ही आत्मा का ख़ास भोजन है। जो भी मानव इसका उपभोग करता है, वह परमात्मा स्वरूप में बदल जाता है। वह संसारी दुखों से छूटकर, हमेशा के लिये स्वन्त्रता उपलब्ध कर लेता है। अखिल लोक ब्रह्माण्डों में, भगवत्–प्राप्ति का इससे बड़ा व सरल साधन कोई नहीं है जिससे मानव को सर्वोत्तम उपलब्धि हो सके। सभी धर्मशास्त्र इस बात के साक्षी हैं। सार रूप में मेरे श्रीगुरुदेव ने तीन प्रार्थनाएं बताई हैं। साधकों के मन में पूर्ण–श्रद्धा व विश्वास जमाने हेतु श्रील गुरुदेव बता रहे हैं, सभी भक्तगण ध्यानपूर्वक सुनकर, अपनों हृदयों में बिठा लो ताकि आवागमन रूपी गर्भाशय के दारुण कष्ट से मुक्ति मिल सके। आवागमन का यह कष्ट चींटी से लेकर हाथी तक सभी को सहन करना पड़ता है। हरिनाम हेतु श्रीमद्भागवत पुराण क्या बोलता है?

हे परीक्षित! यह कलियुग दोषों का भण्डार है, ख़ज़ाना है पर इसमें एक महान गुण यह है कि श्रीकृष्ण नामों का कीर्त्तन करने मात्र से मानव परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

विष्णुपुराण क्या बोल रहा है? ध्यान से सुनो !

सत्ययुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में अर्चन–पूजन से साधक जिस फल को प्राप्त करता है, वही फल वह कलियुग में केवल भगवत्–नाम जपकर प्राप्त कर लेता है।

नारद पुराण क्या बोल रहा है?

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम मम जीवनम्।
क्लौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

अर्थात् श्रीहरिनाम, हरिनाम और हरिनाम ही मेरा जीवन है। कलियुग में इसके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है। कलियुग में भगवत्–प्राप्ति का दूसरा कोई साधन है ही नहीं। हर वक्त हरिनाम करते रहना ही नारद जी का परमध्येय है

''नरेश्वर ! मनुष्यों में वे ही सौभाग्यशाली तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं जो कलियुग में स्वयं हरिनाम स्मरण करते हैं और दूसरों को हरिनाम में लगाते रहते हैं–यह स्कन्दपुराण की उक्ति है।

''घोर कलियुग में जो मानव हरिनाम का जप करता है, वही कृतकृत्य है। कलि उन्हें बाधा नहीं देता। जो हरिनाम का जप करता है, वही सुखी है अन्य सभी कलि की चक्की में पिस रहे हैं।''

वामनपुराण

भगवान् स्वयं बोल रहे हैं–''जो कलियुग में मेरे नाम का जप करता है, वही धन्य है, वही कृतार्थ है, उन्होंने ही पुण्य कर्म किये हैं तथा उन्होंने ही जन्म व जीवन का योग्य फल पाया है। इस कलियुग में इस दुर्लभ हरिनाम का जो एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं, वे कृतार्थ हैं। इसमें किंचितमात्र भी संशय नहीं है।''

गरुड़ पुराण क्या बोल रहा है?

''कलियुग के लोग प्रज्ज्वलित पापाग्नि से भय न करें क्योंकि गोविन्द नाम रूपी मेघ–समूहों के जल बिन्दुओं से वह नष्ट हो जाती है। यदि कोई विवश होकर भी भगवत्–नाम का उच्चारण करता है, उसके समस्त पाप ठीक उसी प्रकार जलकर भस्म हो जाते हैं जैसे सिंह की दहाड़ से सभी हिसंक पशु शिकार छोड़कर भाग जाते हैं।''

वामन पुराण बोल रहा है–

''इसी पृथ्वी पर हरिनाम नायक एक नर को प्रसिद्ध चोर बताया गया है जिसका नाम कानों के रास्ते, अन्दर जाने पर, अनेक जन्मों की कमाई हुयी पाप राशि को चुरा लेता है।''

स्कन्द पुराण बोल रहा है–

मानव भक्तिभाव या बिना भक्तिभाव के भी, यदि भगवत्–नाम उच्चारण कर ले तो यह नाम समस्त पापों को उसी तरह दग्ध कर देता है जैसे युगान्तकाल में प्रज्ज्वलित हुई प्रलयाग्नि सारे जगत् को जला डालती है। इस पृथ्वी पर कोई भी भगवत्–नाम लेने से प्रसिद्ध हो जाता है और उसके द्वारा नाम का उच्चारण करने पर पापों के सहस्त्रों टुकड़े हो जाते हैं। जैसे–असावधानी से छुई हुई आग अंग को जला डालती है उसी प्रकार यदि हरिनाम को होंठ भी छूलें तो पापों को जलाकर भस्म कर देते हैं।

पद्म पुराण बोल रहा है–

''जैसे अनिच्छा से भी छू लेने पर आग जला डालती है उसी प्रकार किसी भी बहाने से भगवत्–नाम मुख से निकल जाये तो समस्त पाप भस्मीभूत हो जाते हैं''

''अमित तेजस्वी भगवत्–नाम के उच्चारण करने पर समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जाते हैं, जैसे–दिन निकल जाने पर अंधकार विलीन हो जाता है। संकेत, परिहास, स्तोभ में अनादरपूर्वक लिया हुआ भगवत्–नाम भी समस्त पापों को जलाकर ख़ाक कर देता है।''

"जाने–अनजाने में भी, किसी के मुख से भगवत्–नाम निकल जाये तो उसका दसो–दिशाओं में कल्याण हो जाता है।"

बृहद–पुराण बोल रहा है–

"भगवत्–नाम में पाप नाश करने की इतनी अपार शक्ति है कि मानव उतना पाप जिन्दगी भर में कर ही नहीं सकता।"

बृहद–विष्णुपुराण बोल रहा है–

"भगवत्–नाम में जितनी शक्ति विद्यमान है उतने पाप कुकुरभोजी चांडाल भी नहीं कर सकता।"

श्री धन्वन्तरि जी का कथन है–

अच्युत अनन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगा सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

भगवत्–नाम एक अमर औषधि है जिसको जपने से, मानव के अन्दर–बाहर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। अन्दर के रोग यानि काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार तथा राग–द्वेष इत्यादि और बाहर के यानि शरीर के समस्त रोग–दुःख दर्द इत्यादि, सभी नष्ट हो जाते है। यह मैं सच–सच कह रहा हूँ। इसलिये हे मानव ! मेरा नाम जप ! मेरा नाम ले।"

"हे साम्ब ! व्याधिजनक दुःख स्वतः छूटने योग्य नहीं हैं। इन्हें दूसरी औषधियों द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता परन्तु हरिनाम रुपी औषधि का पान करने से समस्त व्याधियों का निवारण हो जाता है। इसमें किंचितमात्र भी संशय नहीं है।"

"भगवान् के नाम–संकीर्त्तन से सम्पूर्ण व्याधियाँ (मानसिक चिंतायें और शारीरिक कष्ट) तत्काल नष्ट हो जाती हैं पूर्वजन्मों के संस्कार भी जलकर भस्म हो जाते हैं और वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हो जाती है।

"जो मायामय व्याधि से आच्छादित तथा राजरोग से पीड़ित है वह मानव भगवत्–नाम करने से निर्भय हो जाता है। श्रीहरि के

नाम का बारंबार उच्चारण समस्त रोगों को नष्ट करने वाला तथा सारे उपद्रवों का नाशक और सम्पूर्ण अरिष्टों को शान्त करने वाला है।'' (विष्णु पुराण)

नाम की महिमा कहाँ तक कहें ! नाम की महिमा अनन्त है, अपार है। अभी कुछ समय पहले की एक प्रत्यक्ष घटना है। चण्डीगढ़ से, श्रीमान कक्कड़ जी, सैक्टर–22 में रहते हैं। वे रिटायर्ड बैंक मैनेज़र हैं। लगभग दो साल पहले उनको कई शारीरिक रोग बहुत सता रहे थे। वे बहुत परेशान थे। अचानक उनको हृदय रोग ने भी आ घेरा। सभी टेस्ट करवाये गये। डाक्टरों ने कहा कि दोनों वाल्व पूरी तरह खराब हो चुके हैं। यदि शीघ्र ही आपरेशन नहीं किया गया तो कुछ भी हो सकता है। आपरेशन में कई लाख रुपयों का खर्चा होना था और फिर भी जीवन बचेगा, इसकी भी कोई गारंटी नहीं थी। श्रीमान कक्कड़ जी बहुत परेशान थे।

श्रीकक्कड़ जी की मुझमें बहुत श्रद्धा है और मेरे वचनों पर विश्वास भी है। उन्होंने मुझे फोन करके सारी व्यथा बताई और इस गंभीर समस्या का उपाय पूछा। मैंने उन्होंने सलाह दी कि आपरेशन मत करावो और जितना हो सके, ज्यादा से ज्यादा हरिनाम मन लगाकर करोगे तो आपरेशन नहीं कराना पड़ेगा। वे जानते हैं कि मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त है।

फिर क्या? मरता क्या न करता? कक्कड़ जी ने दिन–रात एक करके श्रद्धा और प्रेम के साथ, उच्चारण सहित हरिनाम करना आरंभ किया। कुछ ही महीनों में, वे पूर्णरूप से स्वस्थ हो गये। उनका सारा कष्ट, सारे दुःख–दर्द, तकलीफें जानें कहां लुप्त हो गईं।

यह बहुत बड़ा चमत्कार था। भगवत्–नाम से क्या नहीं हो सकता। डाक्टर भी हैरान रह गये कि बिना आपरेशन के कैसे वे ठीक हो गये।

यह हरिनाम की अलौकिक शक्ति है पर जो हरिनाम पर पूर्ण श्रद्धा करेगा, वही सुकृतिशाली है। जो सुकृतिशाली नहीं होगा उसके मुख से हरिनाम उच्चारण होगा ही नहीं। सुकृतिशाली होने के लिये भगवान् के किसी प्यारे साधु की सेवा परमावश्यक है। भगवान् कहते हैं–

मन, क्रम, वचन, कपट तजि, जो करे संतन सेव।
मो समेत, विरंचि शिव, वश ताके सब देव।।
पुण्य एक जग में नहीं दूजा।
मन, क्रम, वचन साधु पद–पूजा।
सानुकूल तिन पर मुनिदेवा।
जो तजि कपट करहिं भक्त–सेवा।।

''जो मानव उक्त प्रकार से भगवत्–प्रेमी साधु की सेवा करता है, वह सुकृतिशाली बन जाता है। भगवत्–कृपा उस पर स्वतः ही आ जाती है।

मैंने जो श्रीकक्कड़ जी के बारे में वर्णन किया है, यह हरिनाम का प्रत्यक्ष चमत्कार है। ऐसे बहुत सारे चमत्कार हुये हैं और हो रहे हैं। कुछ लिख रहा हूँ। भक्तगण हरिनाम की अद्भुत महिमा को अनुभव करने की कृपा करें।

एक भक्त महिला मेरे पास आकर बोली कि मेरा पति मुझे हरिनाम करते देखकर बहुत गुस्सा होता है और मेरी माला छीन कर दूर फेंक देता है। मैं मन्दिर जाती हूँ तो भी नाराज़ होता है। मैं क्या करूँ?

मैंने उन भक्त महिला से कहा–''माताजी ! आप जितनी माला जपते हो, उससे दूनी (दो गुणा) जपा करो आप का पति आपके अनुकूल हो जायेगा।''

उस महिला की मुझ पर पूर्ण श्रद्धा थी और मेरे वचनों में विश्वास भी। उसने उसी दिन से हरिनाम की माला की गिनती दो गुनी कर दी। भगवान् तो अन्तर्यामी है। वे जान गये कि यह बेचारी, अपने पति को अनुकूल करने हेतु मेरा नाम जप रही है।

भगवान् तो प्रत्येक जीव के अन्दर आत्मा रूप से विराजमान रहते ही हैं। उसके पति के हृदय में भी विराजमान हैं। भगवान् ने कुछ ही दिनों उसके पति का मन बदल कर उसके अनुकूल कर दिया। इतना ही नहीं, वह अपनी पत्नि से बोला–"मुझे भी एक माला लाकर दे। मैं भी हरिनाम किया करूँगा।"

कहने का मतलब है कि हरिनाम की शक्ति अमोघ है पर हमें विश्वास ही नहीं होता। भगवान् का नाम असंभव को भी संभव बना देता है। नाम में सच्ची निष्ठा हो, फिर कोई भी काम असफल होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मेरा पोता निमाई जिसने लगभग 20 बार नौकरी के लिये इम्तहान दिया। अच्छे नंबरों में पास भी हुआ पर इंटरव्यू में रह जाता। वह बेचारा बहुत परेशान हो गया था और मेरे पास आकर कहने लगा–"बाबू जी ! मेरी तो इंजीनियर की पढ़ाई ही बेकार गई। इतना पैसा भी खर्च किया। मैं क्या करूँ?"

निमाई की मुझ पर पूर्ण श्रद्धा है। वह हरिनाम भी करता है। मैंने उसे कहा–"बेटा ! चिन्ता मत कर। मेरी बात सुन। जितनी माला तू करता है, उससे दुगुनी कर और हरिनाम को कान से सुन। तेरी नौकरी अवश्य लग जायेगी।

निमाई ने ऐसा ही किया। फिर क्या था। अब तो इसकी चार जगह नौकरी लग गई। अब तो निमाई की हरिनाम में पूर्ण श्रद्धा हो गई। कहा जाता है कि भगवान् से कुछ भी मांगना नहीं चाहिये। बात तो ठीक है पर नये साधक की श्रद्धा तब ही बनेगी जब उसकी मांग पूरी होगी। बिना कामना तो संसार चलता ही नहीं है। पर बाद में कामना भी निष्काम में बदल जाती है। किसान खेती क्यों करता है? इसलिये कि खेती करने से खाने–पीने का काम चलेगा। बिना लोभ काम होता ही नहीं है। यदि निष्काम भावना अन्तःकरण में आ जाये तो भगवान् ही मिल जायें। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को बोला है कि इस काम बैरी को मार क्योंकि कामना अर्थात् इच्छा ही बुरे रास्ते में ले जाती है, बुरा काम

करवाती है। हरिनाम की शरणागति ही कामशत्रु को मारती है।

मेरे जन्म स्थान छींड की ढाणी में आठ युवक पढ़े–लिखे थे। उन्होंने बहुत बार नौकरी के लिये कोशिश की पर हर बार इंटरव्यू में फेल हो जाते। ये भी नवयुवक गरीब घराने के हैं और दूर–दूर इंटरव्यू पर जाने के लिये इन्हें कर्ज़ लेकर जाना पड़ता है। जब कहीं भी नौकरी नहीं लगी तो हताश हो गये, निराश हो गये। एक दिन मेरे पास आये और बोले–''बाबा ! हमारी नौकरी तो कभी भी नहीं लगेगी। कमाई का कोई और साधन भी नहीं है। क्या करें? आप ही कोई रास्ता बताओ।''

मैंने कहा–''यदि तुम्हारा मुझ पर विश्वास है तो नौकरी लगने का उपाय बता सकता हूँ।''

उन्होंने कहा–''हमारी आप में पूरी श्रद्धा है। आप जो भी बतावेंगे, हम जी–जान से करने को तैयार हैं।''

''तुम सभी हरिनाम की आठ–आठ माला, कान से सुनकर हर रोज़ करो तो तुम्हारी नौकरी शर्तिया लग जायेगी।'' मैंने कहा।

अब तो उन्होंने नित्य प्रति आठ माला करनी शुरू कर दी। पिछले महीने में उनमें से चार की नौकरी तो रेलवे विभाग में लग गई। एक पटवारी बन गया और तीन फौज में चले गये। अब वे आठों नवयुवक अपनी–अपनी नौकरियों पर हैं और हर रोज़ हरिनाम कर रहे हैं।

मेरे घर वाले मुझे बोलते हैं कि श्रीगुरुदेव ने आपको वाक्‌सिद्धि दे रखी है आप इसे यूंही लोगों के लिये लुटा रहे हो। इससे आपका भजन–स्तर गिर जायेगा। 1954 में भी आपने वाक्–सिद्धि प्राप्त करके दस साल तक लोगों के काम किये। जब श्रीगुरुदेव ने मना किया था तभी आप माने थे। अब आप ऐसा मत करो। इससे आपका भी नुकसान होता है और हमारा भी।

मैंने परिवार वालों को बोला–

परहित सरस धर्म नहीं भाई।
परपीड़ा सम नहीं अघमाई।

किसी का भला करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं और किसी को पीड़ा देने से बड़ा पाप नहीं। मैंने एक उदाहरण दिया।

रामानुजाचार्य ने किसी व्यक्ति को शिष्य बनाकर कान में मंत्र दिया और आदेश दिया कि इस मंत्र को गुप्त रखना। यदि यह मंत्र किसी को बता दिया तो नरक भोग करना पड़ेगा। यदि नहीं बताया तो तुम्हें वैकुण्ठ को प्राप्ति हो जायेगी क्योंकि जो भी इस मंत्र को जपेगा, वह वैकुण्ठ में जायेगा।

शिष्य बड़ा परोपकारी था। सोचा, यदि मैं इस मंत्र को सबको बता दूँ तो सबका कल्याण होगा और यदि मैं इसे गुप्त रखूंगा तो केवल मेरा ही मंगल होगा। अतः मुझे स्वार्थी नहीं होना चाहिये। मैं भले ही नरक में चला जाऊँ, बाकी सभी तो वैकुण्ठ में जायेंगे।

एक गाँव में बहुत बड़ा मेला लगा था। वहां हज़ारों लोग इकट्ठे हुये थे। रामानुजाचार्य के शिष्य ने सोचा कि गुरु जी द्वारा दिये गये गुप्त मंत्र को सभी को सुनाने का यह अच्छा मौका है। ऐसा सोचकर वह एक ऊँचे टावर पर चढ़ गया और उस पर खड़ा होकर ज़ोर–ज़ोर से बोलने लगा–"सुनो ! सुनो! मैं आप सबको एक बात बता रहा हूँ। आप में से जो–जो वैकुण्ठ जाना चाहते हैं, वे सभी इस मंत्र को सुनो। मैं यह मंत्र आपको सुना रहा हूँ।" ऐसा कहकर उसने वह गुप्त मंत्र ऊँची आवाज़ में सबको सुना दिया।

अब किसी दूसरे शिष्य ने जाकर गुरु जी से शिकायत कर दी। गुरु जी को बड़ा गुस्सा आया और उसे भला–बुरा कहा और पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया? शिष्य ने कहा–"गुरुदेव ! मंत्र सबको बता देने से सब लोग तो वैकुण्ठ में जायेंगे। मैं अकेला ही नरक में जाऊँगा। इसलिये सबका कल्याण करने के लिये मैंने ऐसा किया।"

उसकी बात सुनकर गुरुजी बहुत प्रसन्न हुये और उसको अपनी छाती से लगाकर बोले–"बेटा ! तू कभी नरक नहीं जायेगा।

जो दूसरों के कल्याण के बारे में सोचता है, वह भगवत्–स्वरूप ही होता है। भगवान् में और उसमें कोई अन्तर नहीं होता। तूने जो किया, बहुत उचित किया।''

मैंने ऊपर जो कथा बताई है उसका मतलब यही है कि मैं सबका भला चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि कैसे भी सभी हरिनाम करने लग जायें। इसमें आपका भी भला और मेरा भी भला। मैं ऊपर जो बातें बताई हैं वह केवल इसलिये कि इनको पढ़कर–सुनकर आपकी हरिनाम में रुचि हो जाये। मैंने केवल हरिनाम का महत्व बताया है। श्रील गुरुदेव की कृष्ण से, मैं स्वप्न में भी बड़ाई नहीं चाहता। कांचन, कामिनी प्रतिष्ठा मेरे लिये ज़हर है। आप सबकी हरिनाम में रुचि हो जाये, इसलिये कोई भी प्रसंग बोलता रहता हूँ। यह मेरे श्रीगुरुदेव के आशीर्वाद का ही प्रतीक है। इन बातों को जो कोई भी बड़ाई समझेगा, वह अपराध का भागीदार बनेगा। हरिनाम करते हुये कान से सुनना परमावश्यक इसलिये भी है कि इससे मन इधर–उधर नहीं जायेगा और एकाग्र होगा।

सुना है कि 13 दिसम्बर, 2012 को संसार में बहुत से स्थानों पर उपद्रव होंगे जिससे बहुत सारी जनसंख्या कम हो सकती है। सच क्या है, यह तो भगवान् जाने। मैंने तो जैसा सुना है, सबको बता दिया है। देखो ! हरिनाम करने वाले का बाल भी बांका नहीं हो सकता। अभी अवसर है, अभी भी सचेत हो जाओ। ऐसा अवसर आगे फिर नहीं मिलेगा। आने वाले समय में पूरी दुनियां में हरिनाम का उजाला फैल जायेगा। जो दुर्भाग्य होगा, उसके लिये अंधेरा छा जायेगा। ''गाँव–गाँव में, शहर–शहर में, मेरे नाम का प्रचार होगा'' –श्रीगौरहरि की यह वाणी सत्य होकर रहेगी।

हरिबोल !

35

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
15–03–2012

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था तेज़ होने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवान् शीघ्र प्रसन्न कैसे हों?

मेरे श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि जब सूखी तुलसी की मणियों की माला जागृत एवं सजीव हो सकती है एवं ऐसे साधक को, जो हरिनाम जाप करता है, सुमेरु भगवान् को उसकी उंगलियों में पकड़ा सकती है तो जो तुलसी देवी, जो जीवों का उद्धार करने के लिये पेड़ के रूप में, हरे–हरे पत्तों से लदकर, पृथ्वी माँ की गोद में खड़ी है, क्या वह भगवान् से मिला नहीं सकती? भगवत्–धाम पहुँचा नहीं सकती? ऐसा विचार कर जापक को वृन्दादेवी की सेवा में संलग्न हो जाना चाहिये। उसे नित्यप्रति शाम सवेरे वृन्दादेवी माँ से प्रार्थना करनी चाहिये कि–**"हे मेरी प्यारी माँ, मेरा मन संसार से हटाकर भगवान् में लगा दे। किसी भी तरह, इस संसार सागर से, जो दुखों से भरा है, मुझे किनारे लगा दे। तेरे चरणों में, मेरी रो–रोकर बस यही प्रार्थना है।"**

वृन्दादेवी दयानिधि हैं और जीवों का उद्धार करने के लिये ही इस धरातल पर पधारी हैं। लेकिन जीव तुलसी माँ का अनादर करके, दुःख सागर में डूब रहे हैं। तुलसी माँ भगवान् से शिकायत करती हैं कि आप इन जीवों को जो दुःख व कष्ट देते रहते हो, वह मेरे मन के विरुद्ध है। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये।

भगवान बोलते हैं–**"हे भक्तवत्सला देवी ! हे शरणागतवत्सला**

देवी। मेरी परिचारिका ! इसमें मेरा क्या दोष है? तेरी कृपा के बिना मैं किसी को अपना नहीं सकता। ये सभी तुम्हें एक संसारी वृक्ष के रूप में मान रहे हैं क्योंकि अज्ञान का अंधेरा इन पर छा रहा है। इनका यह अज्ञान रूपी अंधेरा तो तेरे सेवक, वैष्णवजन ही हटा सकते हैं और इन जीवों को सच्चा ज्ञान रूपी उजाला फैला सकते हैं। हे वृन्दे देवी ! मुझे दोषी बनाना तुम्हें शोभा नहीं देता।''

तब वृन्दादेवी बोली–''आप जो बोलते हो, वही ठीक है। इन जीवों पर माया के कारण सत्, रज और तमोगुण हावी हो रहा है। अतः इनको अपने कर्मानुसार भोग भोगना ही पड़ता है। अब आपका कोई दोष नहीं है।'' मेरे गुरुदेव के बिना, भगवान् के पास पहुँचने का सीधा रास्ता कोई नहीं बताता है। मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि वृन्दादेवी के अभाव में भगवान् का जीवन भी निरर्थक रहता है। जिस साधक पर वृन्दादेवी प्रसन्न हैं, उस पर स्वतः ही भगवान् प्रसन्न रहते हैं। पर जिस घर में वृन्दादेवी दुःखी हैं, उस घर में भगवान् भी दुःखी रहते हैं। वहां पर माया का प्रकोप होता रहता है। उस घर में किसी की भी आपस में बनती नहीं है और आपस में लड़ाई–झगड़े होते रहते हैं। उस घर की रिद्धि–सिद्धि समाप्त हो जाती है। उस घर पर कलि महाराज का साम्राज्य छाया रहता है। वस्तुतः भगवान् का जीवन ही वृन्दा महारानी से है।

वृन्दा महारानी घर में दुखी क्यों रहती हैं? समय पर पानी की व्यवस्था नहीं होती। वृन्दादेवी के पत्तों पर कीड़े लग जाते हैं इन कीड़ों से वृन्दादेवी को बचाने के लिये, इसके पत्तों पर हल्दी पाऊडर (पिसी हुई हल्दी) डालते रहना चाहिये। जब मंजरी आवे तो मंजरी तोड़ना परमावश्यक है। मंजरी न तोड़ने से वृन्दा देवी सुव्यवस्थित नहीं रहती और उसका फलना–फूलना (growth) रुक जाता है। वृन्दादेवी की जड़ों में छः महीने में एक बार गऊ के गोबर की खाद देना परमावश्यक है। जड़ में कीड़े लग जाने से वृन्दादेवी रोगी होकर सूखने लग जाती है इसलिये तुलसी महारानी

की जड़ों में सफेद रंग की फिटकड़ी डालते रहना चाहिये। वृन्दादेवी के पास भगवान् का वास होता है। इसलिये दोनों समय सुगन्धित अगरबत्ती जलाते रहना चाहिये। शुद्ध घी का दीपक एकादशी के दिन जलाना चाहिये।

साधक को सवेरे–शाम, दोनों समय वृन्दादेवी की चार बार परिक्रमा करने के बाद साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। सूर्य की धूप वृन्दादेवी पर पड़ती रहनी चाहिये तथा सर्दी में उसकी शुद्ध घी के दीपक से आरती होनी चाहिये। जहां पर वृन्दादेवी विराजमान हैं, उसके पास, धुले हुये कपड़े सुखाने के लिये नहीं डालना चाहिये क्योंकि इन कपड़ों की हवा वृन्दादेवी को लगती है और वह सूखना आरंभ कर देती है। हमारे शरीर की छाया भी वृन्दादेवी पर नहीं पड़नी चाहिये।

जहां वृन्दादेवी का वास है वहां पर बुरी आत्मा नहीं आती। उस घर में रोग या संकट अचानक आक्रमण नहीं करता। वृन्दादेवी की मंजरी भगवान् के चरणों में अर्पण करनी चाहिये तथा वृन्दादेवी के पत्तों की माला भगवान् के गले में धारण करवाना चाहिये। अर्पण की हुई माला के पत्तों का घर वाले खा सकते हैं या फिर इन पत्तों को वृन्दादेवी के ही गमले में या जड़ों में डाल सकते हैं। तुलसी महारानी के पत्तों को भूलकर भी उबालना नहीं चाहिये। ऐसा करना बहुत जघन्य अपराध होगा।

वृन्दादेवी सुखी हैं तो भगवान् भी सुखी हैं और यदि वृन्दादेवी दुःखी हैं तो भगवान् भी दुःखी हैं। ऐसे घर में, जहाँ भगवान् दुःखी रहते हैं, भगवत्–भक्ति का स्तर बढ़ता नहीं है। जिस घर में वृन्दादेवी दुःखी हैं, उस घर में गुरु, वैष्णव व भगवान् पंगु बने रहते हैं क्योंकि भक्ति का मूल प्रादुर्भाव तो वृन्दादेवी की कृपा से ही होता है। इसलिये ये तीनों (गुरु वैष्णव व भगवान्) साधक को भक्ति में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान नहीं कर सकते। देखा भी जाता है कि बहुत से साधकगण वृन्दादेवी की अवहेलना करते रहते हैं और फिर बोलते हैं कि हम हरिनाम भी खूब करते हैं,

धर्मग्रन्थों के अनुसार जीवन भी चला रहे हैं, फिर भी घर में, दुःख रहता है, क्लेश रहता है। पता नहीं, किस कारण से किस अपराध से हम दुःखी रहते हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव बोलते हैं कि साधक जपने वाली तुलसी माला को, लकड़ी या काठ की बनी निर्जीव माला समझते हैं, उसे एक साधारण वस्तु समझकर माला जपते रहते हैं। ऐसे साधकों के मन को माला भगवान् के चरणों में कैसे लगा सकती है? श्रीगुरुदेव ने, हरिनाम जप करने के लिये जो तुलसी माला दी है, वह माया से छुड़ाती है और भगवान् से मिलाती है, उसे एक निर्जीव वस्तु समझकर घर में जघन्य अपराध होता रहता है और साधक दुःखी रहता है। अतः भक्ति का स्तर बढ़ता नहीं है।

जो बातें मेरे श्रीगुरुदेव बताते हैं, ऐसी सूक्ष्म बातें कोई भी बताता नहीं है। घर में जो तुलसी महारानी का पौधा है, वह एक साधारण पौधा नहीं है, वह साक्षात् भगवान् की परिचायिका है। उस पौधे को पौधा समझ लेने से वहां भगवान् का वास नहीं रहता। भगवान् स़ख्त नाराज हो जाते हैं। जब भगवान् ही नाराज हो गये तो दूसरे देवता भी नाराज हो जाते हैं क्योंकि देवता भगवान् के निजजन हैं। देवता नाराज होने से घर की रिद्धि–सिद्धि समाप्त हो जाती है। इसीलिये भक्ति में मन नहीं लगने का एकमात्र कारण यह है कि साधक वृन्दादेवी की सेवा करना ही नहीं जानता। यदि तुलसी महारानी की सुचारु रुप से सेवा हो तो नाम भगवान्, साधक का मन अपने चरणों में लगा देवें। सेवा न होने से भगवान् नाराज़ रहते हैं अतः भक्ति नीरस रहती है।

याद रखो, श्रीहरिनाम जपने वाली तुलसी की माला, हमारी अमर माँ है। यदि इस माँ का आदर–सत्कार होता रहता है तो यह माया से छुड़ा देती है और भगवान् से मिला देती है। कोई भी साधक या भक्त इस बात को आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जैसे मेरे श्रीगुरुदेव ने बताया है यदि वैसे तुलसी देवी की सेवा करते रहोगे तो माला

मैया, सुमेरु (भगवान्) को आपकी उंगलियों में पकड़ाती रहेगी। सुमेरु (भगवान्) तलाश करना नहीं पड़ेगा। कभी ऐसा भी हो सकता है कि सुमेरु भगवान् माला झोली में ढूंढ़ना पड़ जाता है तो माला मैया को बोलो–**"हे मैया ! मुझसे क्या अपराध हो गया। मैं तो आपका शिशु हूँ। शिशु से गलती भी हो जाती है। मैया आप महान हो। आप मुझे क्षमा कर दो।"** ऐसी प्रार्थना करते ही, सुमेरु भगवान् साधक की उंगलियों में प्रगट हो जायेगा। सुमेरु ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं और सुमेरु के दोनों ओर की 108 माणियाँ, गोपियों की कृपा के बिना भगवान् का दर्शन होना असंभव है।

जो बातें मेरे श्रीगुरुदेव ने बताई हैं, ऐसी बातें हर कोई बताता नहीं है। यदि कोई बताता भी है तो साधक या तो उस पर ध्यान नहीं देता या फिर कम ध्यान देता है। यदि साधक पूरी तरह ध्यान दे तो सब कुछ सामने प्रत्यक्ष हो जावे।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के समय में, त्रेतायुग में शबरी (भीलनी) तुलसी मैया की तन–मन से सेवा करती थी। उसके गुरु थे मतंग ऋषि। वह उनकी सेवा में संलग्न रहती थी। यद्यपि दूसरे ऋषिगण उससे घृणा करते थे फिर भी भीलनी, आग जलाने के लिये, उनके आश्रमों में सूखी लकड़ियाँ रखकर आती थी। तुलसी देवी की सेवा से भगवान् प्रसन्न हो गये और लक्ष्मण जी के संग चलकर, वे भीलनी की कुटिया में आये। उन्हें देखकर भीलनी बावली हो गई और सोचने लगी कि इनको कहाँ बिठाऊँ। एक पीढ़ा (बैठने की चौकी) लाकर उस पर श्रीराम व लक्ष्मण जी को बिठा दिया। भगवान् को खिलाने के लिये उसके पास कुछ भी नहीं था। उसने केवल बेर ही इकट्ठे कर रखे थे। उसने भगवान् से कहा कि आपको खिलाने के लिये मेरे पास केवल बेर हैं।

उसका प्रेम देखकर भगवान् राम बोले–"शबरी ! तेरे बेरों से ज्यादा स्वादिष्ट और क्या हो सकता है? हम तो वही खायेंगे।"

अब तो भीलनी की खुशी का ठिकाना न रहा और बेरों की

टोकरी लेकर वह भगवान् के पास आई एक–एक बेर चख कर भगवान् को खिलाने लगी। वह यह सब इसलिये कर रही थी कि कहीं कोई कड़वा या खट्टा बेर भगवान् न खा लें और उनके मुख का स्वाद खराब न हो जावे। भगवान् राम तो बड़े प्रेम से बेर खा रहे हैं और लक्ष्मण जी मुख बिगाड़ रहे हैं। भीलनी ने लक्ष्मण जी को भी चख–चख कर, खाने को बेर दिये पर लक्ष्मण जी उन बेरों को छुपकर पीछे फैंकते रहे। भीलनी तो प्रेम में अंधी थी। लक्ष्मण जी बेरों को फेंक रहे हैं, इस बात का उसे पता ही नहीं चला पर राम तो भक्तवत्सल हैं। उन्होंने बेर खाये और मन ही मन कहा–"लक्ष्मण ! तूने भक्ति का स्वाद नहीं जाना है। देखना, एक दिन यही बेर तुम्हें जीवन देंगे।"

जब भगवान् राम बेर खा चुके तो उन्होंने भीलनी से पूछा–"मैया ! कोई सीता को चुरा कर ले गया है, उसे ढूंढ़ने हम कहाँ जायें?"

भीलनी मन ही मन में बोली–"भगवान् आपकी लीला अपार है। सबकुछ जानते हुये भी, मुझसे पूछ रहे हो कि कहाँ जायें?"

फिर भीलनी ने भगवान् राम से कहा–"भगवन्! आप सुग्रीव के पास जाओ। वह सीता का पता करवा देगा।" यह कहकर भीलनी मौन हो गई और ज्योंहि भगवान् राम ने जाने के लिये भीलनी की कुटिया से बाहर अपना चरण रखा, भीलनी उनके चरणों से लिपट गई और भगवान् के चरणों में उसने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। वह सदा के लिये भगवान् की हो गई। भगवद्–धाम में चली गई।

धन्य है परम भक्त भीलनी! धन्य है भीलनी का भक्तिभाव से भरा जीवन और धन्य है उसका मरण। भगवान् की ऐसी परमभक्त, भीलनी को हमारा कोटि–कोटि प्रणाम् !

प्रेमीभक्तो ! जरा सोचो कि भीलनी को यह उत्तम गति कैसे प्राप्त हुई? उसे भगवान् के दर्शन क्यों हुये? क्यों उसे भगवद्धाम की प्राप्ति हुई?

इसका उत्तर एक है कि उसने वृन्दादेवी (तुलसी महारानी) की सेवा की थी। वृन्दादेवी ने भीलनी को स्वप्न में बता दिया था कि भगवान् राम उससे मिलने आवेंगे। उसी दिन से भीलनी भगवान् के आने की बाट जोह रही थी, भगवान् का इंतजार करती थी। वह बेरों के वन में एक कुटिया बनाकर अपने श्रीगुरुदेव के चरणों में रहा करती थी। बेरी के वृक्ष के कांटे भगवान् के चरणों में न लग जायें और रास्ते के कंक्कड़–पत्थर भगवान् के चरण–कमलों में चुभ न जायें, इसलिये वह हर रोज़ रास्ता बुहारती थी, रास्ता साफ़ करती थी।

यह है वृन्दा देवी की सेवा का अमर फल जो भीलनी का भगवान् से मिलन हुआ और उसने अपने प्राण भगवान् के चरणकमलों में अर्पण कर दिये। साधकों को इन कथा से शिक्षा लेनी चाहिये तभी जीवन सफल है। **वृन्दादेवी तथा गऊ सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं है। इन दोनों की सेवा होने से गुरु–वैष्णव तथा भगवान् की सेवा स्वतः ही हो जाती है।**

भीलनी हर क्षण हरिनाम करती रहती थी। तुलसी महारानी की सेवा करने से उसका मन हरिनाम में लगा रहता था। उस क्षेत्र में और भी ऋषि मुनि थे जो हरिनाम करते थे पर वे भीलनी से इसलिये घृणा करते थे क्योंकि वह जाति की नीच थी। यही जघन्य अपराध होने से भगवान् उनके आश्रमों में न जाकर, अपनी परमभक्त भीलनी की कुटिया पर पधारे। तब ऋषियों की आँखें खुलीं कि हमने भक्ति भी की पर शुद्ध भक्ति से वंचित ही रहे, इसलिये भगवान् हमारे पास नहीं आये। वे सोचने लगे कि भीलनी ने शुद्ध भक्ति की है इसीलिये भगवान् उसकी कुटिया पर गये और उसका भगवान् के चरणों में इतना दृढ़ प्रेम था कि एक बार भगवान् का दर्शन कर लेने के बाद, उसे इस नश्वर संसार की कोई भी वस्तु अच्छी न लगी और अब वह एक क्षण भी भगवान् के बिना रह नहीं सकती थी अतः उसने भगवान् के चरण कमलों में अपने प्राण अर्पण कर दिये। धिक्कार है हमारी भक्ति को ! हमने तो अपना

जीवन ही बेकार कर दिया। हमारे अन्दर अहंकार था और इसी अहंकार ने हमारी भक्ति को छीन लिया। हमारा जीवन ही मिट्टी में मिल गया।

विभीषण जी राक्षसों के बीच रहते थे। श्रीहनुमान जी जब माता जानकी जी की खोज में लंका में गये तो उन्होंने सब जगह माँ–जानकी को खोजा पर वे कहीं भी दिखाई नहीं दीं। फिर उन्हें एक सुन्दर महल दिखाई दिया। उस महल में भगवान् का एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ था।

रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरषे कपिराइ।।

(सुन्दर कांड दोहा. 5)

वह महल श्रीराम के आयुध (धनुष–बाण) के चिन्हों से अंकित था। वह इतना सुन्दर था कि उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। उस सुन्दरतम महल में नये–नये तुलसी के वृक्ष समूहों को देखकर कपिराज श्री हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुये।

इससे स्पष्ट है कि विभीषण जी तन–मन से तुलसी जी की बड़े प्रेम से सेवा करते थे और तुलसी महारानी की सेवा ने श्रीराम भक्त श्रीहनुमान जी से मिला दिया। अन्त में वे भगवान् के चरणों में पहुँच गये और लंकापति बन गये।

यह सब कुछ वृन्दादेवी की सेवा से ही हुआ। वृन्दादेवी की कृपा बिना भगवान् मिल ही नहीं सकते। विभीषण जी का श्रीहनुमान जी से मिलना, फिर भगवान् श्रीराम से मिलना और अन्त में लंकापति बनना–यह सब वृन्दादेवी की सेवा का ही फल था। वृन्दा देवी की सेवा करके कोई भी भगवद्–दर्शन कर सकता है। कोई भी आजमाकर देख ले, यदि न हो तो मेरे श्रीगुरुदेव से शिकायत कर सकता है। मेरे गुरुदेव, जो दोष होगा, बता देंगे।

भूतकाल में जितने भी संत हुये हैं सबने वृन्दादेवी की सेवा की है। वृन्दादेवी की सेवा के बिना, वे भगवान् से मिल नहीं सके। वृन्दादेवी ही भक्त को भगवान् से मिलाती है। वृन्दा देवी की सेवा

के अभाव में भक्ति प्रगट नहीं होती। मेरे गुरुदेव सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष बताते रहते हैं यदि फिर भी कोई इनकी तरफ ध्यान नहीं देता तो मेरे गुरुदेव क्या कर सकते हैं? तुलसीदास, सूरदास, संत कबीर, रैदास, नरसी भक्त आदि सभी ने तन–मन से वृन्दादेवी की सेवा करके ही भगवद्–प्राप्ति की है। आज भी हमारे गुरुवर्ग एवं आचार्य तुलसी देवी की नित्यप्रति सेवा करते हैं। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमानाचार्य श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी जी महाराज, 88 वर्ष की आयु में भी तन–मन से वृन्दादेवी की सेवा में संलग्न रहते हैं और वृन्दादेवी का दर्शन किये बिना प्रसाद भी ग्रहण नहीं करते।

मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि वृन्दादेवी की सेवा ही मूल है। इस सेवा से गुरु–वैष्णव तथा भगवान् खिंचे चले आते हैं। जहां पर वृन्दादेवी की सेवा की कमी रहती है, वहां भक्ति नीरस रहती है। वहां पर न गुरुदेव हैं न वैष्णव हैं और न भगवान् हैं। वहां भगवान् भी दुःखी रहते हैं।

भगवान् बोलते हैं कि वृन्दादेवी की कृपा से ही मेरी रासलीला आनन्द रससिंधु में डूबती रहती है। यदि वृन्दादेवी की कृपा न हो तो मुझे कोई भी आनन्द नहीं दिला सकता। रासलीला का प्रबन्ध ही वृन्दादेवी करती हैं। रासलीला में गोपियों से ही मेरा आनन्दवर्धन आरम्भ होता है। अतः मैं वृन्दादेवी का आभारी हूँ। मैं वृन्दादेवी का सदा ऋणी बना रहता हूँ और यह ऋण मुझ से कभी भी उतरता नहीं है। जो वृन्दादेवी को खुश रखता है, मैं उसका भी आभारी हूँ।

भगवान् बोलते हैं कि श्रीगुरु, वैष्णव तथा भगवान् से भक्ति बढ़ती है, ऐसा श्रीगुरुजन तथा संत कहते हैं। मैं वृन्दादेवी के आश्रित रहता हूँ और वृन्दादेवी के बिना तो मेरा जीवन चलता ही नहीं है, इसलिये मैंने वृन्दादेवी की सेवा को छुपाकर रखा था पर इस माधव ने (नित्य–लीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज) मेरी सारी पोल खोलता जा रहा है। इसने श्रीगुरु–वैष्णव भगवान् के साथ वृन्दादेवी को भी जोड़ दिया। अब जो भी वृन्दादेवी की सेवा करके उसे राजी कर

लेगा, खुश कर लेगा, मुझे भी उसकी गुलामी करनी पड़ जायेगी। क्योंकि वृन्दादेवी के बिना मैं एक क्षण भी रह ही नहीं सकता। पर मैं माधव को भी कुछ नहीं बोल सकता क्योंकि माधव ने तो मुझे प्रेम की मज़बूत डोर से बांध रखा है। माधव ने तो मुझे खरीदकर अपना गुलाम बना लिया है और अब मेरी माया भी कमज़ोर पड़ रही है। माधव के प्रेम के कारण, मैं कुछ भी करने तथा बोलने में असमर्थ हूँ। मैं वृन्दादेवी के पराधीन हूँ। वृन्दादेवी तो मेरा जीवन है, इस रहस्य को मैंने इसलिये छुपाकर रखा था कि वृन्दादेवी की सेवा करके, कोई भी उसे राजी कर लेगा और उसके राज़ी होने से मुझे भी राज़ी होना पड़ेगा। माधव गुप्त से गुप्त साधन भी सबको बताता रहता है। बताना उसे चाहिये जो योग्य हो। हीरे की कीमत कितनी होती है, गाँव का गंवार क्या जाने ! लेकिन इस माधव की मर्जी है। मैं कुछ बोल भी नहीं सकता। जैसे श्री गौरहरि ने गिरे हुओं को अपनाया है, माधव भी वही कर रहा है।

भगवान् बोलते हैं–"मैं क्या करूँ? मैं तो वृन्दादेवी की कृपा बिना पराधीन हूँ एवं स्वाधीन भी इसी से हूँ। वृन्दादेवी की अनुमति बिना न मैं खा सकता हूँ, न पी सकता हूँ, न कुछ कर सकता हूँ, न कुछ पा सकता हूँ, न कहीं जा सकता हूँ। मैं तो सब ओर से असमर्थ हूँ। जो वृन्दादेवी को खुश कर लेगा, मैं भी उस साधक के पराधीन हो जाऊँगा। मुझे भी उसका आदेश मानना पड़ जायेगा। हे माधव (नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज) प्यारे ! गुप्त से गुप्त रास्ते बताकर मुझे क्यों साधक का गुलाम बना रहा है? क्यों मुझे पराधीन कर रहा है? तेरे प्यार ने मेरी जुबान बंद कर रखी है। मैं असमर्थ हूँ।"

गुरुदेव तथा वैष्णवगण बोला करते हैं कि गुरु, वैष्णव तथा भगवान् की प्रसन्नता से ही भक्तिस्तर बढ़ता है लेकिन मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि इन्होंने (गुरु वैष्णव तथा भगवान्) वृन्दादेवी की प्रसन्नता को छुपाकर रख लिया। अतः मैं बोल रहा हूँ कि प्रथम प्रसन्नता किसीकी होनी चाहिये। कोई भी साधक आजमाकर देख

सकता है। यदि कमी हो तो श्रीगुरुदेव से शिकायत कर सकता है।

विचार करने की बात है कि जब गुरु जी द्वारा प्रदत्त माला, जो सूखी तुलसी की मणियों से तैयार की जाती है, उसका आदर सत्कार करने पर वह सजीवता धारण कर लेती है और साधक (नाम जापक) को सुमेरु भगवान् पकड़ा देती है तो जो वृन्दादेवी, एक हरे–भरे पौधे के रुप में विराजमान है, वह भक्त की सेवा से प्रसन्न होकर क्या नहीं कर सकती? वह हरिनाम में मन लगा देगी। पंचम पुरुषार्थ प्रेम उदय करवा देगी और अन्त में भगवान् से मिला देगी। ऐसी घटनाएं प्रत्यक्ष रूप में घट रही है। फिर अविश्वास होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसे कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

इसीलिये जब श्रीगुरुदेव किसी जीव को अपनाते हैं तो सबसे पहले उसके गले में कण्ठीमाला (तुलसी माला) डालकर उसे वृन्दादेवी की शरण में भेजते हैं। इसके बाद कान में भगवत्–मंत्र सुनाकर, मंन्त्र को बारंबार जपने के लिये उसे तुलसीमाला (जपमाला) देते हैं और उसे भगवान् की शरण में सौंप देते हैं। भक्ति का जन्म ही वृन्दादेवी से हुआ है, इसलिये श्रील गुरुदेव आरम्भ में ही जीव को वृन्दादेवी के चरणों में सौंपते हैं उसके बाद ही उस जीव को भगवान् अपनाते हैं। भगवान् को भी वृन्दा देवी की अनुमति लेनी पड़ जाती है। भगवान् किसी जीव को सीधे अपना ही नहीं सकते। वृन्दादेवी की स्वीकृति के बिना भगवान् कुछ भी नहीं कर सकते।

इससे यह प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया है कि वृन्दा देवी ! तुलसी देवी ! भगवान् से भी बड़ी हैं। भगवान् वृन्दादेवी के आश्रित हैं। आज से लगभग 525 वर्ष पहले श्रीगौरहरि पार्षद भक्तशिरोमणि श्रीअद्वैताचार्य जी इस धरातल पर हुये हैं। उन्होंने केवलमात्र तन, मन व वचन से वृन्दा महारानी की सेवा की थी और अष्टयाम यही प्रार्थना करते थे–

"हे वृन्दा मैया! भगवान् को इस धरातल पर कब प्रगट करोगी?"

वे रो–रोकर तुलसी मंजरी से ठाकुर जी का अर्चन–पूजन किया करते थे। एक दिन ऐसा भी आया जब श्रीगौरहरि नदिया के मायापुर धाम में होलिका दहन के दिन अपने परिकरों के संग प्रकट हुये।

श्रीअद्वैताचार्य प्रभु की जय। वृन्दा देवी की जय।

श्रीगौरहरि तुलसी मैया के चरणों में बैठकर हरिनाम किया करते थे। जब कहीं जाते तो एक भक्त तुलसी मैया का एक गमला लेकर उनके आगे–आगे चला करता था। इस बात से यह स्पष्ट हो गया कि वृन्दामहारानी भगवान् से भी बड़ी तथा पूजनीय हैं। इसलिये जो भी साधक तन मन से वृन्दादेवी की सेवा करेगा, वह भगवान् को पा जावेगा। जो वृन्दा माँ के आश्रित होकर, हरिनाम जप करता रहता है, भगवान् उसके पराधीन एवं आश्रित हो जायेंगे। जिस घर में वृन्दामाँ प्रसन्न रहती हैं वहां भगवान् का नित्य वास रहता है और जिस घर में वृन्दा महारानी को असुविधा रहती है, वहां भगवान् का पदार्पण नहीं होता।

भगवान् श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी सत्यभामा बहुत सुन्दर थी। उसे यह घमण्ड हो गया था कि भगवान् की सभी रानियों में, मैं ही उन्हें सबसे प्यारी हूँ। रुक्मिणी आदि सभी तो मेरे से नीची हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जितना मुझे प्यार करते हैं उतना किसी भी दूसरी रानी से नहीं करते। मुझे ही मेरे पतिदेव स्वर्ग लेकर गये और मेरे कहने पर वहां से पारिजात वृक्ष द्वारका लेकर आये जिसकी छाया में बैठने से अलौकिक सुख अनुभव होता है। इसलिये मैं ही सबसे प्यारी हूँ।

भगवान् का स्वभाव है कि वे अपने प्यारे के अहंकार को रहने नहीं देते। अतः भगवान् श्रीकृष्ण ने एक लीला रची। भगवान् श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद जी को याद किया तो नारद जी द्वारका में पधारे। सभी रानियों ने उनका खूब स्वागत किया और बैठने के लिये सुन्दर आसन दिया। सभी ने मीठी–मीठी बातों से उन्हें प्रसन्न किया। सत्यभामा तो सबसे आगे होकर आदर–सत्कार कर रही थी और बार–बार पूछ रही थी कि मैं क्या सेवा करूँ? क्या भेंट करूँ?

नारद जी बोले–''सत्यभामा ! आज मैं जो मागूंगा, मुझे दे दोगी?''

सत्यभामा सोचने लगी कि हमारी द्वारका में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है, उसने नारद जी से कहा–''आप जो मांगोगे, हम दे देगीं।''

देवर्षि नारद जी ने कहा–''कि पहले मुझे वचन दो कि मैं जो भी मागूंगा, वह आप मुझे दोगी।'' सत्यभामा ने वचन दे दिया।

नारद जी बोले–''अपने पति श्रीकृष्ण को मुझे दे दो।''

अब तो सत्यभामा तथा अन्य रानियों के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई और सोचने लगीं कि अब क्या करें। यह तो बहुत बुरा हुआ हम अपने पतिदेव को कैसे दे सकती हैं। नारद जी श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ कर ले जाने लगे तो सत्यभामा रोने लगी। बाकी सभी रानियां भी विलाप करने लगीं तो नारद जी को दया आ गई। नारद जी बोले कि यदि आप श्रीकृष्ण के बराबर सोना दे दोगी तो मैं इन्हें नहीं ले जाऊँगा। सभी रानियाँ इस बात के लिये राजी हो गईं। उन्होंने सोचा कि द्वारका में सोने की क्या कमी है। यहां तो दरवाजे, फाटक इत्यादि सभी सोने के बने हैं। रानियों ने तुरन्त तराजू मंगवाया और एक पलड़े में श्रीकृष्ण को बिठा दिया और दूसरे पलड़े में सोने के गहने रखने लगीं। सबने अपने–अपने गहने उतार दिये फिर भी श्रीकृष्ण वाला पलड़ा हिला तक नहीं। पलड़ा एक इंच भी ऊपर नहीं उठा, तो सब रानियाँ घबरा गईं कि अब तो नारद जी हमारे पति को अपने संग ले जायेंगे। अब कोई दूसरा उपाय भी नहीं है, यह सोचकर बिलख–बिलख कर रोने लगी। नारद जी को वचन भी दे दिया है। अब तो सत्यभामा को उलाहना देने लगी कि तुमने यह क्या अनर्थ कर डाला। अब तो सभी निराश हो गईं।।

देवर्षि नारद जी को रानियों पर दया आ गई। द्वारका में दुःख का साम्राज्य फैल गया। नारद जी बोले कि एक उपाय हो सकता

है। सभी रानियाँ बोलीं कि नारद जी ! जल्दी बताओ हम वही करने को तैयार हैं।

नारद जी ने कहा कि तुलसी का एक पत्ता ले आवो और उसे गहने वाले पलड़े में रख दो। रानियां बोलने लगीं कि नारद जी जब इतने सारे गहनों से पलड़ा नहीं हिला तो तुलसी के एक पत्ते को रखने से पलड़ा कैसे ऊपर उठेगा? आप भी कैसी मूर्खता वाली बात करते हो। जब इतने भारी–भारी गहने रखे तब भी पलड़ा नहीं उठा तो अब कैसे उठ सकता है?

नारद जी ने कहा कि आप मेरे ऊपर विश्वास करो और जो मैं कहता हूँ, वही करो। एक पत्ता तुलसी का लेकर तो आओ !

सत्यभामा दौड़कर तुलसी का एक पत्ता ले आई और नारद जी के हाथ में दे दिया। नारद जी ने उस पत्ते पर ''कृष्ण'' का नाम लिखा और सत्यभामा को सारे गहने पलड़े में से निकालने को कहा। जब सत्यभामा ने सारे गहने पलड़े में से उतार दिये तो नारद जी ने ''कृष्ण'' नाम से अंकित तुलसी का पत्ता सत्यभामा को पलड़े में रखने को कहा। किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि राई मात्र के बोझ से भी कम तुलसी के पत्ते को रखने से भगवान् श्रीकृष्ण वाला पलड़ा नीचे हो जायेगा पर ज्योंकि सत्यभामा ने तुलसी का पत्ता पलड़े में रखा तो श्रीकृष्ण वाला पलड़ा ऊपर उठ गया और तुलसी पत्ते वाला पलड़ा धरती पर लग गया।

अब तो सभी रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। वे सभी तालियाँ बजाने लगीं और नाचने लगीं। वे नारद जी से बोली कि अब आप तुलसी के इस पत्ते को अपने साथ ले जा सकते हो। सत्यभामा बोली कि मेरा वचन भी पूरा हो गया।

नारद जी ने कहा–''सुनो ! आपको घमण्ड था कि भगवान् हमें सबसे ज्यादा प्यार करते हैं। नहीं ! भगवान् को, आप सबसे ज्यादा प्यारी वृन्दा महारानी हैं। भगवान् को वृन्दादेवी से बढ़कर प्रिय कोई नहीं है।''

अब तो सभी रानियां वृन्दा महारानी की खुशामद करने लगी कि आप कृपा करके, श्रीकृष्ण से हमारी सिफारिश करो और हमसे प्रेम करवा दो।

यह है वृन्दा महारानी का महत्व। जो तुलसी देवी को राजी कर लेगा, वह श्रीकृष्ण का पा जावेगा। प्रेम से की गई सेवा से कोई भी राजी हो जाता है।

धर्मग्रन्थों में लिखा है कि प्रत्येक कल्प में भागवत्–लीलाएं अलग–अलग हुआ करती हैं। एक कल्प में ऐसा भी हुआ है कि श्रीगणेश जी ने वृन्दा देवी को श्राप दिया था कि तुम राक्षस की पत्नी होगी। इसलिये वृन्दादेवी जालन्धर राक्षस की पत्नि हुई थीं। वृन्दादेवी ने भी श्रीगणेश जी को श्राप दिया था कि तुम्हारी शादी तुम्हारे मन के विरुद्ध होगी इसलिये गणेश जी की शादी, उनके मन के विरुद्ध रिद्धि–सिद्धि से हुई।

वृन्दादेवी सतियों में सबसे उच्चकोटि की सती थीं। इसलिये जालन्धर राक्षस किसी से भी मरता नहीं था। देवताओं ने भगवान् से प्रार्थना की कि जालन्धर राक्षस हमें बहुत सताता है। हम उससे हार गये हैं। तब भगवान् बोले कि इसकी धर्मपत्नि वृन्दादेवी बहुत उच्चकोटि की सती हैं। उसी के सतीत्व के कारण वह किसी से मरने वाला नहीं है। अतः मुझे ही इसका कोई उपाय करना पड़ेगा।

भगवान् ने जालन्धर का रूप धारण करके, वृन्दादेवी का सतीत्व नष्ट किया तो वृन्दादेवी ने श्राप दिया कि तुमने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है, धोखा किया है अतः मेरा श्राप है कि तुम पत्थर के बन जाओ।

जब भगवान् ने प्रार्थना की कि ऐसा मत करो तो वृन्दादेवी बोली–''ठीक है तुम शालग्राम बनोगे और संसार तुम्हारी भगवान् से भी अधिक पूजा–अर्चना करेंगे और मेरी अनुमति तथा कृपा के बिना तुम्हारा जीवन ही नहीं चलेगा। तुम सदा ही मेरे आश्रित रहोगे।''

तब भगवान् बोले–''मुझे स्वीकार है। जैसा तुम बोलती हो, वैसा ही मेरा जीवन होगा और तुम भी धरातल पर वृक्ष के रूप में रहोगी। मेरी सेवा से ही तुम्हारी सेवा अर्चना बन सकेगी।''

तब वृन्दादेवी बोली कि एक कल्प में एक गोप बालक ने मुझे धरातल पर वृक्ष होने का श्राप दिया था और कहा था कि मेरी सेवा से साधकगण भगवान् को प्रसन्न कर लेंगे और भगवत्–धाम को पा लेंगे।

ऐसा है कि प्रत्येक कल्प में भांति–भांति की भगवद्–लीलाएं हुआ करती हैं। भगवद्–लीलाएं अनन्त हैं किसी कल्प में कोई लीला होती है और किसी दूसरे कल्प में कोई और लीला होती है। इन सभी लीलाओं का स्मरण में आना असम्भव है। भगवान् को वृन्दा देवी महारानी से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं है। गोलोक धाम में भी अनन्त लीलाएं होती रहती हैं। वहां भी श्रीराधा जी ने वृन्दा देवी को श्राप दिया है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रिय हैं ही क्योंकि एक ही शरीर के दो भाग बने हैं। एक हैं प्रिय और दूसरा है प्रेमास्पद। श्रीराधा जी के वपु से सभी गोपियाँ प्रगट हुई हैं और श्रीकृष्ण के वपु से सभी गोप बालक प्रगट हुये हैं लेकिन वृन्दादेवी की तो अलौकिक कहानी है। इसकी प्रसन्नता के अभाव में भगवान् भी प्रसन्न नहीं हो सकते। जो भी जीव वृन्दादेवी को प्रसन्न कर लेगा, उस पर भगवान् स्वतः ही प्रसन्न हो जायेंगे। जिस घर में वृन्दा देवी असुविधा में है, वहां भगवान् भी असुविधा में रहते हैं। वहां भक्ति उदय नहीं होती। भले कितना ही हरिनाम करो, मन नहीं लगेगा। जप के समय हर क्षण संसार का स्मरण ही आता रहेगा। अतः भगवद् प्रेम उदय नहीं होगा। हरिनाम बेमन से होता रहेगा।

मेरे गुरुदेव स्पष्ट रूप से गुप्त से गुप्त प्रसंग भी बताते रहते हैं अतः भगवान् मेरे गुरुदेव को उलाहना देते रहते हैं कि जो मैंने रहस्यमयी प्रसंग छुपा रखा है, मेरा प्रेमी यह माधव उसे अयोग्य साधकों को बताता रहता है। जैसे मैंने गौरहरि रूप धारण कर

धरातल पर अवतार लिया और घर–घर जाकर सभी को मुझे प्राप्त करने का मार्ग बताया है, उसी प्रकार यह माधव भी मुझे पाने का मार्ग, मेरी ही तरह सबको बताता रहता है। इसमें इसका कसूर मैं कैसे बताऊँ क्योंकि यह तो मेरे मार्ग का ही अनुसरण करता आ रहा है। उसने मेरे को प्रेम की रस्सी से बाँध रखा है। प्रेम की रस्सी को कोई भी तोड़ सकता नहीं। यह प्रेम अलौकिक है। चिन्मय है, अमर है। अमर को कौन मार सकता है?

ब्रह्मा के एक दिन में भगवान् का अवतार होता है। इसी से भगवत्–लीला होती रहती हैं जिन पर चिन्तन करके साधक भक्ति उपलब्ध करता है। इस तरह प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भगवत्–लीलाएं चलती ही रहती हैं। ऐसा कोई भी ब्रह्माण्ड नहीं है जहां भगवत्–लीलाएं नहीं हो रही हो। भगवान् के एक रोमकूप में ही अनन्त ब्रह्माण्ड बसे हुये हैं। इन ब्रह्माण्डों का कोई अन्त नहीं है। ब्रह्मा जी व शिव जी तक को माया ने घेर रखा है। ये दोनों भी भगवत्–लीलाएं नहीं जान सकते फिर अन्य के जानने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ब्रह्माजी के जीवन काल में भगवान् का अवतार हुआ करता है। ब्रह्मा जी का एक दिन एक हज़ार चौकड़ी का होता है। इतनी ही हज़ार चौकड़ी की रात होती है। इसी रात को प्रलय होती है और सभी जीव ब्रह्मा के शरीर में समा जाते हैं। सौ साल बाद ब्रह्मा भी काल में समा जाता है। पर मानव को इतना सब कुछ जानने से कोई मतलब नहीं है। वह तो बस इतना जान ले तथा यह श्रद्धा–विश्वास अपने अन्तःकरण में जमा ले कि केवल हरिनाम स्मरण से ही सब कुछ जानना बन जाता है। सब कुछ हृदय मन्दिर में लिखा मिल जाता है। सब कुछ जान लेना किसी का हो भी नहीं सकता। हरिनाम को अपना लेने से सभी अपने बन जाते हैं। कोई दूसरा है ही नहीं, सभी अपने हैं। यही शुद्ध ज्ञान है। और कुछ जानने की जरुरत भी क्या है !

पूरा जानने के लिये निचोड़ यही है, सार यही है कि मन संसार से हटाकर वृन्दा महारानी, गुरु–वैष्णव तथा भगवान् से प्रीत जमा ले। इससे सब कुछ जानना हो गया। कुछ भी ऐसा नहीं रहा जिसे जानना बाकी रह गया हो।

इसमें मूल है वृन्दामहारानी जो श्रील गुरुदेव की दी हुई सूखी तुलसी की माला, माला झोली में हाथ डालते ही सुमेरु भगवान को पकड़ा देती है तो जो हरी–भरी तुलसी महारानी, पेड़ के रूप में धरातल पर खड़ी है, उसे प्रसन्न करके, उसकी सेवा करके, भगवान् हमारे न बन पायें, क्या ऐसा कभी हो सकता है।

मेरे गुरुदेव जी ने वृन्दा महारानी की महिमा बताकर, भगवान् को प्रसन्न करने का कितना सरल व सुगम उपाय बता दिया है जो आज तक कहीं पढ़ने को नहीं मिला, न किसी से सुनने को मिला। वृन्दा महारनी के प्रसन्न होने पर भगवान् को इस धरातल पर आना पड़ा जिसकी भक्ति करने से जीव को सुख विधान हुआ।

आओ आओ नाम हरि के मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु मेरी जिह्वा पर आओ।।
रसना मेरी अति दुर्भाषिणी, कटु भाषिणी अरु पापमई।
अघ अवगुण विसराओ इसके, आजाओ प्रभु आजाओ।।
कण्ठ मेरा अति कर्कश वाणी, नाम मधुरिमा नहिं जानी।
अपनी मधुरता आप बखेरो, नाम सुधा रस बरसाओ।।
चित्त मेरा अघमूलमलीना, अन्ध कूप सम सब गुणहीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अन्तर ज्योति जगा जाओ।।
तन मन में अरु स्वास स्वास में, रोम रोम में रम जाओ।
रग–रग में झंकार उठे, पिय अन्तर वीणा बजा जाओ।।
तृण सों नीच दीन ह्वै जाऊं, तरु सों सहनशील बनजाऊं।
सबहि मानप्रद मान न चाहूँ, यह करुणा निज वर्षाओ।।
केलि के जीवन नईया खिवैय्या, भव डूबत की बांह ग्रहिया।
जीवन नईय्या पार लगाने, आ जाओ अब आ जाओ।।

***

नाम महाधन है अपनो, नहीं सम्पत्ति दूसरी और कमानी।
छोड़ अट्टारी अटा जग के, हमको कुटिया ब्रज माहि छ्वानी।।
टूक मिले रसिकों के सदा, पीवे को मिले यमुना जल पानी।
औरन की परवाह नहीं, अपनी ठकुरानी श्री राधिका रानी।।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
03–06–2012

प्रेमास्पद, भक्तगण शिरोमणि,

अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का सभी भक्तों के चरण कमलों में दण्डवत् प्रणाम तथा प्रचण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की करबद्ध प्रार्थना।

जीव का भगवत् चरण में पहुँचने का क्रम

भगवान् समस्त चर–अचर जीवों के मां–बाप हैं। जीव का जब से भगवान् के अंश से जन्म हुआ है तब से लेकर अब तक जीव सत, रज और तम–इन गुणों, जो माया के हैं, में फँसकर अपने परमपिता भगवान् की गोद में नहीं पहुँच पाया। तब जीव जो भगवान् का अंशी है, बिल्कुल स्वच्छ या निर्मल था। धीरे–धीरे जीव माया के गुणों के कारण जो सत, रज और तम हैं, इनसे गंदा होता गया। जिस प्रकार मानव नया कुर्ता पहनता है तो वह कुछ समय बाद गंदा हो जाता है, उस पर मैल चढ़ जाता है तो उसे पानी में धोना पड़ता है। फिर धूप में सूखाना पड़ता है और तब उसे तन में पहना जाता है।

इसी प्रकार जब जीव सत, रज और तम रूपी धूल में गंदा हो जाता है तो इसे चौरासी लाख योनियों में डालकर अर्थात् जेल में बंदकर शुद्ध किया जाता है। जो जीव भगवान को नहीं मानता, माया उसे कारागार में डालकर दुःख व कष्ट देकर शुद्ध करती रहती है। चर–अचर प्राणियों में कौन सुख नहीं चाहता? सभी सुख के लिये प्रयत्न करने में लगे रहते हैं लेकिन इनको मालूम नहीं कि सुख कहां मिल सकता है। जिस योनि में रहते हैं उसमें ही सुख मानकर अपना जीवन चलाते रहते हैं। खाना–पीना, सोना, संभोग करना तथा अपनी रक्षा करना ही इनका उद्देश्य होता है।

एक बार की बात है। देवर्षि नारद जी ने सूअर को पूछा कि क्या वह स्वर्ग में जाना चाहता है तो सूअर बोलता है कि क्या वहां पर मानव का मल खाने को मिलेगा। नारद जी ने कहा कि वहां गंदी चीजें नहीं मिलती तो सूअर ने जाने से मना कर दिया।

देखो ! सच्चा सुख केवल आत्मा के स्तर पर ही संभव है। जिस प्रकार कार का भोजन पैट्रोल है। पैट्रोल के बिना कार चल नहीं सकती, बेकार होती है पर कार चालक का भोजन पैट्रोल नहीं है। उसका भोजन तो दाल रोटी तथा सब्जी आदि होता है। जिस प्रकार अपने शरीर को जिंदा रखने के लिये हम इसे भोजन देते हैं उसी प्रकार आत्मा का भी तो कोई भोजन होगा ! आत्मा का भोजन, भोजन–पानी नहीं है। उसका भोजन है परमात्मा की याद। इस याद में आत्मा तृप्त हो जाती है।

भक्ति करना आत्मा का भोजन है। यही साधक की सेवा है। जिस प्रकार हाथ की उंगली पूरे शरीर की सेवा करती है, इससे शरीर पुष्ट होता है उसी प्रकार जीव भगवान का अंश है तो भगवान् की सेवा करने से आत्मा पुष्ट रहती है। आत्मा पुष्ट रहने से शरीर भी पुष्ट रहता है और खुशी से भरा रहता है। अनंतकोटि ब्रह्मांडो में भगवान् केवल एक ही है। शिव, ब्रह्मा तथा अन्य देवी–देवता इस सृष्टि को चलाने में भगवान् के सहायक हैं।

भगवान् स्वयं कहते हैं कि मुझे न तो देवता और नहीं ऋषिगण जानते हैं। केवल मेरा आश्रित भक्त ही कुछ कुछ मुझे जानता है। माया के गुणों के कारण शिव तथा ब्रह्मा भी मुझे नहीं जानते। मुझे न जानने के कारण ब्रह्मा जी मेरे बछड़े तथा ग्वालों को चुराकर ले गये। शिव जी मेरे मोहिनी रूप में फंस गये। अन्य की तो बात ही क्या है? पर जो मेरा शरणागत भक्त है, उसे माया कभी भी फंसा नहीं सकती। मेरे भक्त को माया दूर से ही प्रणाम करती है। राजा भरत योगी था अतः माया ने उसे फंसा लिया।

भगवान् कहते हैं कि मेरे सिवाय किसी की भी भक्ति नहीं करनी चाहिये। जो भी मुझे छोड़कर, अन्यों की भक्ति करेगा तो वह

वापस चर–अचर योनियों में जन्म लेगा। उसकी जो भी कामना होगी, वह क्षणिक होगी।

भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम भक्ति को अत्यन्त सरल व सुगम बना दिया है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र को कोई भी कर सकता है। किसी भी जाति का आदमी कर सकता है। जहां भी चाहे, वहीं कर सकता है। किसी भी समय कर सकता है। शुद्ध–अशुद्ध रहकर भी कर सकता है। खंडित नाम जप भी कर सकता है। क्योंकि भगवान् तो भावग्राही हैं, अन्तर्यामी हैं, अपने नाम को सुनकर जीव पर कृपा करते रहते हैं। नाम जप के समय मन कहीं भी हो जिसको नामाभास बोला जाता है, साधक कर सकता है। ऐसे साधक का भी वैकुण्ठ वास होना निश्चित् है। उसकी अज्ञानता की धूल साफ हो जाती है और अनेक जन्मों की दुःखमयी अग्नि बुझ जाती है।

संतो और धर्मशास्त्रों का सम्मत है कि हरिनाम नामाभास करने की सरल विधि है। इस कलियुग में ध्यान आदि करना असंभव है क्योंकि कलियुग में खान–पान तथा वातावरण सब कुछ अशुद्ध है। अपनी जीवन शैली को बदलने की जरूरत नहीं है। घर में रहते हुये, नौकरी करते हुये, शिक्षा ग्रहण करते हुये, जहां भी हो, कोई भी बेखटके से हरिनाम कर सकता है। पर **मांसाहार, जुआ, नशा तथा व्यभिचार से दूर रहना अतिआवश्यक है।** अपने घर में जो भी खाद्यपदार्थ तैयार करें और चित्रपट में जो भी भगवान् विराजमान है, तुलसी पत्र डालकर उन्हें भोग लगाकर, फिर प्रसाद स्वयं सेवन कर सकते हैं।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

तिनके से भी ज्यादा विनम्र, वृक्ष के समान सहनशील, दूसरों

को सम्मान देकर तथा स्वयं अमानी रहकर, सदैव श्री हरि कीर्तन करना चाहिये।

ऐसी स्वाभाविक भावना बनाकर श्री हरिनाम करने से, भगवान के दर्शन का सौभाग्य उपलब्ध हो जायेगा तथा वैकुण्ठवास निश्चित् रूप से होगा।

भगवान् इस धरा पर क्यों प्रकट होते हैं?

हम जैसे बद्धजीवों को दिव्य ज्ञान प्रदान करके, भूले–भटकों को, गोलोक धाम लौटने की प्रेरणा देने के लिये भगवान् प्रकट होते हैं। यह अलौकिक ज्ञान इस सृष्टि में चार विशेष महानुभावों को प्रदान किया गया था–

1. श्री लक्ष्मी जी, 2. श्री शिव जी, 3. श्री ब्रह्मा जी, एवं 4. चार कुमार–सनक, सनातन, सनन्दन एवं संतकुमार।

इन चारों से चार संप्रदाय प्रकट हुये। श्री लक्ष्मी जी से श्री सम्प्रदाय, श्री शिव जी से रुद्र सम्प्रदाय, श्री ब्रह्मा जी से ब्रह्म सम्प्रदाय एवं चारों कुमारों से कुमार संप्रदाय। वर्तमान में श्री रामानुजाचार्य, श्री विष्णुस्वामी, श्री पाद मध्वाचार्य तथा निंबार्काचार्य–ये चारों ही इन संप्रदायों के आचार्य बने।

श्री गौड़ीय सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय के अन्तर्गत आता है। जिन्होंने कलियुग के एकमात्र साधन, श्री हरिनाम संकीर्तन का पूरी पृथ्वी पर प्रचार किया। इन चारों सम्प्रदायों में दो सिद्धान्त एक समान है।

(1) श्री कृष्ण परम भगवान् हैं। (2) जीव इनका अमर अंश है एवं अंश का परम कर्तव्य है भगवान् श्री कृष्ण की सेवा करना।

श्री ब्रह्ममध्व गौड़ीय संप्रदाय में ही भगवान् श्री चैतन्य प्रकट हुये जो श्री श्रीराधाकृष्ण जी का सम्मिलित अवतार हैं। इन्होंने श्री ईश्वरपुरी जी से दीक्षा ली जो माधवेन्द्र पुरी के शिष्य हैं।

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने श्री नाथ जी को प्रकट किया है

जो राजस्थान में अपना वैभव बांट रहे हैं। कई लोगों के अनुसार जीव भगवान् से भिन्न है और कइयों के अनुसार जीव इन दोनों के समान है परन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि जीव भगवान् से भिन्न भी है और समान भी है। जिस प्रकार समुद्र की बूंद, समुद्र के समान भी है और भिन्न भी है। ऐसे ही सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न भी हैं और सूर्य के समान भी हैं। जल की बूंद और सूर्य की किरण अणु है पर समुद्र और सूर्य विभु हैं। बस इतना ही अन्तर है। इसी प्रकार भगवान् विभु हैं और जीव अणु है। दोनों ही सच्चिदानंद हैं। हम आत्मा हैं और जीव परमात्मा हैं।

भगवान् परम स्वतन्त्र है, पूरी तरह स्वतन्त्र हैं पर जीव पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं है। उसे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है पर थोड़ी मात्रा में। भगवान् ने जीव को यह स्वतंत्रता इसलिये दी कि वह अपनी इच्छा से उससे (भगवान्) प्रेम कर सके। जब जीव इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करता है तो भगवान् की माया उसे इस भौतिक जगत् रूपी कारागार में डालकर सजा देती है। यह सजा इन जीवों को इसलिये मिलती है ताकि वे अपनी गलती सुधार सकें और जीवन के लक्ष्य को समझकर अपने सही रास्ते पर आ सकें। इसका मतलब यह नहीं है कि भगवान् अपने अंशी (जीव) से द्वेष करते हैं।

जिस प्रकार सोने को चमकाने के लिये आग में तपाया जाता है उसी प्रकार जीव के बुरे स्वभाव को अच्छा बनाने हेतु, जहां से वह आया है, वहीं पर चला जाये और इसका दुःखों व कष्ट से पिंडा छूट जाये उसे यह सजा दी जाती है। भगवान् तो बहुत दयालु हैं, वे चाहते हैं कि उनका पुत्र अपने घर वापस लौट जाये। इसलिये वे अपने पुत्रों रूपी इन जीवों को समझाने के लिये बार–बार अवतार लेकर आते हैं और अनेक लीलाएं करते हैं ताकि इन लीलाओं को हृदय में धारण कर जीव बुरी आदतें छोड़ दे। अनेक धर्मग्रंथों की रचनायें भी इसीलिये हुआ करती है ताकि इनका पठन–पाठन करके जीव का मन निर्मल बन सके जैसे

श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत महापुराण, रामायण आदि का पठन–पाठन कर सके।

भगवान् तो चर–अचर सभी जीवों के माँ–बाप हैं। बेटा निगुरा हो सकता है, पूत कपूत हो सकता है फिर भी मां–बाप कभी बुरे नहीं होते। माँ–बाप को सदैव उसकी चिंता रहती है ताकि वह सुधर जाये और यदि सुकृति तेज होती है तो यह भूला–भटका जीव, साधु–संग करने से सुधर भी जाता है।

देखो! प्रत्येक युग में भगवान् को प्राप्त करने की विधि भिन्न–भिन्न हुआ करती है। विष्णु पुराण में लिखा है–

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्।।

अर्थात् सत्ययुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता में यज्ञों द्वारा भजन और द्वापर में उनका पूजन करके मनुष्य जिस फल को पाता है, वही फल वह कलियुग में केशव का कीर्तन मात्र करके प्राप्त कर लेता है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

–बृहन्नारदीय पुराण

कलियुग में श्री हरि का नाम, श्री हरि का नाम और केवल श्री हरि का नाम ही एकमात्र सहारा है। श्री हरिनाम के बिना इस कलियुग में और कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है,। इसलिये सदैव

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का कीर्तन व जप करते रहो। यह महामंत्र किसी भी देश, काल और अवस्था में शुद्धि आदि की अपेक्षा नहीं रखता। यह तो स्वतन्त्र ही रहकर, अभीष्ट कामनाओं को देने वाला है। जूठे अथवा अपवित्र होने पर भी नामोच्चारण के लिये कोई निषेध नहीं

है। भगवान् के कीर्तन में अशौच बाधक नहीं है क्योंकि भगवन्नाम स्वयं ही सबको पवित्र करने वाला है।

जिस प्रकार पानी को शुद्ध करने के लिये, उसकी गंदगी दूर करने के लिये उसे छान लिया जाता है उसी तरह मनुष्य की गंदी मानसिकता (भगवान से विद्रोह) को हरिनाम जप व कीर्तन द्वारा शुद्ध किया जाता है। इसके बाद ही आत्मा भगवत् धाम में जाकर आनन्द भोग कर सकती है।

आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है–प्रमाद जो भगवत्–नाम से दूर करता है। हरिनाम में मन लगने नहीं देता। प्रमाद का अर्थ है–बेपरवाही, आलसपना। जो संतान अपने माता–पिता की सेवा नहीं करती, जो शिष्य अपने श्रील गुरुदेव के आदेश का पालन नहीं करता, जो धर्म पत्नि अपने पति के आदेश का पालन कर, सेवा नहीं करती, इन सबको कभी भी भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती। ये भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते।

सेवा ही भगवान् को सेवक के पास खींच कर लाती है। जिस प्रकार किसान खेतों में बीज बो देता है और अनाज पैदा करता है। यही अनाज किसान की पैसे से अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति रूपी सेवा करता है। अनाज उसकी पेट की भूख मिटाकर भी सेवा करता ही है। इसी प्रकार भक्त साधक को हर प्रकार से सेवा करके भगवान् को प्रसन्न करते रहना चाहिये। सेवा के अभाव में साधक अपने ध्येय (लक्ष्य) पर नहीं पहुँच पाता है। ये सत्य सिद्धान्त है–

(1)

संत मिलन को चाहिए, तज माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धरें, कोटि यज्ञ समान।।

(2)

सगंत कीजै साधु की जिनका पूरा मन।
अनतोले ही देत है नाम सरीखा धन।।

(3)

संत बड़े परमार्थी ज्यों घन बरसें आय।
तपन बुझावें और की, अपनो पारस लाय।।

(4)

तीर्थ नहाये एक फल, संत मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहत कबीर विचार।।

(5)

मन दिया, तन सब दिया, मन के लाख शरीर।
अब देने को कुछ नहीं, कहते दास कबीर।।

इस पूरे जगत का समाज भी भिन्न–भिन्न हुआ करता है। अतः सत्य सिद्धान्त यह होता है कि अपने–अपने समाज में ही पक्ष–विपक्ष का कर्म करना सैद्धान्तिक होता है और दूसरे के समाज में दखल अंदाजी (हस्तक्षेप) करना सिद्धान्त के विरुद्ध है और यह अपराध के दायरे में आ जाता है और ऐसा करने से साधक जिस मार्ग पर चल रहा होता है, उसका मार्ग कंटीला बन जाता है अर्थात् वह अपने लक्ष्य से वंचित हो जाता है।

अध्यात्मिवादियों का अपना समाज होता है। इस समाज में भगवान् को प्राप्त करने वाला मार्ग होता है। इसी समाज में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी व संन्यासी आते हैं। गृहस्थियों का समाज बहुत बड़ा होता है। राजनीतिज्ञों का समाज, विद्यार्थियों का समाज, खेती करने वालों का समाज, किसानों का समाज, डाक्टर–वैद्यों का समाज, मजदूरों का समाज–इस प्रकार कई अलग–अलग प्रकार के समाज इस जगत् में हुआ करते हैं। इसलिये सत्यसिद्धान्त यह होता है कि अपने अपने समाज में पक्ष–विपक्ष का कर्म करना सैद्धान्तिक होता है एवं दूसरे के समाज में पक्ष–विपक्ष का कर्म करना सिद्धान्त के विरुद्ध है। जो साधक भगवान् को मिलना चाहता है, दूसरे समाज के कार्यों में हस्तक्षेप करने से, वह अपराधों के चंगुल में फंसता हुआ चला जाता है। दूसरे के समाज से उसको क्या लेना–देना ! उसकी ओर से तो सोते रहने में ही फायदा है।

लेकिन ऐसा होता है कि गृहस्थ, आध्यात्मिवादियों का पक्ष–विपक्ष लेता रहता है तो अपने उद्देश्य से भटक जाता है, वंचित हो जाता है। इसलिये हरिनाम की शरण में जाने से ही भगवान् से मिलना हो सकता है, नहीं तो उसका मार्ग रुक जाता है, हरिनाम में अरुचि हो जाती है। देखो, इस कलियुग में केवलमात्र हरिनाम ही साधक को भगवान् से मिला सकता है पर यदि साधक अब नहीं समझता तो यह उसका अज्ञान है, उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है।

यह कलिकाल गौड़ीय सम्प्रदाय के जमाने (समय) में आया है। इस कलिकाल में, जो कोई भी श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की कड़ी में जुड़ जायेगा, उसका उद्धार होना निश्चित् है चाहे वह एक जन्म में हो या दस जन्मों में। पर उसका उद्धार होगा अवश्य। नामापराध के कारण उद्धार होने में देरी हो सकती है पर होगा अवश्य।

देखो ! यह कलिकाल बारंबार नहीं आता है। ऐसा कलिकाल केवल अठाइसवें द्वापर के बाद ही आता है। इस कलिकाल में दया परवश होकर, भगवान् श्री कृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम से अवतार लेते हैं। श्री अद्वैताचार्य, मंजरी सहित तुलसी पत्रों से भगवान् शालिग्राम की पूजा करते हैं और उन्हें अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं। तब दया की मूर्ति भगवान श्री कृष्ण ही चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित होते हैं। यह अवतार दया की असीम मूर्ति होती है। इस अवतार में भगवान् प्रेम देकर पात्र–अपात्र सभी का उद्धार करते हैं। एक अपराधी को उसका उद्धार करने में समय अधिक लगा देते हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

केवलमात्र इस हरिनाम (महामंत्र) को जपकर साधक इस जन्म मरण के दारुण दुःख से छूट जाता है। इसमें किसी भी विधि का नियम नहीं है। जैसे ही बने, हरिनाम होना चाहिये। हरिनाम लेने के लिये कोई कानून नहीं है।

कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति मज्जने।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले।।

अर्थात् दान और यज्ञ के लिये समय और काल का नियम है, स्नान और मज्जन (नदी, सरोवर आदि में गोता लगाने) के लिये भी समय का नियम है परंतु इस पृथ्वी पर भगवान् विष्णु का कीर्तन करने के लिये कोई काल निश्चित् नहीं है। उसे हर समय किया जा सकता है।

पूरी दुनियाँ में जिस किसी की सुकृति होगी वही श्री गौरहरि की इस कड़ी में जुड़ पायेगा वह भी अरबों–खरबों में से कोई एक होगा। बाकी सभी इस कड़ी में जुड़ने से वंचित रह जायेंगे। इस दया से वंचित रह जायेंगे। **किसी भी जीव का उद्धार करने में किसी हरिनामनिष्ठ, परमवैष्णव की एक नजर समर्थ है।** मैं तो अधम से भी अधम हूँ। प्रत्येक इतवार को आप सब भक्तों की नज़र मुझ पर पड़ती है तो मुझ पर भगवत् कृपा बरसती है। जब मुझ पर भगवत् कृपा बरसती है तो मेरा मन भगवान् से मिलने को तड़पता है, उनसे मिलने को जी चाहता है। मेरा शिशु भाव होने के कारण, मैं भगवान् की गोद में चढ़ना चाहता हूँ। गोदी में चढ़ने की व्याकुलता से मुझे बार–बार रोना आता है। मुझे कौन रुलाता है? यह तो मुझे नहीं मालूम पर यह रोना मुझे अच्छा लगता है। मेरा मन करता है कि मैं इसी तरह रोता ही रहूँ। मेरा रोना बंद ही न हो परंतु क्योंकि मुझे अपने श्रील गुरुदेव की अमृतवाणी भक्तों को सुनानी होती है, इसलिये श्रील गुरुदेव की वाणी, मुझे रोने से रोक देती है। जब मुझे श्रीगुरुदेव की अमृतवाणी बोलने को मजबूर कर देती है तो मुझे मजबूरी में रोना बंद करना पड़ता है।

– हरि बोल –

37

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दि. 04.06.2012

नराधम अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का समस्त भक्तगणों के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

केवलमात्र वृन्दादेवी की कृपा से ही भगवत् मिलन होगा

न सतगुरुदेव जी की कृपा से, (जो भगवत् स्वरूप ही होता है) न भगवत् वैष्णव की ही कृपा से और न स्वयं भगवान् की ही कृपा से भगवत् मिलन होगा, केवल मात्र तुलसी माँ ही, अपनी कृपा से ही, अपने प्रिय पुत्र भक्त साधक का, अपने पति भगवान से मिलन करा सकती है। अन्य किसी की भी कृपा से भगवान से मिलन नहीं हो सकता। इसका खास कारण है कि भगवान् तुलसी महारानी के पराधीन रहते हैं। तुलसी माँ के आदेश के बिना भगवान कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि भगवान वृन्दादेवी को वचन दे चुके हैं कि तेरे आदेश के बिना, मैं कुछ भी करने में सदा असमर्थ रहूँगा। इसका कारण नीचे दिया जा रहा है।

वृन्दा महारानी अखिल लोक ब्रह्मांड में सती शिरोमणि हैं। वृन्दा महारानी से बड़ी सती अखिल लोक ब्रह्मांड में कोई नहीं है। वृन्दा महारानी जलन्धर राक्षस की पत्नि थी। जलन्धर राक्षस सभी देवताओं को सताता रहता था। जलन्धर राक्षस वृन्दा देवी सती की वजह से किसी से मरता नहीं था। जब ब्रह्मा, शिवजी भी इस राक्षस को मारने से असमर्थ हो गए तब उन्होंने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि यह राक्षस अपनी सती पत्नि की वजह से हमसे मारा नहीं जा रहा है। इसकी पत्नि के सतीत्व ने हम सब को हरा दिया। अतः आप ही इसको मारने का उपाय करो वरना उसके

अमर रहने से सभी देवी–देवता, इसके कारण शान्ति व सुख से नहीं रह सकते।

तब इनकी प्रार्थना से विष्णु भगवान् इसको मारने का उपाय सोचने लगे कि जब तक सती शिरोमणी वृन्दादेवी का सतीत्व नष्ट नहीं होगा तब तक यह राक्षस मर नहीं सकता। इस सती के सतीत्व से यह अमर बन रहा है। तब कोई भी मरने का उपाय न देखकर मजबूरी में विष्णु भगवान ने जलन्धर राक्षस का रूप धारण कर वृन्दा महारानी के पास जाकर इनका सतीत्व नष्ट किया। जब वृन्दा देवी को मालूम पड़ा कि यह तो मेरा पति नहीं है, इसने मेरे पति का रूप धर कर मेरे से अन्याय किया है। यह तो विष्णु है तो वृन्दा देवी ने विष्णु को श्राप दे दिया कि तूने मेरे से अन्याय किया है इसलिये जा, तू पत्थर का बन जा। श्री विष्णु ने प्रार्थना की कि देवी ऐसा तो श्राप मत दे। तो वृन्दा देवी बोली कि ठीक है, तू सालग्राम बन कर भक्तों की सेवा का लाभ प्राप्त करेगा, एवं तू अब हमेशा मेरे अधीन रहेगा। मेरी आदेश के बिना तू पराधीन रहेगा। तब विष्णु भगवान बोले तूने मुझे ऐसा कठोर श्राप दिया है अतः मैं भी तुझे श्राप देता हूँ। तू धरातल पर पेड़ के रूप में जन्म लेगी। तब वृन्दा महारानी बोली तुमने भी मुझे ऐसा कठोर श्राप दिया है अतः मैं भी तुम्हें श्राप देती हूँ कि मेरे पेड़ के पत्तों के बिना तेरे भक्तों का तुझसे मिलन नहीं होगा।

भगवान् श्रीविष्णु बोले, ''देवी! भक्तों के बिना तो मेरा जीवन ही नहीं है। अतः तेरी कृपा के बिना भक्त मुझसे मिल नहीं सकेगा।''

वृन्दा महारानी ने कहा, ''ऐसा ही मुझे स्वीकार है। अब तू भी मेरे बिना नहीं रह सकेगा। तेरा और मेरा अटूट सम्बन्ध रहेगा।''

भगवान विष्णु ने कहा, ''यह मुझे स्वीकार है।''

तब भगवान विष्णु ने जलन्धर पर आक्रमण कर दिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। इसके बाद विष्णु ने जलन्धर राक्षस का,

अपने सुदर्शन चक्र से सिर काट कर धरती पर गिरा दिया। इस प्रकार से जलन्धर राक्षस का उद्धार हुआ।

इस प्रसंग से शंका हो सकती है कि भगवान् विष्णु ने ऐसा गलत कर्म क्यों किया? इस का समाधान साफ है कि सबकी भलाई हेतु कर्म करना शुभ ही होता है। दूसरा समाधान यह है कि भगवान् विष्णु आत्मा रूप से किसमें नहीं हैं? उनसे क्या छुपा है? उनके बिना तो अखिल लोक ब्रह्माण्ड में एक भी कण नहीं है। वह कहाँ नहीं हैं? किसमें नहीं हैं? सिद्धान्त भी है कि

समरथ को नहीं दोष गुसाईं

भगवान् शिव ने हलाहल जहर पी लिया। क्या कोई जरा सा जहर पी सकता है? भगवान् श्रीकृष्ण ने अनन्त सुन्दर गोपियों के साथ रास किया। क्या काम गन्ध भी उन्हें छू सकी? अगस्त्य ऋषि ने एक चुल्लु में समुद्र का जल पी लिया। क्या कोई जल का भरा हुआ एक मटका (घड़ा) पी सकता है? इसलिये शंका करना बेकार है।

वास्तविक बात यह है कि साधक/भक्त वृन्दा माँ की कृपा के बिना भगवान् से नहीं मिल सकता। क्योंकि भगवान् की असली पत्नी तुलसी माँ ही है। श्री भगवान् ने सशरीर तुलसी से रमण किया है। भगवान की जो सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ हैं ये भगवान् की असली पत्नी नहीं हैं क्योंकि भगवान् ने मानसिक रूप से इनका संग किया अर्थात् शरीर से उनका संग न करके मन से किया है। अतः वे असली पत्नी नहीं हैं। अतः भगवान् के साथ सशरीर रमण करने के कारण तुलसी माँ ही भगवान् की असली पत्नी हो गयी। अतः साधक/भक्त तुलसी माँ की कृपा के बिना भगवान् से स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। यह प्रत्यक्ष शास्त्रीय बात है ही कि क्या सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ की चर्चा कहीं आती है कि इन रानियों की कृपा से भगवान् से मिलन होगा।

तुलसी माँ की सेवा ही भगवान् से मिलाती है। अब सेवा किस

प्रकार से होनी चाहिए ? यह मेरे श्री गुरुदेव जी बता रहे हैं? ध्यान पूर्वक सुनने की कोशिश करें।

प्रथम तो किसी शुभ दिन में तुलसी रोपण करना चाहिए। समय–समय पर तुलसी विडले में शुद्ध पानी देना चाहिए। छः माह में एक बार गाय का गोबर थोड़ी मात्रा में डालना चाहिए। अधिक गोबर डालने से, उसकी गर्मी तुलसी माँ को सुखा देती है गोबर डालकर शुद्ध पानी देने से तुलसी माँ को गोबर की गर्मी नुकसान नहीं करेगी। भगवान की सेवा में तुलसी दल लेने हेतु पहले दण्डवत करें बाद में मंत्र द्वारा तुलसी दल सिर पर नहीं तोड़कर, बीच में से तोड़े। सिर पर दल तोड़ने से तुलसी माँ बढ़ नहीं सकेगी। सिर पर तोड़ने से मंजरी नहीं आ सकेगी। मंजरी जब बड़ी हो जावे उसे तोड़ते रहना चाहिये ताकि तुलसी माँ प्रफुल्लित रहे। मंजरी न तोड़ने से तुलसी माँ सुस्त रहेगी।

तुलसी माँ के पत्रों को भगवत् चरण में मलयागिरी चन्दन में लपेट कर चढ़ाना चाहिये तथा भगवान् को गले में तुलसीदल की माला पहनाना चाहिये।

श्री गुरुदेव को तुलसी दल मलयागिरी चन्दन में लपेट कर सिर या गले में चढ़ाना चाहिये। घर में अमनिया जब तैयार हो जावे तो सब्जी, दाल, रोटी तथा पानी के गिलास में तुलसी दल डालना चाहिये। जो भी खाद्य पदार्थ हो उसमें तुलसी दल डालना चाहिये। फिर पर्दा करके, आसन पर बैठकर ध्यान करें कि भगवान् खाद्य पदार्थ खा रहे हैं और फिर ये भावना करें कि भगवत् प्रसाद श्री गुरुदेव पा रहे हैं। फिर घंटी बजाकर पर्दा खोलो और प्रसाद ले जाकर रसोई घर में रखें। बाद में भक्तों को वितरण करें। भक्तों को उतना ही प्रसाद वितरण करें जितना भक्त खा सकें। थाली या पत्तल में जूठा प्रसाद छोड़ना घोर अपराध है जिससे हरिनाम में रुचि होना असम्भव है। द्वादशी को तुलसी दल तोड़ना महा अपराध है। तुलसी पेड़ पर अपनी छाया का पड़ना या सुखाने के लिये डाले हुये कपड़ों की छाया पड़ना घोर अपराध है। जब तुलसी

के पेड़ में कीड़े लग जायें तो फिटकरी जड़ में डालें। इससे कीड़े नहीं लगेंगे। पत्तों पर कीड़े लगने पर हल्दी पाउडर (पिसी हुई हल्दी) पत्तों पर छिड़क दें।

तुलसी माँ के गमले के पास बैठ कर हरिनाम करना सर्वोत्तम है इससे हरिनाम में रुचि होगी। श्री गौर हरि तुलसी माँ के पास बैठकर हरिनाम करते थे। हरिनाम में मन लगाने हेतु तुलसी माँ से प्रार्थना करते थे।

तुलसी की चार परिक्रमा नित्य प्रति सवेरे शाम करना सर्वोत्तम है। तुलसी माँ के समक्ष भक्तों की जय देना सर्वोत्तम है। भक्त तुलसी माँ के सच्चे पुत्रवत् ही होते हैं। तुलसी माँ के और कोई पुत्र है ही नहीं। तुलसी माँ ही अपने भक्त पुत्रों को भगवान् की गोद में चढ़ाती हैं।

तुलसी माँ के पत्रों को चबाकर खा सकते हो वरना तुलसी पत्र साँस नली में घुसने से मौत हो सकती है। सर्दी हो तो तुलसी माँ को शुद्ध कपड़ा ओढ़ावें (पहनावें) या कमरे के अन्दर विराजमान करें। गर्मी या धूप हो तो छाया में रखें। तुलसी मैया की अपने बच्चों की तरह देखभाल रखें। अखिल ब्रह्माण्ड में तुलसी माँ के बराबर, रक्षा व पालन करने वाली अन्य कोई भी माँ नहीं है एवं भगवान् के अलावा अखिल ब्रह्माण्ड में कोई बाप नहीं है। ये दो ही जीवात्मा पर अहैतुकी कृपा करने वाले रक्षक व पालक हैं।

आप सभी भक्तगण प्रत्यक्ष में देख रहे हो तथा अनुभव कर रहे हो कि जो प्रसंग न कहीं पढ़ा है, न किसी से सुना है फिर भी प्रत्यक्ष में हो रहा है। देखने में आ रहा है, अनुभव में आ रहा है। यह तुलसी माँ की ही कृपा का चमत्कार है।

सौ में से सौ साधक/भक्तगण, तुलसी माला को, जो कि श्री गुरुदेव जी के द्वारा हरिनाम जपने के लिये उपलब्ध होती है, निर्जीव व जड़ समझते हैं एवं अनुभव करते हैं। वे सोचते हैं कि यह माला सूखी लकड़ी की मणियों की माला है। इसमें जीव तो है नहीं, अतः यह निर्जीव है।

अब सभी भक्त/साधक गण विचार करें कि जो सूखी मणियों की तुलसी माला है और जिसको निर्जीव समझ रहे हो, क्या यह हमें माया से छुड़ा देगी? क्या यह भगवान् से मिला देगी? लेकिन हम देखते हैं कि यह माया से छुड़ाती भी है और भगवान् से मिलाती भी है। फिर यह निर्जीव कैसे हुई? यह तो सजीव हुई। यह तो जाग्रत हुई। यह तो जिन्दी हुई।

अब प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या जरूरत है! श्री गुरुदेव जी बोल रहे हैं कि जब साधक/भक्त माला हाथ में लेकर हरिनाम जपने को तैयार हो तो माला मैया को सबसे पहले सिर पर लगाओ, फिर हृदय से लगाओ और फिर माला मैया के चरणों का चुम्बन करो। तो साधक गण देखेंगे कि यह माला मैया, सुमेरु भगवान् को उनके हाथ की उंगलियों में सौंप देगी। यदि ऐसी प्रार्थना नहीं करोगे तो माला–झोली में सुमेरु भगवान् को तलाश करना पड़ेगा। ऐसा चमत्कार साधक/भक्तगण को प्रत्यक्ष हो रहा है फिर भी श्रद्धा व विश्वास भक्त/साधकगण का न हो तो समझना होगा उसके दुर्भाग्य का कोई अन्त नहीं।

याद रखो! सुमेरु साक्षात भगवान् हैं और उसके दोनों ओर गोपियां हैं। मेरे श्री गुरुदेव ने जो तीन प्रार्थनायें बतायीं हैं वे कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलीं और न किसी से सुनी जो कि दो ही मिनट की हैं। ये प्रार्थनाएं समस्त शास्त्रों का निचोड़ है, बीज है जो बहुत ही प्रभावशाली है यदि फिर भी किसी को इन प्रार्थनाओं में श्रद्धा या विश्वास नहीं होता तो समझना होगा कि अपराधी होने में कोई कसर नहीं। वैसे तो ये तीन प्रार्थनायें सभी को पता है फिर भी कोई नया साधक हो उसके लिये मैं फिर से बता देता हूँ।

साधक रात को सोते समय भगवान् से ये प्रार्थना करे कि,

"हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे और मेरे शरीर से आप आत्मा रूप में बाहर निकलो तो आप का नाम उच्चारण करा देना। भूल मत करना। हे मेरे प्राणनाथ! मुझ पर इतनी कृपा जरूर करना।"

जब प्रातःकाल में सोकर जगो तो बोलना है कि, **"हे मेरे प्राणनाथ! अब से लेकर, जब मैं रात में सोऊँ तब तक, मैं जो भी कर्म करूँ आपका ही समझकर करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद करा देना। हे मेरे प्राणनाथ! भूल मत करना।"**

ऐसा कहकर भगवान् को बाँध दिया है।

तीसरी प्रार्थना–जब सवेरे तिलक इत्यादि लगाकर संध्या वन्दन करने लगो तो भगवान् से बोलना, **"हे मेरे प्राणनाथ! मेरी दृष्टि ऐसी बना दो कि चर–अचर प्राणी मात्र में तथा सृष्टि के कण–कण में मैं आपको ही देखूँ। हे मेरे प्राणनाथ! मैं भूल जाऊँ तो याद दिला देना।"**

यहाँ भी भगवान् को बाँध दिया है।

इन तीन प्रार्थनाओं में केवल दो मिनट का ही समय लगता है। फिर भी कोई न करे तो उसके समान तो कोई दुर्भागा इस धरातल पर नहीं है।

वृन्दा महारानी सभी सोलह हजार एक सौ आठ रानियों को बोल रही है कि मैं ही विष्णु की असली पत्नि हूँ क्योंकि विष्णु ने सशरीर मुझसे रमण किया है। तुम सब नकली पत्नी हो क्योंकि तुमने मानसिक रूप से कृष्ण से रमण किया है। तुमने मन से कृष्ण को अपनी सेज पर शयन कराया है। मन से ही गर्भ धारण कर के तुम सबके 10–10 पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ है। मेरे तो अनन्त पुत्र और पुत्रियां हैं। जो भी भगवान् विष्णु के भक्त है वे सभी तो मेरे पुत्र–पुत्रियां हैं। मेरे पुत्र–पुत्रियों के नाते मैं उन्हें अपने पति भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ाती रहती हूँ। उन्हें वैकुण्ठ धाम व गोलोक धाम भी पहुँचाती रहती हूँ। तुम सब की सब किसी एक भक्त को भी क्या भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ा सकी हो? इसलिये घमण्ड मत करो। तुम सबमें मेरे बराबर कोई भी भगवान् विष्णु को प्यारी नहीं है। भगवान् विष्णु मेरे बिना कुछ नहीं कर सकते। सदा मेरे अधीन रहते हैं। अब आप ही बताओ कि आप

सबमें से कौन ऐसी है जो भगवान् विष्णु को पराधीन कर सकती है। मेरे बिना तो भगवान् कुछ कर ही नहीं सकते।

भगवान् विष्णु की सोलह हजार एक सौ आठ रानियां मायिक तो है नहीं, वे सभी दिव्य शरीर वाली हैं। इन्होंने भगवान् विष्णु को अपने मन से, अपनी सेज पर आवाहन करके रमण किया है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब सृष्टि का विस्तार हुआ तो केवल मात्र मन से ही हुआ है। बाद में स्त्री पुरुष के रमण से सृष्टि का विस्तार होना आरम्भ हुआ है।

वृन्दा महारानी भगवान् श्रीकृष्ण की सभी रमणियों से बोल रही है कि तुम्हारे सब के दस–दस पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ और मेरे अनन्त पुत्र पुत्रियों को जन्म हुआ है और अब भी हो रहा है। और वे हैं मेरे पति भगवान् विष्णु के प्रिय भक्त। मेरे इन भक्तों में कुपात्र भक्त भी हैं और सुपात्र भक्त भी हैं। इन सुपात्र भक्त संतानों को मैं खुश होकर, अपने प्रिय पति भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ाती रहती हूँ। आपमें से कोई भी रमणी, आज तक क्या किसी भी संतान को मेरे प्रिय पति भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ा सकी हो? अब तुम ही बताओ कि विष्णु की सबसे प्यारी कौन है?

वृन्दा देवी की बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण की सभी रमणियां कुछ नहीं बोल सकीं और मन ही मन वृन्दा महारानी की महिमा का गान करने लगीं। वे सोचने लगीं कि वृन्दा महारानी की बात तो एकदम सही है ही। हम भगवान् की उतनी प्रिय रमणी नहीं हैं जितनी वृन्दा देवी प्रिय है। हमारी सबकी सन्तानें तो आपस में लड़कर प्रभास क्षेत्र में मारी गयीं पर वृन्दा देवी की सन्तानें अमर हैं।

अतः जो भक्त साधक तुलसी माँ को जितना खुश कर सकेगा उतना ही भगवान् विष्णु के नजदीक पहुँच सकेगा।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में वृन्दा देवी का उदाहरण प्रत्यक्ष है। श्री अद्वैताचार्य भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के

प्रगट होने से पहले ही तुलसी मंजरी सहित श्री विष्णु भगवान् की अर्चन–पूजन किया करते थे और भगवान् से यही प्रार्थना किया करते थे कि हम सभी दुःख व संकट से परेशान हैं। आप अवतार लेकर इस दुःख व कष्ट से उद्धार करो।

क्योंकि उस समय भारतवर्ष में मुसलमानों को राज्य था। ये हिन्दुओं पर अत्याचार किया करते थे। भगवत् भक्ति में बाधा देते रहते थे। अतः श्री अद्वैताचार्य केवल तुलसी माँ से ही प्रार्थना किया करते थे।

"हे मैया! भगवान् विष्णु तुम्हारे अधीन हैं। हे मैया! तुम ही कृपा करके भगवान् विष्णु का अवतार करा सकती हो।" उनकी प्रार्थना से खुश होकर तुलसी मैया ने दया अवतारी श्री चैतन्य महाप्रभु जी का अवतार इस धरातल पर कराया।

निष्कर्ष यह निकला कि वृन्दा माँ की कृपा ही सर्वोपरि है। साधकगण केवल वृन्दा माँ से ही प्रार्थना करके हरिनाम में रुचि होने का प्रयास करें। वृन्दा माँ नामापराध से भी बचा देगी क्योंकि मन स्वयं भगवान् है ही और गीता में भगवान् ने कहा है कि इन्द्रियों में मैं ही मन हूँ। जब भगवान् वृन्दा माँ के पराधीन हैं तो नामापराध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तुलसी माँ स्वयं बचाती रहेगी।

वृन्दा देवी कोई इस जन्म की जलन्धर नामक राक्षस की पत्नी नहीं थी। वे तो आदि जन्म से ही सती शिरोमणि रही है तब ही तो भगवान् विष्णु की खास पत्नी शिरोमणि रही हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में वृन्दा देवी का ही आधिपत्य तथा महिमा स्थापित है। अतः वृन्दा देवी के समान तो कोई भी महिमा वाली सती नहीं है। जिससे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान् भी उसका अधिपत्य स्वीकार करते हैं। **यदि भगवान् को अपना बनाना चाहते हो तो तुलसी माँ की सेवा करो। अन्य किसी भी उपाय से भगवत् की उपलब्धि नहीं हो सकती।**

जीव मात्र में सभी चर–अचर प्राणी आते हैं इनको सताना भगवान् को सताना होता है क्योंकि शरीर तो जड़ पदार्थ है इसमें आत्मा रूप से परमात्मा विराजमान है। इस कारण आत्मा ही सताई जाती है। जो ऐसा कर्म करता है उसका कभी उद्धार नहीं होगा। वह माया की चक्की में पिसता ही रहेगा। मन ही प्रत्येक प्राणी का दुश्मन है एवं मन ही एक प्राणी का दोस्त है। जब मन चर–अचर प्राणियों का भला करता है तब ये मन उसका दोस्त है क्योंकि यह भला करना ही भगवान् की भक्ति है। जब मन चर–अचर प्राणियों को सताता है तो यह मन ही इसका दुश्मन है क्योंकि यह उसको कभी सुखी नहीं कर सकेगा। यह आत्मा को ही दुखी करता रहता है, अर्थात् परमात्मा का ही एक प्रकार से दुश्मन है।

वृन्दा महारानी के लिये शास्त्र बोल रहा है–

शालिग्राम महा पटरानी

महा का अर्थ है कि तुलसी माँ से अधिक भगवान् विष्णु को प्यारी दूसरी कोई नहीं।

शिव सनकादिक और ब्रह्मादिक, ढूँढत फिरत महा मुनिज्ञानी।

ढूँढत फिरत का अर्थ है कि वृन्दा महारानी की कृपा के पीछे ही त्रिलोकी नाथ की कृपा दौड़ती आती है। अतः सभी वृन्दा महारानी की कृपा के भिखारी हैं।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवत् भक्त, साधकगण वृन्दा महारानी की सेवा करके, कृपा के भिखारी बनो तभी वैकुण्ठ धाम तथा गोलोक धाम में वास मिल सकेगा।

भगवान् श्री कृष्ण के रास रचने का प्रबन्ध केवल तुलसी माँ ही करती है। 16 हजार एक सौ आठ रानियाँ नहीं करती हैं और न ही रास में शामिल हो सकती हैं क्योंकि रास में शामिल होने का अधिकार इन रानियों को नहीं है। केवल गोपियों तथा वृन्दा देवी को ही ये अधिकार प्राप्त है।

– हरि बोल –

मंगल आरती

(श्रीगौर–गोविन्द–आरती)

भाले गोरा–गदाधरेर आरती नेहारि।
नदिया–पूरब भावे याँउ बलिहारी।।1।।
कल्पतरुतले रत्नसिंहासनोपरि।
सबु सखी वेष्टित किशोर–किशोरी।।2।।
पुरट – जड़ित कत मणि – गजमति।
झमकि' झमकि' लभे प्रति अंग ज्योति।।3।।
नील नीरद लागि, विद्युत माला।
दुहुँ अंग मिलि' शोभा भुवन उजाला।।4।।
शंख बाजे, घण्टा बाजे बाजे करताल।
मधुर मृदंग बाजे परम रसाल।।5।।
विशाखादि सखीवृन्द दुहुँ गुण गाओये।
प्रियनर्मसखीगण चामर ढुलाओये।।6।।
अनंगमंजरी, चुया चन्दन देओये।
मालतीर माला रूप–मंजरी लागाओये।।7।।
पंच प्रदीपे धरि' कर्पूर बाति।
ललितासुन्दरी करे युगल–आरती।।8।।
देवी–लक्ष्मी–श्रुतिगण धरणी लोटाओये।
गोपीजन अधिकार रओयत गाओये।।9।।
भक्तिविनोद रहि' सुरभिकि कुंजे।
आरती–दर्शने प्रेम–सुख भुंजे।।10।।

नदिया के पूर्व भाव में अर्थात् ब्रज–भाव में उत्तम प्रकार से हो रही श्रीगौर–गदाधर जी की आरती को देखकर मैं बलिहारी जाता हूँ। कल्पवृक्ष के नीचे, रत्नों के सिंहासन के ऊपर सब सखियों से घिरे नित्य–किशोर श्रीकृष्ण एवं नित्य–किशोरी श्रीमती राधा जी विराजमान हैं। वहाँ जड़ित सोना व गजमुक्ता आदि अनेकों मणियाँ

झलमल–झलमल कर रही हैं तथा दोनों के अंगों से ज्योति बिखर रही है। घने बादलों की तरह घनश्याम श्रीकृष्ण एवं विद्युत–सी श्रीमती राधा जी की शोभा सारी पृथ्वी को आलोकमय कर रही हैं। शंख बज रहे हैं, घण्टे बज रहे हैं, करताल बज रहे हैं तथा परम–रसमय–ताल पर मधुर मृदंग बज रहे हैं। विशाखा आदि सखियाँ श्रीराधा–कृष्ण जी के गुणगान गा रही हैं तथा प्रियनर्म सखियाँ चामर ढुला रही हैं। अनंग मंजरी नामक गोपी विशेष सुगन्धित द्रव्य तथा चन्दन लगा रही हैं तथा रूप मंजरी नामक गोपी मालती के फूलों की माला अर्पण कर रही हैं। पंच–प्रदीप द्वारा कर्पूरयुक्त बत्तियों को जलाकर ललिता सुन्दरी जी दोनों की आरती कर रही हैं। सभी देवियाँ, लक्ष्मी जी व श्रुतियाँ धरती पर लोट–पोट कर गोपियों के इस अधिकार की महिमा को रो–रो कर गा रही हैं। भक्तिविनोद ठाकुर जी सुरभि–कुंज में रहकर इस आरती को दर्शन करके प्रेम–सुख का आस्वादन कर रहे हैं।

– हरिबोल –

नाम की महिमा है अधिकाई।
थके गणेश शेष अरु शारद, पार न कोई पाई।
शरण परे शिष्य गुरु चरणन में तन मन भेंट चढाई।।
अभय करें शिर कर धर स्वामी, दें निज नाम बताई।
दृढ़ विश्वास नाम नवका में, बैठे भाव बढ़ाई।
भवसागर से सहज सुगम ही, हरि पद पहुँचे जाई।।
सतयुग में सत त्रेता में तप, द्वापर पूजा भाई।
कलि में केवल नाम अधारा, जपिये प्रीति लगाई।।
नामी कूं निज नाम मिलावे, वेद विमल यश गाई।
सरसमाधुरी संशय तज के, रहो नाम लौ लाई।।

सन्ध्या आरती

(श्रीगौर–आरती)

जय जय गोराचाँदेर आरती को शोभा।
जाह्नवी – तटवने जग – मन लोभा।।1।।
दक्षिणे निताइचाँद, वामे गदाधर।
निकटे अद्वैत, श्रीनिवास छत्रधर।।2।।
बसियाछे गोराचांद रत्नसिंहासने।
आरती करेन ब्रह्मा – आदि देवगणे।।3।।
नरहरि – आदि करि' चामर ढुलाय।
संजय–मुकुन्द वासुघोष–आदि गाय।।4।।
शंख बाजे, घण्टा बाजे, बाजे करताल।
मधुर मृदंग, बाजे परम रसाल।।5।।
बहु कोटि चन्द्र जिनि' वदन उज्ज्वल।
गलदेशे वनमाला करे झलमल।।6।।
शिव–शुक–नारद प्रेमे गदगद।
भक्तिविनोद देखे गोरार संपद।।7।।

सारे संसार के मन को लुभाने वाली गंगा जी के तट पर हो रही श्रीगौरचन्द्र जी की आरती की शोभा की जय हो, जय हो। दाहिनी ओर नित्यानन्द प्रभु, बायीं ओर श्रीगदाधर जी हैं तथा उनके पास श्रीअद्वैत–आचार्य जी हैं एवं श्रीनिवास जी छत्र पकड़े खड़े हैं। रत्न–सिंहासन पर गौरचन्द्र जी विराजमान हैं तथा ब्रह्मा इत्यादि देवगण उनकी आरती करते हैं। श्रीमान् नरहरि आदि चामर ढुलाते हैं। श्रीसंजय, मुकुन्द तथा वासुदेव घोष आदि भक्त लोग गाते हैं। शंख बजते हैं, घण्टे बजते हैं, करताल बजते हैं तथा परम–रसमय–ताल में मधुर मृदंग बजते हैं। करोड़ों चन्द्रमाओं की तरह जिनका उज्ज्वल मुखारविन्द है, उनके गले में वनमाला झलमल–झलमल करती रहती है। इन सब दृश्यों को देखकर शिव जी महाराज, शुकदेव जी व भक्त–प्रवर नादर जी प्रेम में गद्‌गद् हो उठते हैं तथा भक्तिविनोद ठाकुर जी इस गौर–सम्पदा का दर्शन करते रहते हैं।

सन्ध्या-आरती

(श्रीश्रीयुगल आरती)

जय जय राधाकृष्ण युगल–मिलन।
आरती करये ललितादि सखीगण।।1।।
मदनमोहन रूप त्रिभंग सुन्दर।
पीताम्बर शिखिपुच्छ–चूड़ा मनोहर।।2।।
ललितमाधव–वामे वृषभानु–कन्या।
नीलवसना गौरी रूपे गुणे धन्या।।3।।
नानाविध अलंकार करे झलमल।
हरिमनोविमोहन वदन उज्ज्वल।।4।।
विशाखादि सखीगण नाना रागे गाय।
प्रियनर्म–सखी यत चामर ढुलाय।।5।।
श्रीराधामाधव–पद – सरसिज–आशे।
भक्तिविनोद सखीपदे सुखे भासे।।6।।

श्रीराधा–कृष्ण जी के युगल मिलन की जय हो–जय हो। ललिता आदि सखियाँ उनकी आरती करती हैं। उनका मदन–मोहन त्रिभंग रूप बड़ा ही सुन्दर है। उन्होंने पीताम्बर धारण किया हुआ है। सिर पर मोर का पंख व मनोहर चूड़ा धारण किया हुआ है। वे जो ललित माधव हैं, उनके बायीं ओर गौर वर्ण वाली, नीले वस्त्र पहने, रूप व गुणों की धनी, वृषभानु महाराज की कन्या, श्रीमती राधिका जी विराजमान हैं। नाना प्रकार से सुशोभित अलंकार झलमल–झलमल कर रहे हैं तथा उनका उज्ज्वल श्रीमुख हरि के मन को भी विमोहित कर लेता है। विशाखा आदि सखियाँ नाना रागों से गा रही हैं तथा प्रियनर्म सखियाँ चामर ढुलाती हैं। श्रीराधा माधव जी के चरण–कमलों की आशा में भक्तिविनोद ठाकुर जी सखियों के चरण प्रान्त में रहकर सुख सागर में निमग्न हैं।

श्रीतुलसी-आरती

नमो नमः तुलसी महारानी वृन्दे महारानी! नमो नमः।
नमो री – नमो री मैया नमो नारायणी! नमो नमः।
जाको दरशे – परशे अघनाशी।
महिमा वेद–पुराण बखानि! नमो नमः।।
जाको पत्र – मंजरी कोमल।
श्रीपति चरण–कमल लपटानी। नमो नमः।।
धन्य तुलसी पूर्ण तप किये।
श्रीशालग्राम महापटरानी! नमो नमः।।
धूप, दीप, नैवेद्य आरती।
फूलन किये बरखा बरखानी! नमो नमः।।
छप्पन भोग छत्तीस व्यंजन।
बिना तुलसी प्रभु एक नाही मानी ! नमो नमः।।
शिव, शुक, नारद और ब्रह्मादिक।
ढूँढत फिरत महामुनि ज्ञानी! नमो नमः।।
चन्द्रशेखर मैया तेरो यश गावे।
भक्ति–दान दीजिये महारानी ! नमो नमः।।
तुलसी महारानी वृन्दे महारानी! नमो नमः।।

हे तुलसी महारानी! आपको नमस्कार है। हे वृन्दे महारानी। आपको नमस्कार है। मैयाजी! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे नारायणी! आपको नमस्कार है। आपके दर्शन से व स्पर्श से जीव के तमाम पाप खत्म हो जाते हैं–आपकी ऐसी महिमा का वेद व पुराण बखान करते हैं। आपके पत्ते व कोमल–कोमल मंजरी श्रीपति नारायण जी के श्रीचरणों में लिपटी रहती हैं। हे तुलसी जी! आप धन्य हैं। आपने पूर्ण तप किया है, जिससे आप शालग्राम जी की पटरानी कहलाती हो। धूप–दीप व नैवेद्य आपको अर्पण किये जाते हैं। आपकी आरती होती है तथा फूलों की वर्षा बरसायी जाती है। छप्पन–भोग व छत्तीसों प्रकार व्यंजन तुलसी के बिना

भगवान् ग्रहण नहीं करते। शिवजी महाराज, शुकदेवजी महाराज, नारद, गोस्वामीजी तथा ब्रह्मा आदि महामुनि ज्ञानी आपको ढूँढते फिरते हैं (अथवा तुलसी जी की परिक्रमा करते रहते हैं), चन्द्रशेखर जी, मैया ! आपका यशगान करते हैं। हे महारानी ! आप भक्ति का दान दीजिये। तुलसी महारानी ! वृन्दे महारानी ! आपको नमस्कार है।

श्रीतुलसी–वन्दना

नमो नमः तुलसी कृष्ण–प्रेयसी नमो नमः।
(व्रजे) राधाकृष्ण–सेवा पाब एइ अभिलाषी।।
ये तोमार शरण लय, तार वांछा पूर्ण हय।
कृपा करि कर तारे वृन्दावनवासी।।
मोर एइ अभिलाष, विलासकुन्जे दिओ वास।
नयने हेरिब सदा युगल रूप राशी।।
एइ निवेदन धर, सखीर अनुगत कर।
सेवा–अधिकार दिये कर निजदासी।।
दीन कृष्णदासे कय, एइ येन मोर हय।
श्रीराधा–गोविन्द प्रेमे सदा येन भासि।।

हे कृष्ण–प्रेयसी तुलसी जी! मैं ब्रज में श्रीराधा–कृष्ण जी की सेवा प्राप्त करूँ, इस अभिलाषा से आपको बार–बार प्रणाम करता हूँ। जो भी आपकी शरण लेता है, उसकी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं। आप कृपा करके मुझे वृन्दावनवासी बना दें। मेरी यही अभिलाषा है कि आप मुझे विलास–कुँज में वास दें, जिससे मैं हमेशा युगल रूप का अपने नेत्रों से दर्शन करता रहूँ। आप मेरा ये निवेदन स्वीकार कर लीजिये। मुझे सखियों के आनुगत्य में सेवा का अधिकार देकर अपनी दासी बना लीजिये। स्वयं को दीन कहते हुए श्रील कृष्णदास जी कहते हैं कि मेरी ये अभिलाषा जैसे पूर्ण हो जाये और मैं सदा श्रीराधा–गोविन्द जी के प्रेम में डूबा रहूँ।

कृपा-प्रार्थना

परमादरणीय वैष्णवजन एवं पाठकगण!

मैं एक अल्पज्ञ जीव हूँ। मुझे न तो संस्कृत का ज्ञान है, न ही मैं हिंदी भाषा में पारंगत हूँ। अपने शिक्षागुरु, परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के आदेश का पालन करते हुये, उन्हीं की अहैतुकी कृपा से, इन ग्रंथों के प्रकाशन, सम्पादन और प्रचार की सेवा मुझे प्राप्त हुई है।

मेरा प्रयास रहा कि इन ग्रंथों में कम से कम गलतियाँ हों पर फिर भी अज्ञानतावश और मानव स्वभाववश इन ग्रंथों में बहुत सी त्रुटियां रह गई होंगी। जो कमियाँ हैं वह सब मेरी हैं और जो विशेषताएँ हैं वह सब आप जैसे गुणग्राही पाठकों की हैं। आप सभी वैष्णवजन एवं प्रबुद्ध पाठकगण भावग्राही हैं, इसलिये श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के इन ग्रंथों में से भाव ही ग्रहण करना, मेरी न्यूनताओं की ओर ध्यान न देना।

यदि इन ग्रन्थों के पढ़ने से कोई भगवद्–उन्मुख होता है या नाम–जप में अग्रसर होता है तो मैं समझूँगा कि मेरा यह प्रयास सार्थक है और श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा का ही यह साक्षात् फल है। आप सबको प्रणाम करता हुआ, आप सभी से भक्तियुक्त कृपा की प्रार्थना करता हूँ।

–हरिपद दास

Cell: 099141-08292 • e-mail: haripaddasadhikari@gmail.com

श्री हरिनामनिष्ठ, परमभागवत

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी जी

द्वारा लिखे गये ग्रन्थ

1. **इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति (भाग-1)**
2. **इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति (भाग-2)**
3. **इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति (भाग-3)**
4. **इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति (भाग-4)**
5. **इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति (भाग-5)**
6. **एक शिशु की विरह वेदना**
7. **कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन**

प्रकाशन–अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन–केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर–घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ–सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

अभी कुछ समय से नये संस्करण अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा। अतः ग्रन्थों का पूरी तरह निःशुल्क वितरण रोककर स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है। ग्रन्थ छपने के बाद पुनः निःशुल्क वितरण प्रारम्भ होगा–ऐसी योजना है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 09837031415

email-harinampress@gmail.com